प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज

की सम्प्रदाय का हितेच्छु

श्रावक-मण्डल रतलाम (मालवा)

मुद्रक—

नथमल लूणिया द्वारा

आदर्श प्रेस, केसरगंज अजमेर मे मुद्रित

संचालक—जीतमल लूणिया

कागज और छपाई की लागत के हिसाब से

इस पुस्तक का मूल्य आठ आने है

लेकिन

लोहावट (मारवाड़) निवासी

श्रीमान् सेठ सुखलालजी ओस्तवाल

की ओर से

स्वर्गीय श्री अगरचंदजी ओस्तवाल

की पुण्यस्मृति में

अर्द्ध मूल्य (चार आने) में

भेंट !

दो शब्द

श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के व्याख्यानो में से सम्पादित रुक्मिणी-विवाह नाम की यह पुस्तक पाठको के कर कमलों मे पहुँचाते हुए हम बहुत आनन्द अनुभव कर रहे हैं। यह पुस्तक पूज्य श्री के व्याख्यानो मे से निकलने वाली पुस्तक माला का १० वाँ पुष्प है। इसमे पूर्व प्रकाशित ९ पुस्तकों को पाठकों ने जिस रुचि से अपनाया, उससे हमारे उत्साह में वृद्धि हुई है और हम यह पुस्तक भी पाठको के कर-कमलों मे पहुँचाने का साहस कर सके हैं। यह पुस्तक सांसारिक जीवन को सुगम और आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बनाने मे किस प्रकार सहायक होगी, यह बताना हमारे अधिकार से परे की बात है,इसे तो सुज्ञ पाठकगण ही बता सकते है।

नियमानुसार यह पुस्तक छपने से पूर्व अखिलभारतीय श्री श्वेताम्बरस्थानकवासीजैन कान्फ्रेन्स आफिस बम्बई को भेजी गई थी, और कान्फ्रेन्स आफिस द्वारा साहित्यनिरीक्षकसमिति से प्रमाणित होने के पश्चात् ही प्रकाशित की गई है। साहित्य निरीक्षक-समिति के विद्वान् सदस्यो की ओर से इस पुस्तक के विषय मे जो सूचना मिली, उसके अनुसार पुस्तक मे संशोधन भी कर दिया गया है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता मे वृद्धि हुई है। इसके लिए हम कान्फ्रेन्स आफिस के कार्यकर्ताओ एवं साहित्यनिरीक्षकसमिति के सदस्यों का आभार मानते हैं।

मण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की कीमत केवल कागज और छपाई की लागात उतनी ही रखी जाती है, सम्पादन आदि और किसी प्रकार के व्यय का भार पुस्तकों की कीमत पर नहीं डाला जाता। इसी हिसाब से इस पुस्तक की कीमत ||) होती है लेकिन लोहावट निवासी श्रीमान् सेठ सुखलालजी ओस्तवाल ने इस पुस्तक की छपाई और कागज की लागत का आधा रुपया अपने पास से देकर यह पुस्तक स्वर्गीय श्री अगरचन्दजी ओस्तवाल की पुण्यस्मृति मे अर्द्ध मूल्य |) मे वितरण कराई है। ओस्तवालजी की इस उदारता के कारण एक गरीब से गरीब व्यक्ति भी इस पुस्तक से लाभ ले सकेगा, और बिना कीमत मिली हुई पुस्तको का जिस तरह दुरुपयोग होता है इस पुस्तक का उस तरह दुरुपयोग भी न होगा। हम ओस्तवालजी की इस उदारता की प्रशंसा करते हैं, और आशा करते हैं कि समाज के अन्य धनिक महानुभाव भी ओस्तवालजी का अनुकरण करेंगे।

इति शुभम्।

भवदीय—

रतलाम पौषी पूर्णिमा सं १९९१ वि	बालचन्द श्री श्रीमाल सेक्रेटरी	वर्द्धमान पीतल्या प्रेसिडेन्ट

प्रकरण सूची ।

प्राक्कथन

सदाचार की दृष्टि से मनुष्य दो भागों में विभक्त है। एक पूर्ण ब्रह्मचारी और दूसरे अपूर्ण यानी देश ब्रह्मचारी। पूर्ण ब्रह्मचारी तो वे हैं जो कभी और किसी भी दशा में वीर्य नष्ट नहीं होने देते, और अपूर्ण ब्रह्मचारी वे हैं, जो वीर्य की पूर्णतया रक्षा तो नहीं कर पाते, लेकिन उस का दुरुपयोग नहीं होने देते। अर्थात् विवाह करके मर्यादापूर्वक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हैं। जो लोग पूर्ण ब्रह्मचारी भी नहीं हैं और मर्यादित जीवन भी व्यतीत नहीं करते हैं, किन्तु दुराचारी हैं, वे साधारण मानवी कर्त्तव्यों से पतित हैं। जो लोग विवाह करके मर्यादा-पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, उनकी गणना पूर्ण ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर भी पापात्मा में नहीं, किन्तु धर्मात्मा में ही हो सकती है, लेकिन जो लोग दुराचारी हैं, ब्रह्मचर्य के विषय में जो किसी मर्यादा का पालन नहीं करते, उनकी गणना पापात्मा में ही होगी।

विवाह करके मर्यादित जीवन बितानेवाले स्त्री-पुरुष, अपनी रुचि और समानता को दृष्टि में रख कर, स्वतन्त्रता-पूर्वक विवाह की ग्रन्थि में बंधते हैं। इसमें ज़बरदस्ती को किंचित भी स्थान नहीं है, लेकिन स्त्रियों की नम्रता सरलता और लज्जा से अनुचित लाभ उठा कर अनेक पु प उनके जन्मसिद्ध अधिकारों की हत्या कर डालते हैं। ऐसे लोग, कन्या या स्त्री की रुचि नहीं देखते, अपितु अपनी रुचि या अपना स्वार्थ देखते हैं। वे, कन्या के न चाहने पर भी, उसके पति बनना चाहते हैं। अनेक कन्या के माता-पिता या भाई भी, कन्या की रुचि को नहीं देखते, किन्तु अपना सुख अपनी सुविधा और अपने लोभ की पूर्ति के लिए,

कन्या का विवाह ऐसे पुरुष के साथ कर देते हैं, जिसे कन्या अपने योग्य या अपनी रुचि के अनुकूल नहीं समझती। अनेक कन्याएँ भी माता पिता आदि के कारण अपना जीवन अनिच्छा पूर्वक ऐसे पुरुष को सौंप देती हैं, जिसे वे अपने लिए अयोग्य समझती हैं, और इसका कारण है, उनकी लज्जाशीलता या तद्विपयक अज्ञता। प्रस्तुत कथा में रुक्मिणी के लिए भी ऐसा ही अवसर आया था। उसकी माता और उसके भाई ने उसका विवाह शिशुपाल के साथ करना तय किया था, और शिशुपाल भी रुक्मिणी को अपनी पत्नी बनाने के लिए तयार हो गया था, लेकिन रुक्मिणी शिशुपाल को अपना पति नहीं बनाना चाहती थी। वह अपने कन्योचित अधिकारों का उपयोग न करके अपना जीवन एक अनचाहे पुरुष को नहीं सौंपना चाहती थी। इसके लिए उसने क्या क्या किया, उसने अपने अधिकारों की किस प्रकार रक्षा की, और कन्या रुक्मिणी पर अत्याचार करने वालों को किस प्रकार पश्चात्ताप करना पडा, यह इस पुस्तक के पढने से ज्ञात होगा। साथ ही इस पुस्तक से यह भी मालूम होगा, कि कन्याएँ अपना जीवन किस प्रकार सुखी बना सकती हैं, उनका क्या कर्त्तव्य है और पुरुषों को लज्जाशील विनम्र एवं अवला मानी जाने वाली कन्याओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।

इत्यलम्।

रुक्मिणी-विवाह

पुरुषो !

कन्याओं पर अत्याचार मत करो। उनके अधिकारों का अपहरण करना त्यागो। उनको अपनी ही तरह मानो, केवल अपने भोग की सामग्री मत समझो। वे भावी माता है। उनका अपमान स्वयं का अपमान है और उनका सम्मान, स्वयं का सम्मान है। वर्तमान स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन, तुम्हारे अन्याय का ही परिणाम है, अन्यथा स्त्रियाँ अपने को पुरुषों से भिन्न मानने की इच्छा कदापि नहीं कर सकतीं। विधवा विवाह का प्रश्न भी तुम्हारी बढ़ती हुई लालसा से ही उत्पन्न हुआ है। इसलिए लालसाओं को रोक कर, सयम से काम लो। ऐसा करने में ही कल्याण है।
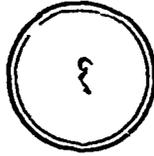
कथारम्भ

विन्ध्याचल को दक्षिण ओर स्थित विदर्भ देश—जो अब बरार कहलाता है—में कुंडिनपुर नाम का एक नगर था। वहां भीम नाम के एक क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम शिखावती था। राजा भीम के पाँच पुत्र थे, जिनमें से बड़े का नाम रुक्म था। रुक्म स्वभाव से क्रोधी और उद्दंड था। पुत्र के सिवा भीम के एक पुत्री भी थी, जिसका नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी, बहुत सुन्दरी थी। तत्कालीन कन्याओं में रुक्मिणी, सबसे बढ़ कर सुन्दरी और गुणसम्पन्ना मानी जाती थी।

रुक्मिणी विवाह योग्य हुई। राजा भीम, रुक्मिणी के विवाह के विषय में विचार करने लगे कि रुक्मिणी का विवाह किसके साथ किया जावे। विवाहादि कार्यों में स्वेच्छाचार से काम न

लेकर गृह के अन्य लोगों, मन्त्रियों, हितैषियों तथा सम्बन्धियों से सम्मति और कन्या से स्वीकृति लेना उचित है, यह विचार कर एक दिन राजा भीम ने, रानी, पुत्र, मन्त्री आदि को अपने समीप बुलाया। जब सब लोग महाराजा भीम के सन्मुख उपस्थित हो गये, तब भीम ने कहा, कि राजकुमारी रुक्मिणी अब विवाह के योग्य हुई है, अत उसका विवाह कहां और किसके साथ किया जावे, इस विषय पर आप सब अपनी अपनी सम्मति प्रकट करें। भीम की बात के उत्तर में, मन्त्री ने निवेदन किया कि इस विषय मे आप ऐसे अनुभवी और दूरदर्शी को हम क्या सम्मति दे सकते हैं। रुक्मिणी के विवाह के विषय मे आपने कोई विचार कर ही रखा होगा, अत आप अपना विचार हम लोगो को सुना दीजिये, जिसमें आपके विचार के विषय में हम लोग अपनी सम्मति दे सकें।

भीम—हाँ मैंने विचार तो अवश्य कर रखा है, परन्तु मेरा विचार आप लोगों को पसन्द होगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता।

मन्त्री—लेकिन इस भय से अपने विचार को अप्रकट रखना भी तो ठीक नहीं। पहले तो आपका विचार बहुत करके हम लोगो को पसन्द ही होगा। कदाचित पसन्द न भी हुआ तब भी उस विचार पर से आगे विचार करने का मार्ग तो खुल जावेगा।

भीम—ठीक है, सुनो। मैं अपना विचार सुनाता हूँ। मेरी समझ से कन्या ऐसे पुरुष को समर्पण करनी चाहिए, जो कन्या के अनुरूप हो। कन्या के अनुरूप पुरुष देखने मे, जाति, कुल, रूप, गुण, आयु, शरीर, वल और वैभव का ध्यान रखना आवश्यक है। नीति में भी कहा है—

कुल च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्त च वपुर्वयश्च ।
एतानि सप्तानि विलोकितानि एतत्परं नास्ति विलोकनीयम् ॥

रुक्मिणी, गुण, रूप आदि मे जैसी उत्कृष्ट है, वैसी उत्कृष्ट दूसरी कन्या शायद ही हो। उसके लिए वर भी उत्कृष्ट ही होना चाहिए। मैंने इस विषय मे अपनी दृष्टि दौड़ाई, तो मुझे रुक्मिणी के लिये द्वारका के राजा कृष्ण के सिवा दूसरा योग्य वर दिखाई नहीं देता। श्रीकृष्ण, प्रत्येक दृष्टि से रुक्मिणी के योग्य हैं। जाति-कुल में कृष्ण उत्तम ही हैं। वे यदुवंशी हैं और यदुवंश की श्रेष्टता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। गुण और रूप मे भी आज कृष्ण की समता करनेवाला कोई नहीं है। आयु में भी कृष्ण अभी युवक हैं। शरीर से भी स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हैं। कृष्ण के वल के विषय में तो कहना ही क्या है। उन्होने वचपन मे ही अनेकों राक्षस मारडाले थे, गोवर्द्धन पर्वत को उंगली पर उठा लिया था, और कंस ऐसे पराक्रमी राजा को भी देखते ही देखते मारडाला था। आज

भी जरासन्ध के सामने नतमस्तक होने से यदि कोई राजा बचा है, तो वे श्रीकृष्ण ही हैं। मेरे विचार से यदि रुक्मिणी स्वीकार करे, तो उसका विवाह श्रीकृष्ण के साथ करना ही ठीक है।

राजा भीम की बात वहाँ उपस्थित और सब लोगों को तो प्रिय लगी, परन्तु रुक्म को अप्रिय मालूम हुई। भीम के मुँह से श्रीकृष्ण का नाम निकलते ही, रुक्म के शरीर में आगसी लग गई। उसे कृष्ण की प्रशंसा असह्य हो उठी। क्रोध के मारे उसकी भौहे तिर्छी और मुँह लाल हो गया। वह विचारने लगा, कि पिताजी कब अपनी बात समाप्त करें और मै कृष्ण की प्रशंसा का खण्डन करके, उसके साथ रुक्मिणी का विवाह किये जाने के प्रस्ताव का विरोध करूँ।

रुक्म, चंदेरी के राजा शिशुपाल का मित्र था। शिशुपाल, कृष्ण को अपना वैरी मानता था और सदा उनकी निन्दा किया करता था। शिशुपाल का मित्र होने के कारण रुक्म भी, कृष्ण को अपना वैरी समझने लगा था। उसने, शिशुपाल और उसके साथियो द्वारा कृष्ण की निन्दा ही निन्दा सुन रखी थी, इसलिए वह भी कृष्ण को निन्द्य ही मानता था। वैसे तो शिशुपाल, कृष्ण की फूफू का लड़का होने के नाते कृष्ण का भाई होता था, लेकिन अनेक कारणों से वह कृष्ण को अपना शत्रु समझता था। पहला कारण तो शिशुपाल का झूठा अभिमान ही था। शिशुपाल

यह समझता था कि हम नरेश हैं, राजा हैं, हमारे लिए उचित अनुचित, न्याय अन्याय और धर्म पाप की कोई मर्यादा नहीं है। हमारा जन्म ही, अच्छे अच्छे रत्नों का भोगोपभोग करने को हुआ है और इसके लिए हम जो कुछ भी करें, वही उचित, न्याय और धर्म है। कृष्ण, शिशुपाल के इन विचारों में बाधा-रूप थे। दूसरा कारण कृष्ण से वैर मानने का, मगध नरेश जरासन्ध से उसकी मैत्री थी। शिशुपाल, जरासन्ध का अभिन्न मित्र था और जरासन्ध, कृष्ण से शत्रुता मानता था। कृष्ण ने, जरासन्ध के दामाद कंस को मार कर, जरासन्ध की पुत्री को विधवा बना दिया था। इसी कारण जरासन्ध के लिए कृष्ण शत्रु-रूप थे। इनके सिवा एक कारण और भी था, जिससे शिशुपाल कृष्ण को अपना शत्रु समझता था। जब शिशुपाल का जन्म हुआ था, तब किसी ने यह भविष्यवाणी की थी, कि इस बालक की मृत्यु इसी के मामा के पुत्र कृष्ण के हाथ से होगी। शिशुपाल की माता, यह भविष्यवाणी सुन कर बड़ी दुःखित हुई। वह, शिशुपाल को लेकर अपने भाई वसुदेव के यहाँ आई। उसने, शिशुपाल को कृष्ण की गोद मे डाल दिया और भविष्यवाणी सुना कर कृष्ण से प्रार्थना की, कि आप अपने इस भाई को अभय कीजिये। कृष्ण ने, अपनी फूफू को धैर्य बँधा कर कहा, कि मैं अपने इस भाई के एक दो ही नहीं, किन्तु ९९

अपराध होने पर भी इसे क्षमा करूँगा, मारूँगा नहीं। आप विश्वास रखें। शिशुपाल की माता, कृष्ण से यह वचन पाकर बहुत सन्तुष्ट हुई। जब शिशुपाल बड़ा हुआ और उसे यह सब वृत्तान्त मालूम हुआ, तब वह श्रीकृष्ण को अपना शत्रु मानने लगा। शायद कृष्ण के हाथ से अपनी मृत्यु जान कर रक्षा के लिए ही, शिशुपाल ने जरासन्ध से मैत्री भी की हो।

राजा भीम, अपने विचार प्रकट करके चुप हो गये। वे, वहाँ उपस्थित लोगों की सम्मति की प्रतीक्षा करने लगे। इतने ही में रुक्म, टेढ़ी भौंहे करके कहने लगा—वाह पिता जी, आप ने रुक्मिणी के लिए अच्छा वर विचारा। जान पड़ता है, कि वृद्धावस्था के कारण आपकी बुद्धि मे विकार आ गया है, इसीसे आप रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ करने का कह रहे हैं। आपने, उसकी प्रशंसा करके उसको उत्कृष्ट ठहराया है, परन्तु मैं तो उसे रुक्मिणी के लिए सर्वथा अयोग्य समझता हूँ। रुक्मिणी का उसके साथ विवाह कराना तो दूर रहा, मैं उसे अपने समीप बैठाने मे भी संकोच करूँगा।

अपनी बात का अपने पुत्र द्वारा ही तीव्र विरोध सुन कर, वृद्ध राजा भीम को बड़ा खेद हुआ। वे, अपने मनमे कहने लगे, कि वास्तव में यदि मेरी कोई गल्ती भी थी, तो भी मेरा पुत्र होने के कारण इसका कर्त्तव्य था, कि यह नम्रता-पूर्वक

मेरी गल्ती मुझे सुझाता। ऐसा न करके, इसने अपमानपूर्ण शब्दों से मेरी बात का विरोध किया। इसने तो अपनी मूर्खता का परिचय दिया, परन्तु मुझे इस मूर्ख के साथ मूर्ख बनना ठीक नहीं। कम से कम इससे जान तो लेना चाहिए, कि यह कृष्ण के विषय में ऐसा बुरा विचार क्यो रखता है।

इस प्रकार विचार कर राजा भीम ने, रुक्म से पूछा—कृष्ण में ऐसा कौनसा भयङ्कर दूषण है, जिसके कारण वे समीप बैठने के योग्य भी नहीं हैं ?

रुक्म—क्या आप नहीं जानते, कि वह ग्वाल है ? उसका जन्म ग्वाल के यहाँ आ है, वह अहीरों के यहाँ ही उनका जूठा खाकर पला भी है, और ग्वालिनियों के साथ नाचता भी रहा है। वह ग्वाला, आज राजा हो गया तब भी हम क्षत्रियों के समक्ष कैसे बैठ सकता है ?

रुक्म की बात सुनकर भीम समझ गये, कि इसने कृष्ण के विरोधी लोगों की ही बातें सुन रखी हैं और उन्हीं बातो पर यह विश्वास कर बैठा है। इसे समझाने से पहले, इसके कृष्ण-विरोधी समस्त विचार जान लेना उचित है, जिससे इसको समझाने में सुविधा हो। उन्होंने रुक्म से कहा—इस कारण के सिवा और किन कारणो से कृष्ण रुक्मिणी के अयोग्य है ?

रुक्म—पहला कारण तो यही है, कि वह हीनजाति का

है। उस नीच जाति के कृष्ण को हम अपना बहनोई बना कर उसके आगे अपना मस्तक कैसे झुका सकते हैं? और इनके साथ खानपानादि व्यवहार कैसे कर सकते हैं? ऐसा करने पर, क्षत्रियों की दृष्टि में हम प्रतिष्ठित कैसे रह सकते हैं। दूसरे, वह रंग-रूप में भी रुक्मिणी के योग्य नहीं है। कहाँ तो दामिनि को लज्जित करनेवाली बहन रुक्मिणी, और कहाँ घटा को भी लज्जित करने वाला काला कृष्ण। तीसरे, वह बल-वैभव में भी हमारी समानता का नहीं है। जरासन्ध के भय से उसका पलायन ही, उसके बल का पता देता है। आज तक वह किसी भी युद्ध में लड़ कर विजयी नहीं हुआ। हाँ छल—कपट करके भले ही किसी को हरा दिया हो। चौथे, वह गुणहीन भी है। उसमें नाचने, गाने और चोरी करने का गुण भले हो, उस ग्वाले में क्षत्रियोचित गुण तो हो ही कैसे सकते हैं। अब आप ही बताइये, कि वह रुक्मिणी के योग्य वर कैसे हो सकता है?

भीम ने विचारा, कि यह मूर्खतावश कृष्ण-विरोधी लोगों की बातों से बहुत अधिक प्रभावित हो चुका है। इस मूर्ख और अविनीत पुत्र को समझाना बहुत कठिन है। नीति में भी कहा है—

प्रसह्य मणि मुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्टाङकुरात्
समद्रमपि संतरेतप्रचल दूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपित शिरसि पुष्पवद्धारये-
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्त माराधयेत ॥

अर्थात्—यदि मनुष्य चाहे, तो मगर की दाढो से मणि निकालने का उद्योग भले करे, उथल पुथल होते हुए समुद्र को, तैर कर पार होने की चेष्टा भले करे, क्रोध से भरे हुए सांप को, पुष्पहार की तरह सिर पर धारण करने का साहस भले करे; परन्तु हठ पर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को असत्-मार्ग-से सत्-मार्ग पर लाने की हिम्मत कदापि न करे।

इसके अनुसार इसे समझाने की चेष्टा निरर्थक ही होगी, फिर भी असफलता के भय से प्रयत्नहीन वन वैठना अनुचित है। ऐसा करना तो नीचो का काम है। उत्तम पुरुष का कर्तव्य कार्य करते जाना है, फिर फल हो या न हो। कार्य करना अपने अधिकार की वात है, फल अपने अधिकार में नहीं है।

भीम वोले---वेटा रुक्म, तुम्हे किसी ने कृष्ण की ऐसी ही वातें सुनाई हैं, जिनमे कृष्ण की निन्दा ही निन्दा है। कृष्ण की उन वातों से तुम सर्वथा अपरिचित जान पड़ते हो, जिनके कारण कृष्ण की प्रशंसा हो रही है। संसार के प्रत्येक मनुष्य में, सद्-गुण और दुर्गुण दोनो ही रहते हैं। ऐसा कोई ही मनुष्य होगा

जिसमे केवल गुण ही गुण या दुर्गुण ही दुर्गुण हो। हाँ, यह अवश्य है कि किसी आदमी में कोई ऐसा बड़ा सद्गुण होता है, जिससे उसके समस्त दुर्गुण छिप जाते है, तथा वह प्रशंसनीय माना जाता है, और किसी आदमी मे कोई ऐसा बड़ा दुर्गुण होता है, जिससे उसके सद्गुणो पर पर्दा पड जाता है और वह निन्द्य माना जाता है। यह नियम, सारे संसार के लिए है। मनुष्य की गुरुता लघुता भी, इसी के अधीन है। मैं यह नहीं कहता, कि कृष्ण इस नियम से बचे हुए हैं, यानी उनमे सर्वथा गुण ही हैं, परन्तु उनके गुणो के आधिक्य ने, उनके समस्त दूपणों को ढांक दिया है और आज उनके समान प्रशंसनीय दूसरा कोई नहीं माना जाता। श्रेष्ठ जनो मे उनका आदर है, प्रभाव है, और वे कुलीन माने जाते हैं। उनके विरुद्ध तुमने जो बाते कही है, वे ठीक नहीं है। तुम्हे किसी ने भ्रम मे डाल दिया है। उनके साथ रुक्मिणी का विवाह करना न करना दूसरी बात है, परन्तु किसी प्रतिष्ठित पुरुप के विपय मे बुरे विचार रखना ठीक नहीं। मेरा विश्वास तो यही है, कि कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह करने से अपने गौरव मे वृद्धि ही होगी।

रुक्म—आप मुझे भ्रम मे समझ रहे हैं, लेकिन वास्तव में भ्रम आप को है। श्रेष्ठ समाज मे कृष्ण का कदापि आदर नहीं है, किन्तु वह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उसके साथ रुक्मिणी

का विवाह करने से, श्रेष्ठसमाज के समीप हम भी घृणास्पद ही माने जावेंगे; हमारा गौरव कदापि नहीं बढ सकता। आप कुछ भी कहिये, कृष्ण के साथ रुक्मिणी के विवाह से मैं कदापि सहमत नहीं हो सकता, न अपने रहते अपनी बहन का ऐसे अयोग्य के साथ विवाह ही होने दे सकता हूँ।

मन्त्री ने देखा, कि इन पिता पुत्र का मतभेद बढता जा रहा है। उसने विचार किया, कि यदि इस मतभेद को शांत न किया और बढ़ने दिया गया, तो यह भीषण गृहकलह के रूप में परिणत हो जावेगा। इसलिये इस मतभेद को इसी समय शान्त कर देना उचित है। यद्यपि उद्दंडता रुक्म की ही है, परन्तु इस समय उसे कुछ कहना, अग्नि में घी डालने के समान होगा। मूर्ख और बुद्धिमान के वाग्युद्ध मे, बुद्धिमान को ही शान्त रहने के लिये कहा जा सकता है। मूर्ख को शांत रहने के लिए कहना तो, उसकी मूर्खता के प्रदर्शन का क्षेत्र बढाना है। इस प्रकार विचार कर मन्त्री ने भीम से कहा-महाराज, यह बात दूसरी है कि आपके विचार से रुक्मकुमार असहमत हैं, परन्तु आप अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। इसलिये अब आपको वाद-विवाद मे पडने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने से कार्य तो अपूर्ण रह ही जावेगा, साथ ही गृहकलह भी सम्भव है। इसलिये अब आप शांत होइये। आपने, रुक्मिणी के योग्य कृष्ण को वर बताया, परन्तु रुक्म

कुमार कृष्ण को रुक्मिणी के योग्य नहीं मानते; इसलिये अब इन्हीं से पूछना चाहिए, कि इनकी दृष्टि मे रुक्मिणी के योग्य वर कौन है ? उद्देश्य तो रुक्मिणी के योग्य वर का विचार करना है किसी की गुरुता लघुता के वाद-विवाद मे पड़ना उद्देश्य नहीं है।

मन्त्री की बात सुनकर भीम ने कहा—अच्छी बात है, देखें रुक्म की दृष्टि में रुक्मिणी के योग्य वर कौन है।

मन्त्री ने रुक्म से कहा—कुमार, यदि महाराजा द्वारा प्रस्तावित श्रीकृष्ण रुक्मिणी के योग्य वर नहीं हैं, तो अब आप ही बताइये, कि रुक्मिणी के योग्य वर कौन है।

रुक्म—हाँ, यह अवश्य बताऊंगा। मैंने पहले से ही रुक्मिणी के योग्य वर का विचार कर लिया है। चन्देरी के राजा शिशुपाल, रुक्मिणी के पति बनने के सर्वथा योग्य हैं। वे कुलीन भी हैं, उनके कुल ऐसा निष्कलक कुल, ढूढने पर भी मिलना कठिन है। उनके बल वैभव का तो कहना ही क्या है। महाराजा जरासन्ध भी उनकी धाक मानते हैं और उन्हे सम्मान सहित अपने पास बैठाते हैं। ९९ राजा उनके आज्ञावर्ती हैं। रूप, गुण, मे भी, वे कम नहीं है। वे युवक भी हैं। किसी भी दृष्टि से विचार करें, रुक्मिणी के योग्य वर शिशुपाल ही है और शिशुपाल के साथ विवाह सम्बन्ध करने पर, अपनी भी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

रुक्म की बात का, उसकी माता शिखावती ने भी समर्थन किया। वह भी कहने लगी कि रुक्मकुमार का कथन ठीक है, शिशुपाल रुक्मिणी के अनुरूप वर है। मैंने जब से उनकी प्रशंसा सुनी है, तभी से मेरी भावना यही है, कि रुक्मिणी का विवाह चन्देरीराज शिशुपाल के साथ हो।

रानी के इस समर्थन से, मन्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह विचारने लगा, कि महारानी इस प्रकार अपने पुत्र की बात का समर्थन कैसे कर रही हैं। इन्होंने शिशुपाल की प्रशंसा सुनी होगी, तो रुक्म के द्वारा ही सुनी होगी और रुक्म, शिशुपाल का मित्र है, तथा अनुभवहीन है। महारानी ने इसकी बात पर विश्वास करके महाराजा की बात पर अविश्वास कैसे किया! इन के लिये ऐसा करना कदापि उचित न था, लेकिन इस समय क्रोध-मूर्ति मूर्ख रुक्म के सामने औचित्य का विचार लाना, गृह-कलह का सूत्रपात करना है। राजा भीम भी सोच रहे थे, कि रानी ने अपने वृद्ध पति की अपेक्षा, युवक पुत्र का पक्ष समर्थन करने में अपना हित देखा है। इसने अपना हित देख कर रुक्म की बात का समर्थन तो कर दिया है, परन्तु इसने किया है अन्याय ही। पुत्र की बात पर विश्वास करने और मेरी बात पर अविश्वास करने का, रानी के समीप कोई कारण न था। रानी ने, मेरी

बात पर अविश्वास करने का कारण न होते हुए भी, हित लोलु-पता से ही पतिव्रत—धर्म को ठुकराया है।

राजा भीम और मन्त्री तो इस प्रकार विचार रहे थे, परन्तु रुक्म प्रसन्न हो रहा था। माता द्वारा अपनी बात पुष्ट हो जाने से, रुक्म ने अपने को विजयी माना। वह बारम्बार यही कहने लगा, कि देखो मेरी बात से माता भी सहमत हैं। मैंने जो कुछ कहा है, उसकी वास्तविकता ही ऐसी है। इसलिये आप सब को भी मेरी ही बात से सहमत होना चाहिए।

मन्त्री ने सोचा, कि महाराजा के प्रस्ताव के विरोध में पहले तो अकेला रुक्म ही था, लेकिन अब तो उसकी माता भी उसका साथ दे रही है। अब यदि महाराजा ने अपने पक्ष को खींचा, तो भयंकर गृह कलह मच जावेगा; जिसमें एक ओर माता सहित रुक्मकुमार होगा और दूसरी ओर वृद्ध महाराजा होंगे। इस गृहकलह का परिणाम अच्छा नहीं निकल सकता। इस प्रकार विचार कर उसने, राजा भीम से कहा कि महाराज, किसी मतभेद की बात को विशाल रूप देने से अपनी ही हानि है। बुद्धिमान वही है, जो ऐसे समय मे अपनी बात को ढील देदे। जब महारानी सहित रुक्मकुमार कृष्ण के साथ रुक्मिणी के विवाह का विरोध कर रहे हैं, और शिशुपाल के साथ विवाह करना चाहते हैं, तब आपकी इच्छानुसार विवाह होने मे भयंकर गृहकलह की

संभावना है। इसलिये यही अच्छा है, कि राजकुमारी का विवाह राजकुमार और महारानी की इच्छानुसार ही होने दिया जावे।

राजा भीम ने भी विचारा, कि उद्दण्ड रुक्म के सम्मुख वैसे भी मेरी इच्छानुसार कार्य होना कठिन था, और अब तो उसे अपनी माता का भी बल प्राप्त है। यदि मैंने इसकी बात का खंडन और अपनी बात पुष्ट करने की चेष्टा की, तो मंत्री के कथनानुसार अवश्य ही विरोध बढ़ जावेगा और ऐसा होने पर अपनी हानि भी होगी, तथा दूसरे लोग भी हँसेंगे। इस प्रकार विचार कर राजा भीम ने कहा, कि—यद्यपि मेरी इच्छा तो कृष्ण के ही साथ रुक्मिणी का विवाह करने की है, मिथ्याभिमानी शिशुपाल के साथ में रुक्मिणी का विवाह करना कदापि उचित नहीं समझता, फिर भी मैं इनके कार्य का विरोध न करूँगा, किन्तु इस विषय में तटस्थ रहूँगा। रुक्म और इसकी माता को जैसा उचित जान पड़े, करे, परन्तु मैं उनके कार्य में सहमत न होऊँगा। हाँ इतना अवश्य कहूँगा, कि प्रत्येक कार्य के परिणाम को पहले विचार लेना अच्छा है, जिससे फिर पश्चात्ताप न करना पड़े।

यह कह कर, अनिच्छापूर्वक रुक्मिणी के विवाह का भार रुक्म और उसकी माता पर छोड़ कर राजा भीम, उस सभा से उठ गये। दूसरे लोग भी, अपने अपने स्थान को गये। रुक्म

भी, प्रसन्न होता हुआ अपने स्थान को गया। उसे अपने वृद्ध पिता के असन्तोष का कोई विचार न था; किन्तु वह अपने को विजयी मानकर प्रसन्न हो रहा था।
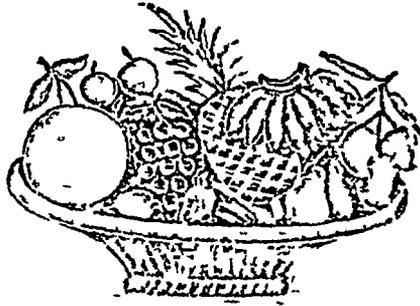
शिशुपाल से सगाई

क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसार साधनम् ।
धर्मक्षयकरः क्रोधः स्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थात्—क्रोध ही मन की पीड़ा का मूल है। क्रोध ही संसार-सागर में भ्रमण कराने वाला है। क्रोध से ही धर्म का नाश होता है। अतएव क्रोध का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

क्रोधी और उद्दंड मनुष्य, जब किसी पक्ष को पकड़ लेता है, तब न तो वह उसे छोड़ना ही चाहता है और न उसके परिणाम पर ही विचार करता है। वह हठ में पड़ जाता है। उसे तो अपनी बात पूरी करने की धुन रहती है, फिर उस बात में सत्य का अन्श हो या न हो। ऐसे लोग, एक पक्ष को पकड़ कर सत्य, न्याय और अपने श्रद्धेयजनों की भी अवहेलना कर डालते हैं।

रुक्म भी अपनी बहन के विवाह के विषय में, एक पक्ष को पकड़ बैठा। उसका पक्ष, कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह

न करके शिशुपाल के साथ करना है ! इस पक्ष में पड़ कर उसने, अपने पिता भीम की उचित बातो पर विचार भी नहीं किया; बल्कि एक प्रकार से उसने भीम का अपमान किया। यह करके भी, उसे पश्चात्ताप नहीं है, किन्तु गर्व है और अपने आपको विजयी मान रहा है।

बुद्धिमान् और अनुभवी भीम, अपनी बात के लिए गृहकलह होने देना अनुचित समझ कर, सत्य और न्याय के भरोसे पर, रुक्मिणी के विवाह की ओर से तटस्थ हो गये। भीम के तटस्थ हो जाने से, रुक्म को प्रसन्नता हुई। वह विचारने लगा, कि अबतक पिताजी, अपनी इच्छानुसार कार्य करते रहे हैं, लेकिन अब हमारी इच्छानुसार होगा। पिताजी, पुराने विचार के आदमी हैं, इस नये युग मे पुराने विचारों के काम उपयुक्त नहीं हो सकते।

रुक्म ने अपनी माता से कहा कि—पिताजी रुक्मिणी के विवाह की ओर से तटस्थ हो गये है। वे उदासीनता धारण किये बैठे रहेंगे, यह सम्भव नहीं। मेरा अनुमान है, कि वे बैठे बैठे ऐसी कोई न कोई कार्यवाही अवश्य करेंगे, जो अपने कार्य मे बाधक हो। इसलिए अपने को बहुत सावधानी से काम करने की आवश्यकता है, जिसमें किसी प्रकार की बदनामी भी न हो और पिताजी को यह कहने का मौका भी न मिले, कि मेरे

कथन के विरुद्ध काम करने से यह दुष्परिणाम निकला। बहन रुक्मिणी के विवाह का भार, पिताजी ने अपने पर डाल दिया है। मेरी समझ से अब रुक्मिणी का विवाह शीघ्र ही कर देना चाहिए, जिसमें फिर किसी विघ्न का भय ही न रहे।

रुक्म की माता ने, रुक्म की इस बात का भी समर्थन किया। माता की सहमति पाकर रुक्म ने, ज्योतिषी को बुलाने की आज्ञा दी। ज्योतिषी के आजाने पर, रुक्म ने उससे कहा, कि बहन रुक्मिणी का विवाह चन्देरी-नरेश शिशुपाल से करने का विचार है, इसलिए लग्नतिथि शोध निकालो।

ग्रह, नक्षत्र, कुंडली आदि देखकर ज्योतिषी, रुक्म से कहने लगा, कि राजकुमारी के विवाह के लिए तिथि माघ कृष्ण ८ श्रेष्ठ है। कुंडली-अनुसार, इस तिथि को राजकुमारी का विवाह अवश्य होगा; लेकिन शिशुपाल के साथ विवाह नहीं जुड़ता है, इसलिए राजकुमारी का विवाह शिशुपाल के ही साथ होगा, यह मैं नहीं कह सकता। शिशुपाल के साथ राजकुमारी का विवाह होने में बहुत सन्देह है। मुझे तो इसमें बड़े बड़े विघ्न दिखाई दे रहे हैं। इस पर भी आप शिशुपाल के ही साथ राजकुमारी रुक्मिणी का विवाह करना चाहते हैं; तो विघ्नों से सावधान रहियेगा।

ज्योतिषी की बात सुनकर रुक्म ने सोचा, कि सम्भवतः इसे

पिताजी और मेरे मतभेद की बात मालूम हो गई है, इसी से यह पिताजी की बात पुष्ट करने के लिए मुझे विघ्नों का भय बता रहा है। उसने ज्योतिषी से कहा, कि विघ्न की चिन्ता अनावश्यक है। विघ्न नष्ट करने की हममे पर्याप्त शक्ति है, परन्तु उस तिथि को रुक्मिणी का विवाह तो बनता है न? ज्योतिषी ने कहा—हां, बहुत श्रेष्ट लग्न है और उस दिन रुक्मिणी का विवाह भी अवश्य ही होगा।

रुक्म—बस ठीक है, अब आप जाइये। आप से काम हो गया। विघ्नो से तो हम निबट लेगें।

ज्योतिषी को विदा करके रुक्म ने, अपने मंत्री को बुला कर उससे कहा, कि बहन रुक्मिणी के विवाह का टीका चन्देरीराज शिशुपाल के यहाँ भेजना है। तुम किसी ऐसे चतुर व्यक्ति की खोज करो, जो टीका ले जावे और स्वीकार करा आवे।

मन्त्री—विवाह का टीका तो भाट ही ले जाया करते हैं। टीका ले जाना, उन्हीं का काम है। अपने राजघराने के टीके लेजाने का कार्य, सरसत भाट किया करता है। भाट, चतुर भी होते हैं। उनकी बातो मे ऐसी चतुराई हुआ करती है, कि वे कायरों में भी वीरता भर देते हैं और उन्हे भी युद्ध के लिए उत्तेजित कर देते हैं। सरसत भाट भी बहुत चतुर है। मुझे विश्वास है, कि वह चन्देरीराज को टीका स्वीकार करा आवेगा।

रुक्म—हां, तुमने ठीक कहा। सरसत, वास्तव में वाक् चतुर है। उसी के द्वारा टीका भेजना ठीक है। तुम सरसत को बुलवाओ और उसे कहला दो, कि वह चन्देरी जाने के लिए तयार होकर आवे।

रुक्म की आज्ञा से मन्त्री ने सरसत भाट को सूचित किया। रुक्म के स्वभाव से सरसत भाट परिचित ही था और रुक्मिणी के विवाह के विषय में भीम और रुक्म के मतभेद को भी वह सुन चुका था। मन्त्री की सूचना-अनुसार, सरसत भाट रुक्म के सन्मुख उपस्थित हुआ। उसने, रुक्म को आशीर्वाद दिया। रुक्म ने कहा—सरसत, तुम्हें बहन रुक्मिणी के विवाह का टीका लेकर चन्देरी जाना होगा। तुम चन्देरी जाने के लिए मेरी सूचनानुसार तयार होकर ही आये होओगे।

सरसत—हाँ महाराज, मुझे सूचना मिल चुकी थी और मैं तयार हो कर ही आया हूँ।

रुक्म—देखो, तुम्हारे चन्देरी जाने की खबर पिताजी को न होने पावे। पिताजी, रुक्मिणी का विवाह उस ग्वाल के साथ करना चाहते थे, चन्देरीराज शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करने में वे सहमत नहीं हैं। यह तो मेरी ही सामर्थ्य है कि रुक्मिणी उस नीच ग्वाले की पत्नी बनने से बच सकी है, अन्यथा पिताजी ने तो उसके साथ रुक्मिणी के विवाह

का एक प्रकार से निश्चय-सा कर लिया था। यद्यपि अब पिताजी वैसे तो रुक्मिणी के विवाह से तटस्थ हो गये हैं, परन्तु मेरा अनुमान है, कि वे गुप्त रूप से कुछ न कुछ अवश्य करेंगे। इधर ज्योतिषी ने भी कहा है, कि रुक्मिणी के विवाह में विघ्न होगा और शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह होने में सन्देह है। यद्यपि हम क्षत्रिय हैं, विघ्न से भय नहीं खाते हैं, विघ्न की सूचना मिलना ही हमारी विजय का शुभ चिन्ह है; फिर भी विघ्न की ओर से सावधान रहना उचित है। इसलिए तुम चन्देरीराज शिशुपाल को, मेरी कही हुई इन बातों से सूचित कर देना और कह देना, कि विवाह के समय विघ्न की सम्भावना है। बहुत सम्भव है, कि पिताजी के सन्देश पर, या स्वयं ही, नीच कृष्ण यहाँ आकर उत्पात करे। उसका कुछ विश्वास नहीं है। इस प्रकार की नीचता करना, उसके लिए बहुत साधारण बात है। अतः, चन्देरीराज साधारण बारात लेकर ही न चले आवें, किन्तु इस प्रकार की तयारी से आवें, कि आवश्यकता होने पर युद्ध भी किया जा सके। यदि कपटी कृष्ण यहाँ आया, तो हमारे द्वारा उसका अवश्य ही नाश होगा। चन्देरीराज की और मेरी सम्मिलित शक्ति के सामने, उसका जीवित बचा रहना सर्वथा असम्भव है। एक तरह से उसका यहाँ आना अच्छा भी है। चन्देरीराज, उस दुष्ट ग्वाले पर रुष्ट हैं। यदि वह ग्वाला यहाँ आया

और यहाँ मारा गया, तो हम चन्देरीराज और मगधराज के यशपात्र माने जावेंगे। जो भी हो, महाराजा शिशुपाल सावधानी से आवें और विवाह-तिथि से कुछ समय पहले आवें; जिससे प्रत्येक विषय पर विचार विनिमय भी किया जा सके। टीके के सम्बन्ध में तो तुम्हे कुछ समझाने की आवश्यकता ही नहीं है। तुम स्वयं चतुर हो, अत महाराजा शिशुपाल को टीका चढ़ा कर ही आना; टीका वापस न लौटने पावे। ज्योतिषी ने, लग्न के लिए तिथि माघ कृष्ण ८ शुभ बताई है। इसे ध्यान मे रखना और इस तिथि को विवाह हो जावे, ऐसा उपाय करना। मैं टीके के-साथ जानेवाला पत्र लिखवा कर, टीका सामग्री के साथ तुम्हे दिये देता हूँ और तुम्हारी सहायता के लिए, कुछ योद्धा भी तुम्हारे साथ किये देता ।

रुक्म ने अपनी ओर से, शिशुपाल के नाम पत्र लिखवाया; जिसमे उसमे रुक्मिणी के साथ विवाह करने का आग्रह किया गया था। रुक्म ने अपना पत्र, शिशुपाल के लिए भेंट-सामग्री, तथा टीका-सामग्री तयार करके सरसत भाट को सौंप दी और एक बढ़िया रथ मे सरसत को बैठाकर, उसे कुछ योद्धाओ के साथ चन्देरी के लिए विदा किया।

किसी कार्य के औचित्य को, प्रकृति स्पष्ट बता देती है। वह अपने किसी संकेत द्वारा कह देती है, कि यह कार्य उचित है

और यह अनुचित। यह बात दूसरी है, कि प्रकृति के संकेत की अवहेलना करके अनुचित कार्य भी किया जावे, लेकिन इसमें कार्य करनेवाले का ही दोष है, प्रकृति का दोष नहीं है। प्रकृति, संकेत-द्वारा कार्य के हिताहित की ओर निर्देश करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर देती है। फिर जो उसकी सम्मति नहीं मानता, उसे कार्य का परिणाम तो भोगना ही पड़ता है।

प्रकृति, जिन संकेतो द्वारा कार्य के औचित्य-अनौचित्य का निर्देश करती है, उनमे से कार्य को उचित बता कर उसका समर्थन करनेवाले संकेत, शुभशकुन कहे जाते हैं और कार्य को अनुचित बताकर उसका निषेध करने वाले संकेत, अपशकुन कहे जाते हैं। आस्तिकों मे, अधिकांश लोग ऐसे निकलेंगे, जो प्रकृति के ऐसे संकेतो को जानते और उन पर विश्वास करते हों। भाट लोग तो प्रकृति के इन संकेतो के फलाफलविचार को भली प्रकार जानते और उनपर विश्वास भी करते हैं।

सरसत भाट, चन्देरी के लिए चला। वह नगर से बाहर भी नहीं हुआ था, कि उसे सामने एक नकटी और कुरूपा कन्या, सिसक-सिसक कर रोती हुई मिली। इस अपशकुन को देखते ही, सरसत सहम उठा। वह अपने मनमें कहने लगा, कि प्रकृति इस कार्य से सहमत नहीं है, अपितु वह विरोध करती है। सरसत इस प्रकार विचार ही रहा था, कि एक विधवा-स्त्री

अपने सिर पर औंधा रीता घड़ा लिए सामने मिली। इस दूसरे अपशकुन को देख कर सरसत ने विचार किया, कि इस कार्य की विपरीतता और असफलता की सूचना प्रकृति स्पष्ट दे रही है। वास्तव में जिस कार्य से वृद्ध तथा अनुभवी लोग असहमत हैं, जो कार्य उनकी सम्मति के विरुद्ध किया जा रहा है, उसमें विघ्न और असफलता स्वाभाविक है। इन अपशकुनों पर से तो चन्देरी के लिए आगे बढ़ना ही न चाहिए था, परन्तु वापस लौट कर भी किसके सामने जाऊँ। दुष्ट रुक्म ने जब अपने बाप की ही बात नहीं मानी, तब वह मूक अपशकुनो को कब मानेगा! लौट जाने पर, रुक्म का कोप–भाजन बनना होगा; इसलिए चन्देरी जाने में ही अपनी कुशल है।

सरसत भाट आगे बढ़ा। वह जैसे ही नगर से बाहर निकला, वैसे ही उसे हीजड़े मिले। सरसत की दृष्टि मे, यह भी अप-शकुन ही था। परन्तु उसकी विवशता ने उसे लौटने न दिया। उसने यह भी विचार किया, कि नगर में तो अच्छे बुरे सभी-लोग रहते हैं, इसलिए उनका सामने मिलना स्वाभाविक ही है; देखें अब मार्ग मे कैसे शकुन होते हैं! वह चन्देरी के मार्ग पर आगे बढा। सरसत, वन के मार्ग में कुछ ही दूर गया था, कि उसने अपनी बाईं ओर श्यामा को—जिसे कोचरी या भैरवी भी कहते हैं—बोलते देखा। सरसत ने इसे भयङ्कर अपशकुन माना,

और वह अपने मनमे कहने लगा, कि यह पक्षी इस कार्य का तीव्र विरोध कर रहा है, तथा इस कार्य के करने से रोक रहा है। वह इस प्रकार विचार ही रहा था, कि हरिण उसका मार्ग काट गये। सरसत सोचने लगा, कि अब तो अपशकुन चरमसीमा के समीप पहुँच चुके है; परन्तु मैं क्या करूँ! मेरे लिए तो कुंडिनपुर लौट कर जाना, मृत्यु को बुलाना है। चाहे जैसे अपशकुन हों, मुझे तो चन्देरी जाना ही होगा, फिर जो दुष्परिणाम होगा, वह मूर्ख रुक्म के साथ ही हम सब को भी भुगतना ही पड़ेगा।

अपशकुनों का सामना करता हुआ सरसत, चन्देरी पहुँचा। मार्ग मे उसे किसी विघ्न का सामना नहीं करना पड़ा। हां, अपशकुनो के कारण उसको खेद अवश्य रहा। चन्देरी पहुँच कर वह जैसे ही नगर मे प्रवेश करने लगा, वैसे ही उसे फिर अपशकुन हुए। सरसत ने अपने मन मे कहा—अपशकुनो, तुम कितना ही विरोध करो, मुझे तो चन्देरीराज के यहाँ जाना ही होगा। यद्यपि तुमने कुंडिनपुर और मार्ग में यह स्पष्ट कर दिया, कि कुंडिनपुर के लिए क्यों विपत्ति बुलाने जा रहे हो और अब यहाँ भी तुम यही कह रहे हो, कि चन्देरी में सन्ताप क्यों लाये हो, परन्तु कुंडिनपुर के लिए विपत्ति और चन्देरी के लिए सन्ताप, मै नहीं बुला रहा हूँ। मैं अपनी ओर

से निर्दोप हूँ। जो कुछ भी कर रहा है, वह मूर्ख रुक्म ही कर रहा है।

सरसत भाट, राजमहल के द्वार पर पहुँचा। उसने द्वारपाल द्वारा शिशुपाल के पास बधाई भेजी, और निवेदन कराया, कि मैं सरसत भाट, कुंडिनपुर से वहाँ की राजकुमारी के विवाह का टीका लेकर आपको चढ़ाने आया हूँ। द्वारपाल ने, सरसत की कही हुई सब बातें शिशुपाल को जा सुनाई। शिशुपाल, बहुत प्रसन्न हुआ। वह विचारने लगा, कि कुंडिनपुर के राजा भीम के एक ही कन्या है, जिसकी बहुत प्रशंसा है और जो रूप गुण तथा लक्षणों से बहुत उत्तम मानी जाती है। उसके विवाह का टीका मेरे लिए आया है, इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है! इस विवाह से मुझे सर्वोत्तम पत्नी प्राप्त होने के साथ ही, रुक्म ऐसे बलवान का अटल सहयोग भी प्राप्त होगा।

शिशुपाल ने, द्वारपालों को आज्ञा दी, कि वे सरसत भाट को स्वागतपूर्वक सभा में लावें। द्वारपालादिकों ने, दही अक्षत आदि मंगल-द्रव्य आगे करके, सरसत भाट का स्वागत किया। सरसत भाट अपने मन में कहने लगा, कि इस प्रकार मंगल-द्रव्य बता कर कृत्रिम शुभ-शकुन करने से कुछ नहीं होता। शुभ शकुन अपशकुन जो होने थे, वे तो पहले ही हो चुके। सरसत, शिशु-

पाल के दरबार में उपस्थित हुआ। उसने शिशुपाल को आशीर्वाद दिया। शिशुपाल ने भी उसका सम्मान किया और उसे योग्य आसन दिया।

सरसत भाट से शिशुपाल पूछने लगा—कुंडिनपुर में सब कुशल तो है? महाराजा भीम और हमारे मित्र रुक्म तो प्रसन्न हैं?

सरसत—आपकी कृपा से अब तक तो सब आनन्द मंगल है। रुक्मकुमार भी आपकी कुशल चाहते हैं।

शिशुपाल—तुम्हारा आगमन किस अभिप्राय से हुआ?

सरसत—कुडिनपुर के महाराजा भीम के एक कन्या है; जिनका नाम रुक्मिणी है। रुक्मिणी, गुण और सौन्दर्य की तो खान ही हैं, परन्तु वे सुलक्षणा भी ऐसी हैं, कि कुछ कहा नहीं जाता। विदर्भ देश, उनके जन्म के पश्चात् दरिद्रता से मुक्ति पाकर, धनवान हो गया है। राजपरिवार में भी, सब प्रकार आनन्द मंगल रहता है और महाराज भीम का कोष भी अक्षय बन गया है। इस प्रकार उनके सुलक्षणों के प्रताप से, विदर्भ देश में नित्य प्रति आनन्द ही रहता है।

सरसत भाट से रुक्मिणी की प्रशंसा सुन कर शिशुपाल, अपने मन में यह विचारता हुआ प्रसन्न हुआ, कि ऐसी सुलक्षणा कन्या मेरी पत्नी बनेगी। उसने सरसत से कहा—हां, कुंडिनपुर की राजकुमारी की मैंने भी ऐसी ही प्रशंसा सुनी है।

सरसत—राजकुमारी विवाह योग्य हुई हैं। अभी उस दिन राजकुमारी के विवाह के विषय में विचार करने के लिए, महाराजा भीम ने एक सभा की, जिसमें राजकुमार, महारानी, मन्त्री और राजपरिवार के लोग सम्मिलित हुए थे। महाराजा ने, राजकुमारी का विवाह कृष्ण के साथ करने का प्रस्ताव किया। उन्होंने कृष्ण की अत्यधिक प्रशंसा की। उसे इन्द्र से भी बड़ा बताया। उसके बचपन के पराक्रम का वर्णन किया। यह बताया, कि उसने लीला मात्र में ही पूतना राक्षसी को मार डाला, काली नाग को नाथ डाला; गोवर्द्धन पर्वत को उंगली पर उठा लिया और कंस को मार कर उग्रसेन को पुनः राजा बनाया।

सरसत के मुख से कृष्ण की बड़ाई सुन सुन कर, शिशुपाल मन ही मन जलने लगा। वह विचारने लगा, कि यह भाट बड़ा ही धृष्ट है, जो मेरे सामने कृष्ण की बड़ाई कर रहा है और मेरे सभासदों को इस प्रकार कृष्ण के पराक्रम से परिचित कर रहा है। इसे रोकना भी ठीक नहीं है, क्योंकि यह कृष्ण की बड़ाई अपनी ओर से नहीं कर रहा है, किन्तु राजा भीम ने इस प्रकार प्रशंसा की, यह बता रहा है।

शिशुपाल की मुखाकृति, उसके हृदय के भाव को बताने लगी। सरसत, शिशुपाल की मुखाकृति देखकर ताड़ गया, कि

इस कृष्ण की प्रशंसा असह्य हो रही है। अब यदि मैंने बात न पल्टाई, तो कार्य बिगड़ जावेगा। इस प्रकार विचार कर, सरसत ने बात बदल दी। वह आगे कहने लगा—इस प्रकार महाराजा भीम ने तो कृष्ण की प्रशंसा की, परन्तु रुक्म ने कृष्ण का विरोध किया—और आपकी प्रशंसा की। राजकुमार ने आपका पक्ष लेकर, राजकुमारी का विवाह आपके साथ करने का प्रस्ताव किया। महाराज और राजकुमार मे इस प्रकार मत भेद हो गया। अन्त में मन्त्री की सम्मति से, राजकुमारी के विवाह का भार राजकुमार पर डाल कर, महाराजा भीम तटस्थ हो गये। राजकुमार को तो अपनी बहन का विवाह आपही से करना इष्ट था, इसलिए उन्होंने यह पत्र लिख कर दिया है और टीका तथा भेंट-सामग्री भेजी है। आप इसे स्वीकार कीजिए। एक बात और है, जो मैं निवेदन किये देता हूँ। रुक्म ने यह पत्र महाराजा से छिपा कर लिखा है और उन्होंने यह भी कहा है, कि आप साधारण बारात लेकर ही न चले आवें।

सरसत ने, शिशुपाल को रुक्म का पत्र देकर, टीका तथा भेंट-सामग्री उसके सामने रख दी, और वह समस्त बात भी उसे सुना दी, जो रुक्म ने उससे कहने के लिए कही थी। शिशुपाल, रुक्म का पत्र पढ़ कर सरसत से कहने लगा—महाराजा भीम वृद्ध हुए है। अब उनकी बुद्धि बराबर काम नहीं

करती, इसीसे उन्होंने उस ग्वाले की प्रशंसा करके उससे अपनी कन्या का विवाह करने का विचार किया था। समझ में नहीं आता, कि जो कृष्ण हमारे भय से समुद्र किनारे भाग गया है, जो नीच जाति का और गुणहीन है, उसे भीम ने अपनी कन्या देने का विचार कैसे किया था। यह तो अच्छा हुआ, कि युवक और बुद्धिमान रुक्म ने अपनी बहन का विवाह उसके साथ नही होने दिया, अन्यथा हम क्षत्रियों के लिए बड़े कलंक की बात होती। एक क्षत्रिय-राजकन्या, नीच ग्वाले को दी जावे, इससे अधिक कलंक और लज्जा की बात और क्या हो सकती है। रुक्म विचारशील व्यक्ति हैं। वे सब बातों को जानते हैं। उनको, क्षत्रियों की मान-प्रतिष्ठा का ध्यान है। मेरे मित्र होने के कारण, वे क्षत्रियो के मानसम्मान से परिचित हैं। मुझे भी रुक्म का ध्यान रहता है। मैं अपनी शक्ति भर, उनका पक्ष कदापि नहीं गिरने दे सकता। मुझे अब विवाह नही करना था, फिर भी मैं रुक्म की बात और क्षत्रियो के सम्मान की रक्षा के लिए, यह टीका स्वीकार करता हूँ।

शिशुपाल की बात सुन कर, सरसत अपने मन में कहने लगा, कि तुमने यह टीका स्वीकार तो किया है, परन्तु क्या ठीक है, कि रुक्म की बात की रक्षा मे तुम्हें अपना सम्मान भी खोना पड़े। उसने शिशुपाल से कहा कि—रुक्म का विश्वास सही

निकला। रुक्म को पहले ही से विश्वास था कि मेरी बात को चन्देरीनरेश व्यर्थ न जाने देंगे। रुक्म ने लग्नतिथि की शोध भी करा ली है। माघ कृष्ण ८ लग्न के लिए निकली है। आप भी अपने ज्योतिषी से विश्वास कर लीजिये, और इस तिथि की स्वीकृति दीजिये।

शिशुपाल—हाँ ठीक है, शुभ काम में अनावश्यक विलम्ब हानिप्रद है।

शिशुपाल ने ज्योतिषी को बुलाने की आज्ञा दी। ज्योतिषी के आजाने पर, शिशुपाल ने उसे कुंडिनपुर से आये हुए टीके की बात से परिचित किया, और विवाहतिथि पर विचार करने के लिए कहा। ज्योतिषी ने, सरसत से रुक्मिणी का जन्म कुण्डली लेकर उसे देखा। उसने, रुक्मिणी और शिशुपाल को जन्म कुण्डली आपस में मिला कर, तथा कुछ विचार कर, नकारात्मक रूप मे सिर हिलाया। शिशुपाल विचारने लगा, कि यह ज्योतिषी कैसा मूर्ख है! जो सभा के मध्य इस प्रकार सिर हिलाता है!' उसने ज्योतिषी से पूछा कि—क्या रुक्म की भेजी हुई विवाह-तिथि ठीक नहीं है?

ज्योतिषी—तिथि के ठीक होने का प्रश्न तो फिर है, पहले तो विवाह ही ठीक नहीं है। मैंने अनेको की जन्मकुण्डली देखी है, परन्तु इस कन्या की ग्रहदशा जैसी ग्रहदशा, दूसरी जन्म-

कुण्डली में नहीं देखी। ग्रहदशा को देखते हुए, इस कन्या की समता करने वाली दूसरी कन्या संसार में है ही नहीं। यह कन्या, शरीरधारिणी शक्ति ही मालूम होती है। मैंने बहुत-बहुत विचार किया, परन्तु इस कन्या का विवाह आपके साथ बनता ही नहीं है। आज मैं आपके क्रोध से भय खाकर, अपनी आजीविका की रक्षा के लिए स्पष्ट बात न कहूँ, तो तब, जब कोई अनिष्ट परिणाम होगा, आप मुझे और मेरी ज्योतिष-विद्या को धिक्कार देंगे। इसलिए मैं अभी ही सच्ची बात कहे देता हूँ, कि इस कन्या के योग्य आप नहीं हैं। इस कन्या का विवाह, आपके साथ कदापि नहीं हो सकता। इसका विवाह तो किसी असाधारण पुरुष के साथ होगा। यदि आप मेरी बात न मान कर, इस कन्या के साथ विवाह करने के लिए गये, तो आपको अपमानित हो कर खाली लौटना पड़ेगा। इसलिए इसी मे कुशल है, कि आप यह विवाह स्वीकार ही न करें। यह कह कर टीका वापस कर दें, कि हमारे ज्योतिषी ने इस विवाह को ठीक नहीं बताया। ऐसा करने से, आप भविष्य में अपमानित और कलंकित होने से बच जावेंगे।

ज्योतिषी की बात सुन, सरसत अपने मन मे कहने लगा, कि यह ज्योतिषी बिलकुल ठीक कहता है, जो बात मार्ग के अपशकुनो ने और कुंडिनपुर के ज्योतिषी ने कही, वही यह भी कहता है।

सिरसत तो अपने मन मे इस प्रकार विचार रहा था, लेकिन शिशुपाल के बदन में ज्योतिषी की बातो पर से आग-सी लग रही थी। ज्योतिषी की बात समाप्त होते ही, शिशुपाल उससे कहने लगा, कि तुम निरे मूर्ख ही जान पड़ते हो! कुंडिनपुर की राज-कुमारी यदि असाधारण पुरुष को विवाही जावेगी, तो मैं क्या साधारण पुरुष हूँ। फिर कैसे कह रहे हो, कि विवाह लौटा दो? जान पड़ता है, तुम्हे किसी ने बहकाया है; इसीसे तुम विवाह लौटादेने को कह रहे हो। हम समर्थ हैं। हमारे सामने ज्योतिषी, या ज्योतिष का वल नहीं चल सकता। हम तो केवल प्रथा-पालन के लिए इसप्रकार पूछ लिया करते हैं। समर्थ को किसी भी समय और किसी भी कार्य मे दोष नहीं होता। पुण्य पाप या अच्छा बुरा, साधारण लोगो के लिए हैं, हमारे लिए नहीं। हम यदि तुम लोगों के कहने को मान ही लिया करें तो राजत्व से भी हाथ धो बैठें। जिस समय हमारी तलवार म्यान से बाहर होती है, उस समय ज्योतिष या पुण्य-पाप न मालूम कहाँ जा छिपते हैं। हमारी शक्ति के सामने, इनका पता नहीं रहता। हमारे कार्य, शक्ति के आधार से हुआ करते हैं, न कि ज्योतिष के आधार से। इसलिए तुम अपने घर जाओ, हमें तुम से अधिक कुछ नहीं पूछना है। और देखो, तुम राजसभा में बातचीत करने की योग्यता नहीं रखते, न सभ्यता ही जानते हो, इसलिए

तुम्हारा 'राज्य-ज्योतिषी' पद आज से नहीं रहेगा; न जागीर आदि ही रहेगी।

अंहकारी लोग, अपनी बात के विरोध में कोई बात सुन सह नहीं सकते। वे, विरोधी बात का समाधान करने के बदले अपनी सत्ता के बल पर विरोधी बात कहनेवाले को दबाने लगते हैं और कभी कभी उसका भयंकर अहित भी कर डालते हैं। यह नहीं देखते, कि सत्य और न्याय किसमे है। उनके समीप वही सत्य और वही न्याय है, जो उन्हे प्रिय है और जो कुछ वे कहते हैं। ज्योतिषी की बात पर शिशुपाल को विचार करना चाहिए था, यह देखना चाहिए था, कि इसके कथन मे कितना तथ्य है, परन्तु उसने ऐसा न करके अपने क्रोधी और अंहकारी स्वभाव का ही परिचय दिया। ज्योतिषी भी सत्य-भक्त था। उसने विचारा, कि सच्ची बात कहने से आज अहित होता है और झूटी बात कहने से कुछ दिन बाद अहित होगा। आज सत्य के लिए जो अहित हो रहा है, उसके लिए तो यह आशा भी की जा सकती है, कि वह कभी हित में परिणत हो जावे; परन्तु झूठी बात कहने पर जो अहित होगी, उसकी पूर्त्ति की तो आशा ही नहीं की जा सकती। इसलिए आज जो अहित हो रहा है, वह भले ही हो लेकिन झूठ बात तो नही कहूँगा। झूठ बात कहने से राजा की हानि तो होगी ही, साथ ही मेरी भी हानि होगी और सच्ची बात

कहने पर राजा की हानि तभी होगी, जब यह सच्ची बात को न माने। परन्तु जब इसे बात की सच्चाई मालूम होगी, तब यह स्वयं, उस सच्ची बात को न मानने का पश्चात्ताप करेगा और इस समय मेरा जो अहित कर रहा है, उसकी पूर्त्ति करेगा। अभी यह अहंकार के अधीन हो रहा है। इस समय इससे कुछ कहना, व्यर्थ है। इस प्रकार विचार कर ज्योतिषी यह कहता हुआ चला गया, कि मैं तो आपके कल्याण की ही कामना करूंगा। आप चाहे मेरी बात मानें या न माने, मैं कहूँगा सत्य और आपके हित की ही बात।

ज्योतिषी के चले जाने पर, शिशुपाल ने सरसत से कहा कि विवाह–तिथि आदि के विषय मे अब विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है। रुक्मकुमार ने जो तिथि निकलवा कर भेजी है, वह हमे भी स्वीकार है। रुक्मकुमार गलत तिथि क्यों भेजेगें? विवाह तो उनकी बहन का ही है न!

सरसत—आपने यह बड़ी अच्छी बात कही। एक जगह लग्न निकल ही चुके हैं, अब इस विषय मे विशेष विचार करवाने से, अनुकूल प्रतिकूल दोनो ही प्रकार की बातें सुननी पड़ती हैं।

शिशुपाल ने, अपने दरबारियो को टीका स्वीकार होने की खुशी मनाने की आज्ञा दी। दरबार मे, केसर गुलाल उड़ने और उत्सव होने लगा।
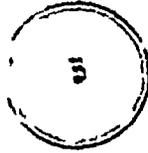
हितशिक्षा

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

अर्थात्—राजन्, सदा मीठी मीठी बातें कहने वाले लोग तो बहुत हैं, पर कड़वी तथा हितकारी बातें कहने और सुनने वाले दुर्लभ हैं ।

संसार में प्रिय बात कहने वाले तो बहुत मिल सकते हैं, परन्तु हित की बात कहने वाले कोई ही मिलते हैं । प्रिय बात तो सभी कह देंगे। सभी यह सोचेंगे, कि अप्रिय बात कह कर किसी को रुष्ट क्यों करें । इसकी हानि-लाभ से अपना क्या सम्बन्ध ! परन्तु यह सोचनेवाले बहुत कम मिलेंगे, कि हानि-लाभ से अपना सम्बन्ध हो या न हो, इसे हमारी बात प्रिय लगे या न लगे, हम कहेंगे हित की बात । यह साहस तो वही कर सकता है, जिसे सत्य पर विश्वास है, जो सत्य के लिए अपने को आपत्ति में डाल सकता है; जो दूसरे का अहित नहीं देखना चाहता और जो दूसरे की हानि-लाभ को अपनी ही हानिलाभ समझता है ।

अप्रिय पर हितपूर्ण सत्य बात कहने का साहस, किसी किसी स्त्री में भी इतना अधिक होता है, कि जितना साहस कई पुरुषों में भी मिलना कठिन है। शिशुपाल की भौजाई भी, ऐसी स्त्रियों में से एक थी। वह सत्यवादिनी, स्पष्टवक्त्री और पतिपरायण स्त्री थी। शिशुपाल भी, अपनी उस भावज का बहुत ही आदर करता था। किसी भी बड़े कार्य में, वह अपनी भावज से सम्मति लिया करता था। भावज भी, बुद्धिमती थी और शिशुपाल से स्नेह रखती थी।

सभा में उत्सव मनाकर और सरसत भाट को यथास्थान ठहराने का प्रबन्ध करके शिशुपाल, भावज के महल की ओर चला। कुंडिनपुर से टीका आने आदि का शुभसमाचार भावज को सुनाने के लिए, शिशुपाल उत्सुक हो रहा था। वह विचारता था, कि भावज यह सब समाचार सुन कर प्रसन्न होंगी। वे मुझे, कृष्ण से वैर न रखने का सदा उपदेश दिया करती हैं, पर रुक्म और भीम का वाद-विवाद सुनकर उन्हे मालूम हो जावेगा, कि कृष्ण कैसा नीच माना जाता है और मै कैसा श्रेष्ठ माना जाता हूँ ! उन्हे यह जानकर भी अवश्य प्रसन्नता होगी, कि राजा भीम की लक्ष्मी मानी जाने वाली कन्या रुक्मिणी, मेरी देवरानी होकर आवेगी और मेरे चरणस्पर्श करेगी।

इसी प्रकार के अनेक संकल्प-विकल्प करता हुआ शिशुपाल,

भावज के महल मे आया। कुंडिनपुर से टीका आने, रुक्म और भीम का मतभेद होने, तथा ज्योतिपी द्वारा विवाह का निषेध होने, आदि बातें शिशुपाल की भावज ने शिशुपाल के पहुँचने से पहले ही सुन ली थी। शिशुपाल को देखते ही भावज समझ गई कि देवर जी अपने भावी-विवाह का समाचार सुनाने के लिए ही आये हैं। उसने, शिशुपाल का सत्कार करके उसे बैठाया। शिशुपाल आया तो है भौजाई को शुभ समाचार सुनाने, पर हर्ष के मारे वह बोल न सका। उसका गला रुक गया। भौजाई ताड़ गई, कि देवरजी को अपार हर्ष है और ये हर्षावेग के कारण बोलने में भी असमर्थ हैं। उसने स्वयं ही शिशुपाल से पूछा, कि कहिये देवरजी, आज तो आप बहुत प्रसन्न मालूम हो रहे हैं। जान पड़ता है कि आज आपको बहुत हर्ष है। आप सदा तो अपने हर्ष में मुझे भी भाग दिया करते हैं परन्तु आज तो आप बोलते तक नही। कहिये तो सही, कि आज इतना हर्ष होने ऐसी कौन सी बात हुई है? क्या कोई आपका शत्रु आपकी शरण आया, अथवा आपके अधीन हुआ है, या कोई देश विजय हुआ है; या कहीं कोष या खदान निकली है?

शिशुपाल ने, बड़ी कठिनाई से अपने हर्ष के आवेग को रोकते हुए उत्तर दिया—इसमें हर्ष की ऐसी कौनसी बात है। ये बातें तो साधारण हैं, जो राजकार्य में हुआ ही करती हैं।

भौजाई—फिर असाधारण बात क्या हुई है, जिसके कारण इतना हर्ष है ?

शिशुपाल—विवाह का टीका आया है।

भौजाई—कहाँ से और किसके लिए ?

शिशुपाल—कुंडिनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी के विवाह का टीका, मेरे लिए आया है। लो, यह कुंडिनपुर का पत्र पढ़ो।

शिशुपाल ने, रुक्मकुमार का पत्र अपनी भौजाई को दिया। भौजाई ने रुक्मकुमार का पत्र पढ़ कर शिशुपाल से कहा कि आपके विवाह का टीका आया है यह तो प्रसन्नता की बात है, परन्तु इस पत्र मे कुंडिनपुर के राजा भीम का तो नाम भी नहीं है। यह पत्र तो रुक्मकुमार की ओर से लिखा हुआ है। क्या भीम अपनी पुत्री का विवाह आपके साथ करने में सहमत नहीं हैं ?

शिशुपाल—हाँ बुड्ढा और बुद्धिहीन भीम, रुक्मिणी का विवाह उस ग्वाल कृष्ण के साथ करना चाहता था; परन्तु रुक्म ने अपनी बहन का विवाह उसके साथ नही होने दिया, और मेरे साथ विवाह करने के लिए टीका भेजा है।

भावज—अभी आपने टीका स्वीकार तो नहीं किया न ?

शिशुपाल—ऐसे समय का टीका स्वीकार करने में विलम्ब करना, कौनसी बुद्धिमानी होती ? मैंने तो टीका स्वीकार कर लिया है।

भावज—अभी विवाह तिथि तो निश्चय नहीं हुई है ?

शिशुपाल—हो गई। माघ कृष्ण ८ को विवाह है।

भावज—अपने यहाँ के ज्योतिषी ने क्या सम्मति दी थी ?

शिशुपाल—ज्योतिषी मूर्ख है, केवल भ्रम मे डालने की बात जानता है। इसके सिवा, हम वीर लोग ज्योतिषी के अधीन क्यो रहे ? ज्योतिष के अधीन रहने वाले कायर है।

धीमन्तो वद्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत।
अशक्ताः पौरुष कर्तुं क्लीवा दैव मुपासते॥

अर्थात्—बुद्धिमान और माननीय लोग, पुरुषार्थ को ही बड़ा मानते है, दैव या प्रारब्ध की उपासना तो पुरुषार्थ न कर सकनेवाले नपुंसक ही करते हैं।

भावज—तब भी उसने कहा क्या था ?

शिशुपाल—वह कहता था, कि टीका लौटा दो, विवाह मत करो; लेकिन मैं उसकी बात मानकर क्षत्रियो के लिए कलंक की बात कैसे होने दे सकता था।

भावज—मेरी समझ से तो ज्योतिषी की बात माननी चाहिये। यह विवाह स्वीकार न करना चाहिये। जिस विवाह मे भीम सहमत नहीं हैं, अपितु उनका विरोध है, उस विवाह को अस्वीकार करने में ही कल्याण है। भीम जब कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहते है; तब कृष्ण

वहाँ पर अवश्य ही आवेगें और वे, किसी भी प्रकार रुक्मिणी का अपने साथ विवाह करेंगे। यदि आपने कृष्ण से युद्ध भी किया, तब भी विजय पाना कठिन है। आपको, अपने योद्धा कटा कर खाली हाथ वापस लौटना पडेगा; जो बड़े अपमान की बात होगी। इसलिए इस विवाह की बात को इतने ही से समाप्त कर दो, आगे मत बढाओ। टीका फेर दो और भाट से कह दो, कि हमारे घर मे वृद्धजनो को यह विवाह स्वीकार नहीं है।

भावज की बात सुनकर शिशुपाल, खीझ कर कहने लगा—वाह भावजजी, आपने अच्छी सम्मति दी। आप कितनी ही बुद्धिमती क्यों न हों, परन्तु आखिर हैं तो स्त्री ही! स्त्रियों में, कायरता और अदूरदर्शिता स्वभावत. होती है। हम आपका सम्मान बढ़ाने के लिए कार्य में आपसे सम्मति लिया करते हैं, परन्तु कभी-कभी तो आप ऐसी भद्दी बात कह डालती हैं, कि कुछ कहा नही जाता। हम क्षत्रिय हैं। चन्देरी के राजा हैं। संसार में हमारी वीरता प्रसिद्ध है। यदि हम आया हुआ और स्वीकार किया हुआ टीका लौटा दें, तो इसमे हमारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी या हमारी नाक कटेगी? लोग हमे क्या कहेंगे? रुक्म ने हमारा पक्ष लेकर बाप से विरोध बांधा, और अब हम टीका वापस करके अपने कुल को कलंक लगावें? आपको तो यह

विचार कर हर्षित होना चाहिये था, कि इस प्रकार की चढ़ा बढ़ी में हमारे देवर का मान रहा है! इस विवाह को करने के लिए हमारा उत्साह बढ़ाना चाहिए था, लेकिन आपने तो ऐसी अपमान भरी सम्मति दी, कि जैसी सम्मति न तो कोई वीर-नारी दे ही सकती है, न कोई क्षत्रिय मान ही सकता है।

भावज—देवरजी, आपके सम्मान-अपमान का ध्यान मुझे भी है। मैं भी यही चाहती हूँ, कि आपका सम्मान बढ़े, किसी भी समय और कहीं भी आपका अपमान न हो। मैंने जो सम्मति दी है, वह भी आपके सम्मान की रक्षा और आपको अपमान से बचाने के लिए ही। आप, उस समय टीका फेरने में अपमान मानते हैं, परन्तु यह अपमान, बारात लेकर विवाह करने के लिए जाने पर भी बिना विवाह किये लौटने के अपमान की अपेक्षा, कुछ नहीं है। इसलिए मैं आप से फिर यही कहती हूँ, कि बात आगे मत बढ़ने दो; इतने ही में समेट लो। अभी तो टीका ही फेरना पड़ता है, लेकिन फिर मोर बंधे हुए फिरोगे। कृष्ण, आपके भाई हैं; ५६ कोटि यादव के स्वामी हैं; इसलिए उनसे लड़ाई का अवसर न आने देना ही अच्छा है।

शिशुपाल—मैं आपकी यह सम्मति कदापि नहीं मान सकता। कृष्ण, या उनके ५६ कोटि यादवों से मैं भय नहीं खाता हूँ। यदि वह यहाँ आया भी, तो यह तो मेरे लिए प्रसन्नता

की बात होगी। मैं, उसे उसकी सेना सहित बात की बात में नष्ट कर डालूंगा, और रुक्मिणी के साथ ही, विजय लेकर घर आऊंगा। ऐसे सुअवसर को—जब कि शत्रु स्वयं ही मेरी वीरताग्नि में भस्म होने के लिए आने वाला हो—मै कदापि नहीं खो सकता।

भावज—विजय-पराजय का किसको पता है कि किसकी हो, परन्तु निष्कारण युद्ध छेड़ कर मनुष्यो का नाश कराना बुद्धिमानी नही है। आपकी बातो से मै समझ गई, कि आप टीका फेर देना अनुचित समझते हैं। ठीक है, आप टीका वापस मत लौटाइये, मगर एक बात मेरी भी मान लीजिये।

शिशुपाल—क्या ?

भावज—आप यह विवाह-तिथि टाल दीजिये। मैंने यहाँ के और कुंडिनपुर के ज्योतिषियों का मत सुन लिया है, इसीलिए मैं आपसे यह लग्नतिथि टाल देने का अनुरोध करती हूँ। आप, भाट से कह दीजिये, कि यह विवाह-तिथि हमारे अनुकूल नहीं पड़ती है, इसलिए हम दूसरी अमुक तिथि को विवाह करेंगे

शिशुपाल—निष्कारण विवाह-तिथि बदलने का कैसे कहूँ ? विवाह तो तभी रोका जा सकता है, जब कोई बड़ा कारण हो।

भौजाई—आप यह कारण बता दीजिये, कि इस तिथि पर हमें एक दूसरी कन्या से विवाह करना है।

—

शिशुपाल—दूसरी कन्या कौनसी है, जिसके लिए यह कारण बतादूं ? तथा यह कारण बताकर विवाह रोक दिया और फिर दूसरी कन्या से विवाह न किया तो इसमें मेरा कैसा अपमान होगा ?

भौजाई—अपमान तो तब होगा, जब बताया हुआ कारण झूठ ठहरे। मैं आपका दूसरी कन्या से इस तिथि को विवाह करा दूंगी; फिर तो अपमान की कोई बात न रहेगी।

शिशुपाल—आप किस कन्या के साथ मेरा विवाह करावेगी ?

भावज—मेरी छोटी बहन अविवाहिता है। मैं अभी अपने पिता के यहाँ जाकर, उसके विवाह का टीका, आपके यहाँ भिजवा दूंगी और रुक्मिणी से विवाह करने की जो तिथि नियत हुई है, उस तिथि पर आपका मेरी बहन के साथ विवाह करा दूंगी। मेरी बहन से विवाह करने के पश्चात्, आप रुक्मिणी को भी विवाह लाइयेगा, मुझे कोई आपत्ति नहीं है; परन्तु यह विवाह तिथि टाल दीजिये।

भावज की बात सुनकर शिशुपाल, ठहाका मार कर हँस पड़ा, और कहने लगा, कि आप रुक्मणी से विवाह करने का विरोध क्यों करती हैं, इसका भेद अब खुला है। अब मुझे मालूम हो गया, कि आप स्वार्थ के वश होकर ही टीका वापस लौटाने का कह रही हैं। स्वार्थी मनुष्य, दूसरे के हिताहित

या अपमान-सम्मान को नहीं देखता। वह तो अपना स्वार्थ सिद्ध करने ही में रहता है। यही बात आप से भी मालूम हुई। अपनी बहन का विवाह मेरे साथ जुटाने के लिए ही, आप इतनी कोशिस कर रही हैं, और इस बात का विचार नहीं करती हैं, कि हमारे देवर की कुंडिनपुर मे जो प्रशंसा हुई है टीका वापस कर देने पर वह प्रशंसा रहेगी या मिट्टी में मिल जावेगी। लोग स्त्रियो को कपट की खान बताते हैं, जो ठीक ही है। यदि आपको अपनी बहन का विवाह मेरे साथ ही कराना था, तो आप मेरे से स्पष्ट कह देतीं। मैं कुंडिनपुर से लौट कर आपकी बहन से भी विवाह कर लेता। इसके लिए इस प्रकार कपट से काम लेने की क्या जरूरत थी! लेकिन ऐसा करना, स्त्रियो का स्वभाव ही है। आपने तो अपने कपटी स्वभाव का परिचय दिया, परन्तु हम तो उदार ही रहेंगे। इसलिए हम आपको विश्वास दिलाते हैं, कि कुंडिनपुर से लौट कर आपकी बहन को भी विवाह लावेंगे। आप धैर्य्य धरो, घबराओ मत।

भावज—देवरजी, आपका यह समझना भ्रम है। आप यदि मेरी बहन के साथ विवाह न करेंगे, तो वह कुंवारी न रह जावेगी। मैंने, टीका लौटाने का इसलिए कहा है, कि इस टीका भेजने में भीम सहमत नहीं है और मुझे विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है, कि रुक्मिणी भी आपकी पत्नी नहीं बनना चाहती। वह

कृष्ण को ही चाहती है। कन्या के न चाहने पर भी, उसके साथ विवाह करने जाना, वीरता नहीं है; और ऐसा करने में अपमान का भी भय है। रुक्मिणी, कृष्ण को चाहती है। इस लिए विवाह के अवसर पर कृष्ण अवश्य आवेंगे। आप कुछ भी कहे, परन्तु कृष्ण का पराक्रम मैं सुन चुकी हूँ। मेरा विश्वास है, कि आप उनके सामने नहीं ठहर सकते। कायरो की तरह भाग जावेंगे। ऐसा होने पर, आपका भी अपमान होगा और आपकी कुबुद्धि के परिणाम स्वरूप हजारो स्त्रियों को अपना सुख सुहाग खोकर विधवा बनना पड़ेगा। इसीलिए मैं आपको रोकती हूँ। अपनी बहन से विवाह करने का तो इसलिए कहा है, कि जिसमें विवाह-तिथि टालने के विषय में कोई कुछ न कह सके। मेरी बहन के विवाह के लिए ही मैंने यह सब कहा है, ऐसा समझना भूल है।

भावज की बात सुनकर शिशुपाल, रुष्ट होकर कहने लगा— भावज, आप क्षत्रिय कन्या और वीरपत्नी हैं? बारबार शत्रु की प्रशंसा करने में, आपको लज्जा नहीं होती? आप हमे कृष्ण का भय क्यों दिखाती हैं? आज तक कृष्ण ने कहीं विजय भी पाई है? मैं, उसको और उसके ५६ कोटि यादवों को, एक क्षण मे ही बांध सकता हूँ। मैं, आपको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था

और समझता था कि भावजजी मुझे क्षत्रियोचित शिक्षा ही देंगी, परन्तु आज मुझे इसके विपरीत अनुभव हुआ है।

भावज—देवरजी, मैने अपनी ओर से तो उचित बात ही कही है; यह बात दूसरी है, कि मेरी उचित बात भी आपको रुचिकर प्रतीत नहीं हुई। आपको मेरी बात अभी तो बुरी मालूम हुई है, परन्तु आगे चलकर आप स्वयं अनुभव करेंगे, कि भावज ने हम से हित की ही बात कही थी। मुझे जो कुछ कहना था, वह कह चुकी और अब भी कहती हूँ, कि रुक्मिणी आपको नहीं चाहती, इसलिए रुक्मिणी के विवाह का टीका स्वीकार न करें। इस पर भी यदि आप मेरी बात न मानें, तो आपकी इच्छा, परन्तु मै तो इस विवाह से सहमत नहीं हूँ।

भौजाई की बात के उत्तर में शिशुपाल, यह कहता हुआ भावज के महल से चला गया, कि आप सहमत नहीं हैं तो न सही, हम पुरुष, स्त्रियों की बातों में नहीं लग सकते। भावज ने भी, शिशुपाल के उत्तर पर से समझ लिया, कि इनके बुरे दिन आये हैं, इसीसे इन्हें अच्छी बात नहीं रुचती और ये रुक्मिणी रूपी दीपक पर, पतंग की तरह जल मरने को तयार हुए हैं।
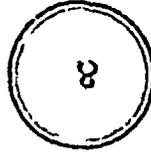
रुक्मिणी की प्रतिज्ञा

बन्धनानि खलु सन्तिबहूनि प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत् ।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडांघ्रिर्निष्क्रियो भवति पंकजकोषे ॥

अर्थात्—संसार में अनेक प्रकार के बंधन विद्यमान हैं, लेकिन प्रेम रूपी रस्सी का बंधन सबसे बढ़कर है। काठ को भेदने में समर्थ भ्रमर प्रेम की रस्सी से बंधकर, कमल के मुख में बंद होकर प्राण दे देता है, परन्तु उसे छेद कर निकलने की चेष्टा तक नहीं करता।

संसार में, सच्चे प्रेमी बहुत कम होते हैं। वास्तव में, प्रेमी बनना है भी कठिन। प्रेमी, अपने प्रेमपात्र के लिए अपना सर्वस्व-यहाँ तक कि अपने प्राण-को-भी तृणवत् समझता है। ईश्वर और धर्म्म से प्रेम करने वालों के तो ऐसे अनेकों उदाहरण मिलेंगे, परन्तु साधारण व्यक्ति से और वह भी स्वार्थ से सना हुआ प्रेम करने वालों के भी, ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे, जिनमें प्रेमी ने अपने प्रेमास्पद पर प्राण तक न्योछावर कर दिये।

यद्यपि, स्वार्थ से सने हुए प्रेमी के नाम पर कष्ट सहन का वास्तविक कारण प्रेम है, या स्वार्थ, यह कहना तो कठिन है; लेकिन स्वार्थपूर्ण प्रेम पर से यह तो जाना जा सकता है, कि जब स्वार्थपूर्ण प्रेम के लिए भी इतना त्याग और कष्ट सहन की कठिन तपस्या की जाती है, तो नि स्वार्थ प्रेम के लिए कितने त्याग और कष्ट सहन का आवश्यकता है। वास्तव में, प्रेम के मार्ग को वही अपना सकता है, जो कष्ट को भी सुख मानने की क्षमता रखता हो। जिसमे ऐसी क्षमता नहीं है; उसका प्रेम भी तभी तक रहेगा, जब तक कि सामने कष्ट नहीं है।

मोक्ष की दृष्टि से तो वह प्रेम हेय है, जिसमें सांसारिक स्वार्थ की किंचित बू है। सांसारिक स्वार्थपूर्ण प्रेम, मोक्ष के लिए निरर्थक है। मोक्ष के लिए तो नि.स्वार्थ प्रेम की आवश्यकता है और नि:स्वार्थ प्रेम ही ईश्वरीय नियम भी है; लेकिन नैतिक दृष्टि से, स्वार्थपूर्ण प्रेम के भी दो भेद हो जाते है। एक पवित्र और दूसरा अपवित्र। अनन्य और विषय-सुख की लालसा से रहित प्रेम, पवित्र माना जाता है और इससे विपरीत प्रेम, अपवित्र माना जाता है। अपवित्र प्रेम, नैतिक दृष्टि से भी हेय है।

रुक्मिणी के हृदय में, कृष्ण के प्रति प्रेम था और अनन्य प्रेम था। यह तो नहीं कहा जा सकता, कि कृष्ण के प्रति

रुक्मिणी का प्रेम विषयसुख की लालसा से था, या इस लालसा से रहित था, परन्तु यदि विषयसुख की लालसा से ही रुक्मिणी को कृष्ण से प्रेम होता, तो इसकी पूर्ति तो शिशुपाल से हो ही रही थी। बल्कि, कृष्ण के अनेक रानियां थीं, इसलिए उसे कृष्ण द्वारा उतना विषयजन्य सुख नहीं मिल सकता था, जितना शिशुपाल द्वारा मिल सकता था। इसलिए उसे, कृष्ण के प्रेम मे कष्ट उठाने की आवश्यकता न थी। कृष्ण के प्रति रुक्मिणी के अनन्य प्रेम और रुक्मिणी के कष्टसहन को देखते हुए भी, यह नहीं कहा जा सकता, कि उसका कृष्णप्रेम विषय सुख की लालसा से ही था। यदि रुक्मिणी का प्रेम केवल विषय सुख की लालसा से ही होता, तो आज उसकी कथा भी न गाई जाती। क्योंकि इस प्रकार की लालसा, अनैतिकता में पहुँचा देती है और अनैतिकता मे पहुँचे हुए व्यक्ति के चरित्र को, कोई भी भला आदमी आदर नहीं दे सकता। रुक्मिणी का प्रेम, पवित्र माना जाता है; इसलिए भी यह नहीं कहा जा सकता, कि उसका प्रेम विषय सुख की लालसा मे ही हो। संभव है, कि सांसारिक होने के कारण रुक्मिणी का प्रेम, किंचित विषय सुख की भावना लिए हुए भी हो, परन्तु इस भावना का प्राधान्य न होने के कारण, उसका प्रेम पवित्र ही कहा जा सकता है और इस बात को उसका अनन्य कृष्ण-प्रेम और भी पुष्ट बना देता है।

रुक्मिणी ने, कृष्ण की प्रशंसा पहले से ही सुन रखी थी। उसके हृदय में, कृष्ण की प्रशंसा सुन कर ही उनके प्रति प्रेम का अंकुर जम चुका था, परन्तु सहायता के अभाव में उस प्रेमांकुर की वृद्धि नहीं हुई थी। रुक्मिणी के विवाह को लेकर, भीम और रुक्म में जो मतभेद हो गया था, उस मतभेद ने रुक्मिणी के प्रेमाङ्कुर में जल सिंचन किया।

रुक्मिणी को, पिता और भाई के मतभेद का समाचार मालूम हुआ। वह अपने भाई की उद्दंडता, अदूरदर्शिता और उच्छृंखलता को जानती थी और यह भी जानती थी, कि मेरी माता पर भी भाई का प्रभाव है। अपने पिता की न्यायप्रियता दूरदर्शिता और अनुभववृद्धता पर उसे विश्वास था। साथ ही, उसने कृष्ण की प्रशसा और शिशुपाल की निन्दा भी सुन रखी थी। उसमें, शिशुपाल के प्रति किंचित भी प्रेम न था; लेकिन कृष्ण-प्रेम का अङ्कुर उसके हृदय के एक कोने में छिपा हुआ था। पिता द्वारा की गई कृष्ण की प्रशंसा और पिता द्वारा किये गये विवाह के प्रस्ताव को सुन कर रुक्मिणी के हृदय का वह प्रेमाङ्कुर कुछ लहलहा उठा। परन्तु साथ ही उसे यह सुन कर चिन्ता भी हुई, कि मेरे विवाह का भार भाई पर छोड़कर, पिता तटस्थ हो गये हैं और मेरे भाई की इच्छा, मेरा विवाह शिशुपाल के साथ करने की है, तथा माता भी भाई की इच्छा से सहमत है।

भाई की इच्छा को दृष्टि में रख कर, रुक्मिणी विचारने लगी, कि भाई, पिता के प्रस्ताव की तो अवहेलना कर रहा है, परन्तु क्या मुझ से पूछे विना ही–मेरी इच्छा जाने विना ही—मेरा विवाह शिशुपाल के साथ कर देगा। क्या भाई का यह कार्य न्यायसंगत होगा। जिसको चिरसंगी बनाना है, उस कन्या की इच्छा भी न जानी जावेगी। क्या मुझको, मूक पशु की तरह चुपचाप अनचाहते पुरुप के साथ चली जाना होगा। क्या मुझे बलात् अपना जीवन अनिच्छित पुरुप को सौपना पड़ेगा। मुझे अपने जीवनसाथी के विषय मे विचार करने का किंचित भी अधिकार नहीं है। मनुष्य होने के नाते, मुझे अपना जीवन-साथी, अपना हृदयेश्वर, चुनने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है, परन्तु क्या भाई मेरे इस अधिकार पर वज्राघात कर डालेगा। लेकिन यदि भाई ने यह अन्याय कर ही डाला, तो मैं इस अन्याय का प्रतिकार किस तरह करूंगी। मैं अपने अधिकार की रक्षा और उसका उपयोग कैसे कर पाऊंगी। क्या मुझे भाई के विरुद्ध विद्रोह मचाना पड़ेगा। नहीं-नहीं, ऐसा करने की आवश्यकता ही क्यो पडेगी। कदाचित् भाई मेरी उपेक्षा भी कर दे, परन्तु मुझे अपनी चिरसंगिनी बनाने की इच्छा रखनेवाला तो मेरी इच्छा जानेगा या नहीं। वह तो विचारेगा, कि जिसे मै अपनी चिरसंगिनी बनाना चाहता हूँ, वह भी मेरी चिरसंगिनी

बनना चाहती है या नहीं। क्या वह भी मेरी उपेक्षा कर देगा। क्या, कन्या का देन लेन मूक पशुओं की ही तरह होगा। कन्या की इच्छा की अपेक्षा कोई भी न करेगा? पुरुष हम अबलाओं पर ऐसा अन्याय कर डालेंगे? परन्तु कदाचित मेरे पर ऐसा अन्याय होने लगा, तो मैं अपने को ऐसे अन्याय से किस प्रकार बचा सकूँगी।

रुक्मिणी अपने मनमें इसी प्रकार के विचार किया करती थी। उसे इस बात का किंचित् भी पता न था, कि मेरे विवाह का टीका शिशुपाल के यहाँ भेज दिया गया है। रुक्म ने, टीका भेजा भी था चुपचाप, किसी को खबर भी न होने दी थी। उसे भय था, कि कहीं पिता की असहमति के कारण, शिशुपाल टीका अस्वीकार न कर दे; अन्यथा यहाँ के लोगों में बहुत अपमान सहना होगा और पिता की सम्मति की उपेक्षा करने के कारण मेरी निन्दा भी होगी। इस भय से ही उसने टीका चुपचाप भेजा था, जिससे यदि शिशुपाल अस्वीकार भी कर दे, तो यहाँ किसी को—उस अस्वीकृति का—पता न हो, और यदि स्वीकार कर लिया, तो फिर तो छिपाने की आवश्यकता ही क्या है।

रुक्मिणी अभी इसी अनुमान मे थी, कि भाई, पिता की इच्छा के विरुद्ध और मेरी इच्छा जाने बिना मेरा विवाह शिशु-पाल के साथ तय न करेगा। परन्तु चन्देरी से सरसत भाट के

लौट आने पर, उसका यह भ्रम मिट गया। वह यह जान गई, कि भाई, मेरी इच्छा की अवहेलना करके स्वेच्छाचार से काम लेना चाहता है।

इधर चन्देरी में, शिशुपाल को टीका चढ़ाकर और विवाह-तिथि स्वीकार करा कर, सरसत भाटने शिशुपाल से विदा माँगी। शिशुपाल ने, सरसत को, सम्मान-सत्कार-पूर्वक विदा किया। चन्देरी से विदा होकर सरसत, कुण्डिनपुर आया। उसने, रुक्म को बधाई देकर, उससे शिशुपाल द्वारा टीका और विवाह—तिथि स्वीकार कर ली जाने का समाचार कहा। रुक्म को, टीका चढ़ जाने से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने, सरसत को पुरस्कार देकर विदा किया और मन्त्री को विवाह की तयारी करने की आज्ञा दी। उसने मन्त्री से कहा, कि नगर को सजाओ, खाने-पीने, देने-लेने, की वस्तुओ और ठहरने के स्थान का प्रबन्ध करो, तथा साथ ही साथ ऐसा प्रबन्ध भी करो, कि आवश्यकता पड़ने पर, युद्ध भी किया जा सके।

रुक्म की आज्ञानुसार मन्त्री ने, विवाह-विषयक प्रबन्ध शुरू किया। बात की बात में, सारे नगर मे यह समाचार फैल गया, कि रुक्मिणी का विवाह चन्देरीराज शिशुपाल के साथ होना निश्चय हुआ है और अमुक तिथि को विवाह होगा। जनता

इस विषय पर, भिन्न-भिन्न सम्मति बनाने लगी। कोई इस विवाह को अच्छा बताता था और कोई बुरा। रुक्मिणी की सखियों ने भी यह समाचार सुना। वे, रुक्मिणी को यह शुभ समाचार सुनाकर बधाई देने के लिए रुक्मिणी के पास आईं। वे, रुक्मिणी से कहने लगी—सखी, हम सब आपको बधाई देने आई है। अबतो हमारा आपका साथ थोडे ही दिन का है। थोड़े दिन बाद तो आप हम से बिछुड़ जावेंगी। फिर तो शायद हमारी याद भी न रहे।

सखियो की बात सुन कर रुक्मिणी उनसे कहने लगी—सखियो, आज निष्कारण तुम इस प्रकार की बातें क्यों कर रही हो? मैं तुम्हारा साथ छोड़ कर कहाँ जा रही हूँ, जो तुम्हे विस्मृत हो जाऊँगी।

सखियां—लो, सारे शहर मे तो आपके विवाह की तयारी हो रही है और आपको पता भी नहीं है। बहन, जानबूझ कर इतनी भोली क्यो बन रही हो?

रुक्मिणी—मैं सत्य कहती हूँ, कि मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं है। मैंने तो यह इतनी बात भी तुम्हीं से सुनी है।

सखियाँ—अच्छा तो हम आपको सुनाती है, सुनिये, आपका विवाह, चन्देरी राज शिशुपाल के साथ ठहरा है।

विवाह का टीका भी चढ़ाया जा चुका है और माघ कृष्ण ८ को विवाह होगा। इसीसे हम कहती हैं, कि कुछ दिन बाद, जब आप चन्देरी की रानी बन जावेंगी, तब आपको हमारी याद क्यों रहेगी! फिर तो किसी दूसरे की ही याद रहेगी और वह भी सहचारिणी की नहीं, किन्तु सहचारी की।

रुक्मिणी की सखियाँ विचारती थीं, कि रुक्मिणी, शिशुपाल से अपना विवाह होने की बात सुनकर प्रसन्न होगी, हमें पुरस्कार देगी परन्तु उन्हें कुछ ही देर मे मालूम हुआ कि हम भ्रम में थीं। उन्होंने देखा, कि विवाह का समाचार सुनकर रुक्मिणी की स्वाभाविक प्रसन्नता भी चिन्ता में परिणत हो गई। वे, ऐसा होने के ठीक कारण का अनुमान भी न कर सकीं और रुक्मिणी से कहने लगीं—सखी, आप उदास क्यों हो गई हैं? क्या आपको यह विचार हो आया, कि मुझे चिरपरिचित गृह और सखी सहेलियों को छोड़ कर जाना होगा! परन्तु सखी, यह तो प्रसन्नता की बात है, इसमें खेद का कोई कारण नहीं है। यह तो संसार का बहुत साधारण नियम है। कन्याओं का गौरव भी, ससुराल में ही है। लता, वृक्ष के साथ ही शोभा पाती है, इसी प्रकार स्त्री की शोभा भी पति के साथ रहने में ही है।

रुक्मिणी—सखियों, आप वास्तविक बात नहीं समझ सकीं

हैं। मै इसलिए चिन्तित नही हूॅ, किन्तु इसलिए चिन्तित हूँ, कि क्या मुझे ऐसे व्यक्ति को अपना जीवन साथी बनाना पड़ेगा, जिसके लिए मेरे हृदय मे किंचित् भी स्थान नही है। क्या इस विषय मे भाई को मेरी इच्छाएँ जानने की आवश्यकता न थी? क्या कन्याओ का जीवन इतना निकृष्ट है, कि उन्हे, चाहे जिसके साथ कर दिया जावे। मैं, इन्ही समस्याओ मे उलझ गई हूँ। इन समस्याओ के सुलझने का मुझे कोई मार्ग नही दिखता। तुम सब, थोड़ी देर के लिए मुझे अकेली छोड़दो, जिसमें मैं, इन समस्याओ के विषय मे विचार कर सकूॅ।

रुक्मिणी की इच्छानुसार रुक्मिणी की सखियॉ वहॉ से चली गईं। रुक्मिणी, अकेली रह गई। वह, विचारने लगी, कि—मेरी इच्छा जाने बिना ही भाई ने मेरा विवाह शिशुपाल के साथ ठहरा कर, मेरे साथ अन्याय किया है। भाई को अपनी इच्छा की पूर्त्ति के लिए. मेरी इच्छा की हत्या न करनी चाहिए थी। कन्या की इच्छा जाने बिना ही, उसका जीवन-साथी चुनने का अधिकार किसी को नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए स्वतन्त्र है, कि वह जिसे भी चाहे, अपना जीवन साथी बनावे। लेकिन भाई के कार्य से जान पडता है कि पुरुषों ने इस विषय में अन्याय मचा रखा है। उन्होंने, हम कन्याओ की इस विषयक स्वतन्त्रता छीन कर,

अपने अधिकारों को विस्तृत बना लिया है। वे, अपनी जीवनसाथिनी बनाने में, स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता से काम लेते हैं. बलात् किसी को अपनी पत्नी बना लेते हैं, उसकी इच्छा की किंचित् भी अपेक्षा नहीं करते। यह उनका डाकूपन है। मैं समझती थी, कि भाई अपनी उद्दण्डता से कदाचित मेरी इच्छा की अवहेलना भी कर डालेगा, तब भी, जिसे मेरा जीवनसाथी बनाया जा रहा है, वह शिशुपाल तो मेरी इच्छा जानने के पश्चात् ही विवाह स्वीकार करेगा। परन्तु मेरा यह समझना, केवल भ्रम निकला। भाई और शिशुपाल, दोनों एक ही श्रेणी के निकले। इन दोनों ने तो मुझ पर अत्याचार करना चाहा है, मेरे अधिकार को पददलित करना चाहा है, परन्तु क्या मुझे चुपचाप अपने पर अत्याचार होने देना चाहिए! क्या मुझे अपने अधिकार की रक्षा का प्रयत्न न करना चाहिए! यदि मैंने इस अत्याचार का विरोध न किया, तो मेरी अनेक बहनों को भी इसी प्रकार के अत्याचार का शिकार होना पड़ेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि मैं अपना प्रेमपात्र किसे बनाऊँगी! भाई, मेरे जिस हृदय पर शिशुपाल का अधिकार कराना चाहता है, वह हृदय, शिशुपाल से बचा कर किसे सौंपूँगी! कृष्ण के प्रति मेरे हृदय में प्रेम का छोटासा अंकुर अवश्य है, परन्तु उनके विषय में भी, मैं, अधिक कुछ

नहीं जानती। ऐसी दशा में वह प्रेमांकुर बढ़ाने भी कैसे दूँ।

रुक्मिणी इस प्रकार के विचारों मे पड़ी हुई थी। वह अपने विषय में किसी निश्चय पर न पहुँच सकी। इस बीच में, नारद ऋषि आगये। नारद की कृपा से, उसके हृदय का कृष्ण—प्रेमांकुर विशाल हो गया, और उसने भविष्य के विषय मे भी निश्चय कर लिया।

नारद जी, कृष्ण के लिए एक योग्य पटरानी की खोज में लगे हुए थे। वे, कृष्ण की पटरानी, सत्यभामा के व्यवहार से असन्तुष्ट थे। इसका कारण था, सत्यभामा का अभिमान। एक दिन सत्यभामा, दर्पण मे अपना मुख देख रही थी, इतने ही मे वहाँ नारदजी पहुँच गये। सत्यभामा की पीठ की ओर नारद जी थे, इस कारण नारदजी का प्रतिबिम्ब भी उसी दर्पण मे पड़ा, जिसमे सत्यभामा अपना मुख देख रही थी। दर्पण में, अपने मुख के पास नारद का मुख देख कर, सत्यभामा, रुष्ट हो कहने लगी—हैं, मेरे मुख-चन्द्र के पास यह राहु सा किसका मुख है। सत्यभामा की यह बात सुनते ही, नारद, पीछे पाँव लौट पड़े। वे, विचारने लगे, कि सत्यभामा को अपने रूप का बहुत गर्व है। वह, अपने मुख को चन्द्र के समान और दूसरे के मुख को राहु के समान मानती है। हरि की पटरानी को ऐसा गर्व तो न चाहिए। कृष्ण तो इतने निरभिमानी और उनकी

पटरानी ऐसी अभिमानिनी हो, यह ठीक नहीं। कृष्ण के तो ऐसी पटरानी होनी चाहिए, जिसमें अभिमान न हो। मैं कृष्ण के वास्ते ऐसी ही पटरानी की खोज करूँगा, जो कृष्ण के समान ही निरभिमानिनी हो।

कृष्ण के लिए पटरानी की खोज मे नारद जी, इधर-उधर भ्रमण करने लगे, परन्तु उनकी दृष्टि मे ऐसी कोई कन्या नहीं आई, जो कृष्ण की पटरानी बनने योग्य हो। भ्रमण करते हुए वे, विदर्भ देश में आये। वहाँ के कृषकों की कन्याओं को देख कर, नारदजी विचारने लगे, कि इस देश की कन्याएँ सुन्दरी होती हैं। यदि यहाँ के राजा के कोई कुँवारी कन्या हो, और वह भी सुन्दरी हो, तब तो मेरा भ्रमण सफल हो जावे। पता लगाने पर, नारदजी को मालूम हो गया, कि यहाँ के राजा भीम की कन्या रुक्मिणी, अप्रतिम सुंदरी है। साथ ही उन्हे, रुक्मिणी के विवाह विषयक भीम और रुक्म का मतभेद भी मालूम हो गया। वे, कुंडिनपुर में, राजा भीम के यहाँ आये। भीम ने, नारद को नमस्कार करके उन्हे, योग्य आसन पर बैठाया। नारद बैठे थे और भीम से कुशल-प्रश्न कर रहे थे, इतने ही मे वहाँ रुक्म भी आगया। नारद ने, रुक्म को देख कर यह तो समझ लिया, कि यह भीम का पुत्र रुक्म है, परन्तु

आगे बात चलाने के उद्देश्य से उन्होंने, रुक्म की ओर संकेत करते हुए भीम से पूछा—राजन्, ये राजकुमार हैं ?

भीम—हाँ, महाराज सब आपकी कृपा का ही प्रताप है।

नारद—ये अकेले ही हैं, या इनके और भाई बहन भी है ?

भीम—चार पुत्र तथा एक कन्या और है। बस, ये ही छः सन्तान हैं।

नारद—प्रसन्नता की बात है। कन्या का विवाह तो हो गया होगा ?

भीम—नही महाराज, अब तक तो विवाह नहीं हुआ है; कुआँरी ही है।

नारद और भीम की बातचीत सुन कर, रुक्म ने विचार किया, कि कहीं बाबा जी, बहन के विवाह का कोई तीसरा प्रस्ताव कर के इस विषय की अधिक बात न चलावें। इसलिए इनकी बातचीत यहीं समाप्त कर देनी चाहिए। इस प्रकार विचार कर रुक्म ने नारद से कहा—बहन के विवाह का टीका तो चढ़ाया जा चुका है, और अमुक तिथि को विवाह भी हो जावेगा।

रुक्म की बात सुन कर नारद जी, उसका उद्देश्य समझ गये। वे अपने मन में कहने लगे कि—बच्चा, तुम नारद-लीला नहीं जानते, इसीसे नारद को भुलावा दे रहे हो। उन्होंने, रुक्म से कहा—हाँ, विवाह तय हो चुका है। किसके साथ तय हुआ है ?

रुक्म—चन्देरी राज महाराजा शिशुपाल के साथ।

नारद—शिशुपाल है भी प्रतापी राजा।

नारदजी ने प्रकट में तो रुक्म से यों कहा, परन्तु अपने मन में कहने लगे कि—मूर्ख, पिता और रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध तूने यह विवाह ठहराया तो है, परन्तु नारद के भी हथकण्डे देख। तेरी बात तेरे मन में ही न रख दी, और तुझे रुक्मिणी तथा पिता की इच्छा को पददलित करने का फल न भुगताया, तो मैं नारद ही क्या।

नारदजी ने भीम से कहा—अच्छा राजन् जाऊं, जरा रनवास में भी दर्शन दे आऊं।

भीम—हाँ महाराज, पधारिये। यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है।

नारदजी—भीम के पास से विदा होकर, रनवास में आये।

राजा भीम की एक बहन थी, जो उन दिनों, भीम के यहाँ ही रहती थी। रुक्मिणी को, समय समय पर वही कृष्ण की प्रशंसा सुनाया करती थी। उसके द्वारा कृष्ण की प्रशंसा सुनने से ही, रुक्मिणी के हृदय में, कृष्ण-प्रेम का अङ्कुर उत्पन्न हुआ था और शिशुपाल के साथ विवाह ठहरने के कारण, रुक्मिणी को जो मानसिक व्यथा थी, उसे भी वह जानती थी। उसने सुना, कि नारदजी राज-सभा में आये हैं, वहाँ, इस इस प्रकार

की बाते हुई है और अब वे रनवास में आ रहे हैं। यह सुन कर, भीम की बहन ने विचार किया, कि नारदजी से रुक्मिणी के सम्बन्ध मे, सबके सन्मुख बात न हो सकेगी और यदि की भी, तो दुष्ट रुक्म क्रुद्ध हो जावेगा। इसलिए नारदजी के साथ, एकान्त में ही बातचीत करनी चाहिए। इस प्रकार विचार कर उसने, रुक्मिणी को एकान्त स्थान पर बैठा दिया. और फिर रुक्मिणी को दर्शन देने के बहाने वह, नारदजी को भी उसी स्थान पर ले गई।

रुक्मिणी ने नारदजी को प्रणाम किया। रुक्मिणी को देख कर, नारदजी अपने मन मे कहने लगे, कि—यह कन्या, कृष्ण की पटरानी बनने योग्य है। मैं, इतने दिनों से ऐसी ही कन्या की खोज में था। उन्होंने, रुक्मिणी से उसके प्रणाम के उत्तर मे कहा—हे कृष्णवल्लभा तुम चिरजीवी होओ।

नारदजी से कृष्ण का नाम सुन कर रुक्मिणी के हृदय मे कृष्ण-प्रेम की लहर दौड़ गई। उसका मन, उसी प्रकार प्रसन्न हो उठा, जिस प्रकार, मेघध्वनि सुन कर मोर प्रसन्न होता है। वह विचारने लगी, कि मेरा विवाह तो शिशुपाल के साथ ठहरा है, फिर ये ज्ञानी ऋषि, मुझे कृष्णवल्लभा कह कर आशीर्वाद कैसे दे रहे हैं। क्या ये भूल रहे है। बाबा नारद भूलने वाले तो हैं नहीं, इसलिए इस आशीर्वाद मे अवश्य ही कोई रहस्य है।

क्या रहस्य है, यह बात तो इनसे फिर पूछूँगी, पहले इनके द्वारा उनका पूरा परिचय तो जानलूँ, जिनकी वल्लभा कह कर, इन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया है। मैंने, अब तक शिशुपाल और कृष्ण दोनो के विषय मे समान रूप से। निन्दा प्रशंसा सुनी है। इस कारण, किसी एक बात पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। इन ऋषि का तो किसी से कुछ स्वार्थ है नहीं, इस लिए ये सच्ची ही बात कहेंगे।

इस प्रकार विचार कर, रुक्मिणी अपनी भुआ से कहने लगी—भुआ, ऋषि ने मुझे जिनकी वल्लभा कह कर आशीर्वाद दिया है, वे श्रीकृष्ण, किस देश के किस नगर मे रहते है ? वे, किस वंश के हैं ? उनकी अवस्था कितनी है ? उनका रूप सौन्दर्य कैसा है ? वे. कैसी ऋद्धि के स्वामी हैं ? उनका परिवार कैसा है ? उनके माता-पिता कौन हैं ? उनके सहायक भाई कौन हैं ? उनकी बहन कौन हैं ? और उनका बल विक्रम कैसा है ?

भुआ से, रुक्मिणी के प्रश्न सुन कर, नारदजी विचार ने लगे, कि—रुक्मिणी, केवल सुन्दरी ही नहीं है, अपितु बुद्धिमती भी है। पति के विषय मे किन किन बातों को जानने की आवश्यकता है, इसे यह भली प्रकार समझती है।

रुक्मिणी की भुआ, नारदजी से कहने लगी—महाराज, रुक्मिणी के प्रश्नों का विस्तृत उत्तर दीजिये। आपने रुक्मिणी

को कृष्णवल्लभा तो कह दिया, परन्तु कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाली बातों से जब तक रुक्मिणी पूरी तरह परिचित न हो जावे, तब तक इसके हृदय को सन्तोष कैसे हो सकता है। इसलिए आप रुक्मिणी के प्रश्नों का उत्तर देकर, इसके हृदय का समाधान करिये।

नारदजी कहने लगे, कि कृष्ण के सम्बन्ध में रुक्मिणी के प्रश्न उचित और न्यायपूर्ण हैं। जिसके साथ अपनी आयु बितानी है, जिसको अपना जीवन सौंपना है, उसके विषय में इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक भी है। रुक्मिणी के प्रश्नों से यह भी स्पष्ट है, कि कन्याएँ क्या चाहती हैं और किन बातों से वे अपने को सुखी मानती हैं। मैं, रुक्मिणी के प्रत्येक प्रश्न का विवेचन सहित पृथक्-पृथक् उत्तर देता हूँ।

नारदजी कहने लगे, कि—सबसे पहले रुक्मिणी ने, कृष्ण के देश और नगर का विवरण पूछा है। जीवन के सुख-दुःख पर, नगर और देश का भी प्रभाव पड़ता है। यदि आर्य देश की लड़की अनार्य देश मे दी जावे, तो उसे दु ख होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार देश के कारण होने वाले, जल वायु, खान पान और रहन सहन में सीमातीत तथा अरुचिकर परिवर्तन भी, कन्या के लिए दु:खदायी हो जाता है। रुक्मिणी ने यह प्रश्न उचित ही किया है, लेकिन आश्चर्य तो यह है, कि रुक्मिणी,

कृष्ण के नगर देश से अब तक अपरिचित कैसे है। सौराष्ट्र देश तो बहुत प्रसिद्ध देश है। उत्तम देश माना जाता है। सजल और कृषि प्रधान देश है। वहाँ का जल पवन भी श्रेष्ठ है। ऐसे सौराष्ट्र देश की द्वारका नगरी को कौन नही जानता ! आज द्वारका जैसी दूसरी नगरी पृथ्वी पर है ही नहीं। द्वारका पृथ्वी पर साक्षात् इन्द्रपुरी सदृश है। सारी नगरी, रत्नमयी है। कृष्ण, उसी द्वारका नगरी के राजा हैं।

रुक्मिणी का दूसरा प्रश्न यह है, कि कृष्ण किस वंश के हैं। रुक्मिणी का यह प्रश्न भी, योग्य ही है। वंश का प्रभाव, प्रत्येक बात पर पडता है। उच्च-वंश का पुरुष, दीन-हीन अवस्था में भी, वंश-मर्यादा की रक्षा करता है, अनुचित कार्य नहीं करता; परन्तु हीन-वंश का व्यक्ति, अच्छी दशा में भी, अनावश्यक ही अनुचित कार्य करता रहता है। जिसकी पत्नी बनना है, उसके वंश के विषय में, पत्नी को जान ही लेना चाहिए। कृष्ण, यदु-वंशी हैं। यदुवंश, श्रेष्ठ वंश माना जाता है। यदुवंशियो का आचरण वैसा ही है, जैसा श्रेष्ठ क्षत्रियों का होना चाहिए।

रुक्मिणी ने, तीसरा प्रश्न, कृष्ण की आयु के विषय मे किया है। कन्याओं के लिए, इस प्रश्न का उत्तर पाना और उचित समाधान होना आवश्यक है। कन्याएँ, अपने लिए ऐसा पति कदापि नहीं चाहती, जो बालक या ढली हुई अवस्था

का हो। वे तो, युवक पति ही चाहती हैं और यह चाहना है भी स्वाभाविक। लेकिन कृष्ण न तो वृद्ध हैं, न बालक। वे युवतियो के योग्य युवक हैं। अर्थात् कन्याएँ, जैसी अवस्था का पति चाहती हैं, कृष्ण, उसी अवस्था के हैं।

रुक्मिणी का चौथा प्रश्न, कृष्ण के रूप सौन्दर्य के विषय में है। कुरूप पति के मिलने पर, स्त्रियाँ अपने आपको सुखी नहीं मानतीं, किन्तु दु खी मानती है और ऐसी दशा मे, पति-पत्नी मे प्रेम न रहना भी स्वाभाविक है। इसलिए रुक्मणी का यह प्रश्न भी उचित ही है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मैं, कृष्ण के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा किन शब्दों में करूँ ? संक्षिप्त मे यही कहता हूँ कि कृष्ण सौन्दर्य की प्रतिमा ही हैं। उनके शरीर का रंग भी अनुपम है। उनके रूप सौन्दर्य के कारण, लोग उन्हे मोहन कहते हैं। शत्रु भी, उनके सौन्दर्य से मोहित हो जाता है।

रुक्मिणी अपने पाँचवे प्रश्न द्वारा, कृष्ण की ऋद्धि जानना चाहती है। कन्या के लिए, इस प्रश्न का समाधान होना भी आवश्यक है। ऋद्धि-हीन—दरिद्री—पति पाने पर, कन्या, अपने आपको सुखी नही मान सकती। यह बात दूसरी है, कि आगे किसी दूसरे कारण से, ऋद्धि-सम्पन्न पति को भी दरिद्री हो जाना पड़े, और उस दशा के लिए तो पति-पत्नी दोनो की

समान जिम्मेदारी है, परन्तु पति रूप स्वीकार करने से पहले तो भावी पति की ऋद्धि के विषय में जान लेना आवश्यक है। रुक्मिणी के इस प्रश्न का उत्तर क्या दूँ। मैं पहले ही कह चुका हूँ, कि वे जिस नगरी के राजा हैं, वह नगरी ही रत्नमयी है। इतना ही नहीं, वे तीन खण्ड पृथ्वी के भावी-स्वामी हैं। उनके यहाँ अक्षय कोष भरे हुए हैं। यदि गुण-ऋद्धि का पूछती होओ, तो संसार में कृष्ण के समान राजनीति का ज्ञाता, दूसरा है ही नहीं। वे, छोटे बड़े सभी कार्य मे कुशल हैं।

रुक्मिणी का छठा प्रश्न यह है, कि कृष्ण का परिवार कैसा है? सांसारिक जीवन के लिए परिवार का होना भी आवश्यक है। परिवार न होने पर मनुष्य को समय असमय असहायावस्था का अनुभव करना पड़ता है। रुक्मिणी का यह प्रश्न भी उचित ही है। कृष्ण का परिवार जैसा बढ़ा हुआ है, वैसा बढ़ा हुआ परिवार, संसार में किसी और का है ही नहीं। उनके परिवार मे, ५६ कोटि यादव माने जाते है।

सातवाँ प्रश्न, कृष्ण के माता-पिता के विषय मे है। कन्या को अपने सासू ससुर के विषय मे भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। सासू ससुर से भी, कन्या के सुख दुःख का बहुत कुछ सम्बन्ध है। सासू ससुर के होने पर, कन्या और उसका पति, गृहभार से बहुत कुछ बचा रहता है और सुख पूर्वक जीवन

विताने का सुयोग मिलता है। रुक्मिणी के भावी सासू-ससुर और कृष्ण के माता-पिता के विषय मे तो कहना ही क्या है! संसार मे वसुदेव-सा पिता और देवकी-सी माता दूसरी है ही नहीं। सत्य का पालन वसुदेव ने जिस प्रकार किया है और पतिव्रत धर्म को देवकी ने जैसा पाला है वैसा कोई दूसरा नहीं पाल सकता। पति के वचन को पूरा करने के लिए एक छोटा-सा आभूषण देने के लिए भी, बहुत-सी स्त्रियाँ तैयार न होंगी परन्तु देवकी ने अपनी सन्तान भी कंस द्वारा मारी जाने के लिए दे दी। इसी प्रकार कई पुरुष, थोड़ी-सी हानि से बचने के लिए —या थोडे से क्षणिक सुख की आशा से—भी वचन भंग कर डालते हैं, परन्तु वसुदेव ने, सन्तान की हानि से बचने के लिए भी वचन भंग नहीं किया। ऐसे श्रेष्ठ माता-पिता, कृष्ण के सिवा और किसके हैं? रुक्मिणी ऐसे ही सासू ससुर की पुत्रवधू होगी।

रुक्मिणी ने अपने आठवें प्रश्न में, कृष्ण के भाई का विवरण पूछा है। संसार में, भाई के समान सहायक, दूसरा कोई नहीं होता। यद्यपि कभी कभी भाई भी घोर शत्रु बन जाता है, फिर भी, संकट के समय भाई से जो सहायता मिल सकती है, वह सहायता, दूसरे से नही मिल सकती। कृष्ण के भाई के विषय में तो कहना ही क्या है! उनके भाई बलदेवजी और भग-

वान अरिष्टनेमि हैं। ऐसे श्रेष्ठ भाई, संसार में और किसी के हैं ही नहीं।

रुक्मिणी ने, नववे प्रश्न द्वारा यह जानना चाहा है, कि कृष्ण की वहन कौन है ? पति की वहन—यानी ननद—अपनी भौजाई के लिए सुखदाई भी होती है और दुखदात्री भी होती है। ननद, यदि चाहती है, तो भाई-भौजाई और सासू-बहू मे प्रेम करा देती है, और वह चाहती है, तो घोर क्लेश भी उत्पन्न कर देती है। साथ ही जिस प्रकार पति के सहायक, पति के भाई होते हैं, उसी प्रकार पत्नी की सहायिका, ननद होती है। इसलिए ननद के विषय में भी कन्या का जानकारी प्राप्त करना, उचित है। कृष्ण की वहन, सुभद्रा है, जो संसार-प्रसिद्ध वीर अर्जुन की पत्नी है। ऐसी ननद पाकर, कौन भौजाई अपने भाग्य की सराहना न करेगी !

रुक्मिणी का अन्तिम प्रश्न, कृष्ण के वल-विक्रम के विषय मे है। कोई भी कन्या, वल-विक्रम-हीन पति की पत्नी नही वनना चाहती। वलवान और विक्रमवान पति पाकर कन्याएँ, अपने को बहुत सुखी मानती है। उन्हे पति का वल-विक्रम सुन कर प्रसन्नता होती है। कृष्ण के वल-विक्रम के विषय मे मैं क्या कहूँ ! उनका वल-विक्रम, प्रसिद्ध ही है। संसार के समस्त लोगो का वल एक ओर हो, तव भी उनके वल को समता नही कर सकता।

उन्होंने बचपन में ही कंस ऐसे बलवान को मार डाला, तो उनके अब के बल पराक्रम का तो कहना ही क्या है !

इस प्रकार नारदजी ने, रुक्मिणी के समस्त प्रश्नो का उत्तर दिया। रुक्मिणी ने, अपने प्रश्नो से यह बताया कि हम कन्याएँ, पति के सम्बन्ध में क्या क्या चाहती हैं और नारदजी ने यह व्याख्या कर दी, कि रुक्मिणी ने ये प्रश्न किस अभिप्राय से किये हैं।

नारद के उत्तर सुन सुन कर, रुक्मिणी अपने हृदय मे प्रसन्न होती जा रही थी। उसके हृदय का कृष्ण प्रेमांकुर, वृद्धि पाता जा रहा था। वह विचारती थी, कि कृष्ण की कहाँ तो यह प्रशंसा और कहाँ भाई द्वारा की गई निन्दा ! कृष्ण के विषय मे, पिताजी जो कुछ कहते थे, नारद जी के उत्तरों पर से ज्ञात हुआ, कि वह कथन बिलकुल सत्य था।

नारद के उत्तर समाप्त होने पर, रुक्मिणी की भुआ रुक्मिणी से कहने लगी—कृष्ण के विषय मे तेरे प्रश्नो का उत्तर नारदजी ने दिया, वह तूने सुना ही है। नारदजी, कृष्ण की झूठी प्रशंसा कदापि न करेंगे, न किसी कन्या को भुलावे में ही डालेंगे। साथ ही, इनकी भविष्य विषयक कोई बात, मिथ्या भी नहीं होती इन्होंने तुझे कृष्णवल्लभा कहा है, तो तू अवश्य ही कृष्णवल्लभा होगी। जब तू छोटी थी, तब अतिमुक्त ऋषि ने भी तेरे विषय मे यही कहा था, कि यह कृष्णकी पत्नी होगी।

भुआ की बात सुन कर, रुक्मिणी अपनी प्रसन्नता को रोक भुआ से कहने लगी–भुआ नारदजी तो ऐसा कहते हैं और आप भी यही कहती हैं, परन्तु क्या आपको पता नहीं है कि मेरा विवाह दूसरे के साथ ठहर गया है ?

भुआ—हाँ, मुझे मालूम है, कि भाई भीम के कथन के विरुद्ध रुक्म ने तेरा विवाह शिशुपाल के साथ ठहराया है और तेरी माता भी रुक्म के कहने में लग गई है, फिर भी तेरी इच्छा के विरुद्ध तेरा विवाह शिशुपाल के साथ कदापि नहीं हो सकता। यदि कन्या अपने निश्चय पर दृढ रहे, तो संसार की कोई प्रबल से प्रबल शक्ति भी, उसका निश्चय भंग नहीं कर सकती। जब तक स्वयं तेरी इच्छा न हो, तब तक न तो शिशुपाल ही तेरे साथ विवाह कर सकता है न रुक्म या तेरी माता ही, शिशुपाल के साथ तेरा विवाह करने की इच्छा पूरी कर सकती है। यदि तू दृढ इच्छा-शक्ति को अपनावे, तो शिशुपाल को यहाँ से अपमानित होकर ही लौटना पड़ेगा, और इस प्रकार किसी कन्या को उसकी इच्छा के विरुद्ध या उसकी इच्छा जाने बिना, उसके साथ विवाह करने के लिए जाने का दुष्परिणाम भोगना पड़ेगा।

नारद—रुक्मिणी, तू घबरा मत, धैर्य रख। अभी तू नारद-लीला में भी अपरिचित है और कृष्ण-लीला से भी। कृष्ण को, देवों का बल प्राप्त है। वे, सब कुछ करने मे समर्थ हैं।

नारद और भुआ की बातों से, रुक्मिणी के हृदय का कृष्ण-प्रेम दृढ हो गया। वह, उस समय, कृष्ण-प्रेम को हृदय मे ही न रोक सकी। वह कहने लगी, कि—जिस प्रकार कल्पवृक्ष छोड़ कर करील का वृक्ष, चिन्तामणि त्याग कर कंकर, हाथी छोड़ कर गधा और कामधेनु छोड कर भेड़ कोई नहीं चाहता, उसी प्रकार मै भी, कृष्ण को छोड़ कर, किसी दूसरे पुरुष की पत्नी नहीं बन सकती। जिस प्रकार, चावल त्याग कर भूसी लेने की, शीतल मीठा जल त्याग कर, खारा पानी पीने की, आम छोड़कर इमली खाने की, और हर्ष त्याग कर शोक लेने की मूर्खता कोई नही करता, उसी प्रकार मैं भी, कृष्ण को न अपना कर, दूसरे पुरुष को अपनाने की मूर्खता नहीं कर सकती। मेरी दृष्टि में, कृष्ण यदि केसरी सिंह के समान हैं, तो शिशुपाल गीदड़ के समान है। इसलिए हे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और अग्नि, मैं तुम सब को साक्षी करके महर्षि नारद के सन्मुख यह प्रतिज्ञा करती हूँ, कि मेरे लिए केवल कृष्ण ही पति हैं, कृष्ण के सिवा, संसार के समस्त पुरुष मेरे पिता और भ्राता के समान हैं। मैं, यावज्जीवन अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहूँगी। मैं, सारे संसार को, यहाँ तक कि अपने प्राणों को भी त्याग सकती हूँ, परन्तु अपनी इस प्रतिज्ञा को कदापि नहीं त्याग सकती। मेरे पर चाहे विपत्तियो का पहाड़ भी टूट पड़े, संसार में मेरा जीवन भी भार हो जावे, और मुझे

अपनी समस्त आयु अविवाहिता रह कर ही बितानी पड़े, तब भी मैं, कृष्ण के सिवा दूसरे पुरुष की पत्नी नहीं बन सकती।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करती हुई रुक्मिणी का हृदय, कृष्ण-प्रेम से उमड़ पड़ा। उसकी आँखों से, अश्रुधार बह चली। नारदजी, रुक्मिणी के हृदय का अगाध कृष्ण-प्रेम देख कर, अपना उद्देश्य पूरा हुआ समझ, वहाँ से विदा होगये और विचारने लगे, कि रुक्मिणी के हृदय में तो कृष्ण–प्रेम उपन्न किया, परन्तु अब, कृष्ण के हृदय में रुक्मिणी का प्रेम उत्पन्न करना चाहिए। तभी कार्य सिद्ध हो सकता है।
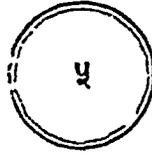
नारद-लीला

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मी-
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।

दृढ़ इच्छाशक्तिवाला मनुष्य, जो भी चाहे, कर सकता है। उसके समीप कोई कार्य, असम्भव है ही नहीं। साधारण लोग, जिस कार्य को असम्भव मानते हैं, दृढ़इच्छाशक्तिवाला उसी कार्य को संभव करके बता देता है। कार्य करने की सच्ची लगन, कार्य करने का साहस, कार्य करने की क्षमता और योग्यता जिसमें है, वह मनुष्य असम्भव से असम्भव कार्य को भी, सम्भव करके बता देता है। जिसमें इन विशेषताओं का अभाव है, उसके लिए तो छोटे से छोटा कार्य भी असम्भव बन जाता है। तनिक विघ्न-बाधा और कष्टों से भय खाने वाला व्यक्ति, किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

नारद भी, दृढ़ निश्चयी थे। वे, एक बार जिस काम को करने की इच्छा कर लेते थे, उस काम को करके ही छोड़ते थे,

फिर कितनी ही विघ्न-बाधा क्यों न आवे। अपनी विचक्षण बुद्धि के बल से, वे कार्य के मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को बात की बात में मिटा देते थे और अपना उद्देश्य पूरा करते थे। उन्होंने, कृष्ण के लिए दूसरी पटरानी खोजने का निश्चय किया, तो आखिर इस योग्य कन्या खोज ही ली; और इस ओर का मार्ग भी सुगम बना लिया। उन्होंने, रुक्मिणी को पूरी तरह कृष्णानुरागिणी बना दी; लेकिन नारद का उद्देश्य इतने ही से पूरा नहीं हुआ। वे तो, रुक्मिणी को, कृष्ण की पटरानी बनाना चाहते हैं। यद्यपि रुक्मिणी को कृष्णानुरागिणी बना कर नारद इस ओर से तो निश्चिन्त हो गये, लेकिन अभी जिनकी पटरानी बनाना है, उन कृष्ण की ओर से निश्चिन्तता नहीं है। जब तक कृष्ण के हृदय में भी रुक्मिणी के प्रति प्रेम न हो और कृष्ण भी, रुक्मिणी के साथ विवाह करना स्वीकार न कर लें, तब तक नारद का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। इसलिए रुक्मिणी को कृष्णानुरागिणी बनाने के पश्चात् नारदजी यह विचारने लगे, कि अब कृष्ण के हृदय में, रुक्मिणी के प्रति प्रेम कैसे उत्पन्न किया जावे और इस कार्य को सफलता की अन्तिम सीढ़ी तक कैसे पहुँचाया जावे!

कृष्ण के हृदय में, रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए नारदजी उपाय सोचने लगे। वे, विचारने लगे कि यदि

में रुक्मिणी को कृष्ण के सन्मुख ले जाकर कृष्ण के हृदय में रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न करूँ, तो यह ठीक नहीं होता और कृष्ण स्वयं, रुक्मिणी को देखने की इच्छा से आ नहीं सकते। ऐसी दशा मे, रुक्मिणी के प्रति कृष्ण मे प्रेम कैसे उत्पन्न किया जावे। इस प्रकार विचारते हुए नारदजी ने, अन्त मे अपना कार्य सिद्ध करने का उपाय सोच ही लिया। उन्होंने विचारा, कि जो काम रुक्मिणी को कृष्ण के पास ले जाने से हो सकता है, वही काम, रुक्मिणी का चित्र ले जाने से भी हो सकता है। इसलिए, रुक्मिणी का चित्र, कृष्ण को बता कर उनमें रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न करना ठीक होगा।

नारदजी, चित्रकला में भी निष्णात थे। उन्होंने, अपनी कला की सहायता से रुक्मिणी का चित्र बनाया। चित्र भी ऐसा बनाया, कि देखने वाला मुग्ध हो जावे। नारदजी, रुक्मिणी का नख से शिख तक का चित्र बनाकर और अपने साथ लेकर, द्वारका आये। चित्रपट को अपनी बगल में छिपाये हुए वे, कृष्ण की सभा में गये। नारद को देखकर, कृष्ण बल्देव आदि सब लोग खड़े हो गये। सबने, नारद को प्रणाम किया। कृष्णजी ने, नारद का स्वागत करके उन्हे सत्कार-पूर्वक योग्य आसन पर बैठाया। पहले कुछ देर तक तो सम्मान सत्कार और कुशलप्रश्न की बातें होती रहीं, परन्तु नारदजी को तो अपने काम की चटपटी

लग रही थी। इसलिए उन्होंने कृष्ण से कहा, कि थोड़ी देर के लिए आप एकान्त में चलिये; मुझे आपसे कुछ कहना है। नारद की बात मानकर कृष्ण, उनके साथ बातें करते हुए, एक सुन्दर और एकान्त स्थान में गये।

एकान्त स्थान पर पहुँच कर, कृष्ण ने नारदजी से कहा—हाँ महाराज, यह स्थान एकान्त है, यहाँ मेरे और आपके सिवा तीसरा कोई मनुष्य नहीं है; अब आप जो बात कहना चाहते हैं, वह कहिये।

नारदजी—हाँ, अब कहता हूँ, आप सुनिये। इस समय भरतक्षेत्र में आपसे अधिक नीतिज्ञ दूसरा नहीं है। आप नीतिशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् माने जाते हैं। इसलिए मैं जो बात कहूँ, उसका नीतिपूर्ण उत्तर दें।

कृष्ण—हाँ महाराज, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार अवश्य ही आपकी बात का उत्तर दूँगा।

नारद—यह तो मुझे विश्वास ही है। अब मैं अपनी बात प्रारम्भ करता हूँ। संसार में, पुरुष, स्त्री और नपुंसक ऐसे तीन प्रकार के मनुष्य हैं। नपुंसक के विषय में तो मुझे कुछ कहना नहीं है, जो कुछ कहना है, वह पुरुष और स्त्री के विषय में ही। नीति-अनुसार, पुरुष और स्त्री का विवाह-सम्बन्ध होता ही है, लेकिन यदि कोई अविवाहिता स्त्री किसी पुरुष विशेष

के साथ अपना विवाह करना चाहती हो, परन्तु वह पुरुष, उस कन्या के साथ विवाह न करना चाहता हो, तो क्या वह कन्या, उस पुरुष के साथ बलात् विवाह कर सकती है ?

श्रीकृष्ण—नही महाराज, ऐसा नहीं हो सकता। किसी पुरुष के साथ, कोई भी स्त्री, जबरदस्ती अपना विवाह नहीं कर सकती।

नारदजी—और यदि कोई पुरुष किसी कन्या के साथ विवाह करना चाहता हो परन्तु वह कन्या उस पुरुष के साथ विवाह न करना चाहती हो, तो क्या वह पुरुष, उस कन्या के साथ जबरदस्ती विवाह कर सकता है ?

कृष्ण—महाराज, ऐसा भी नहीं हो सकता। विवाह तो तभी हो सकता है, जब पुरुष और कन्या, दोनो ही एक दूसरे के साथ विवाह करने से सहमत हों।

नारद—और यदि कोई पुरुष या कोई स्त्री, एक दूसरे से विवाह नही करना चाहते, फिर भी, दोनों के माता-पिता अथवा भाई, या दो मे से एक के माता-पिता अथवा भाई, को क्या यह अधिकार है कि वे दोनो का विवाह कर दे ?

कृष्ण—माता-पिता अथवा भाई को यह अधिकार कदापि नहीं है, कि वे अपनी सन्तान या अपने भाई बहन का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध करें।

नारद—और यदि पुरुष तो कन्या को चाहता हो, परन्तु कन्या उस पुरुष को न चाहती हो, तो क्या कन्या के माता-पिता अथवा भाई को यह अधिकार है, कि वे उस कन्या का विवाह उस पुरुष के साथ कर दें, जिसके साथ वह कन्या विवाह नहीं करना चाहती है ?

कृष्ण—महाराज, विवाह-सम्बन्ध वर और कन्या दोनो ही की रुचि से हो सकता है, किसी एक की रुचि से कदापि नहीं हो सकता। बल्कि कभी कभी कन्या की रुचि तो विशेषता भी पा जाती है, परन्तु उसकी रुचि के प्रतिकूल कदापि विवाह नहीं हो सकता, न किसी को कन्या की रुचि की अवहेलना करने का अधिकार ही है।

नारद—यदि कोई माता-पिता, भाई, या कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा रखनेवाला पुरुष, कन्या की इच्छा को पददलित करे, या करना चाहे, तो ?

कृष्ण—वह दण्डनीय है। ऐसा करनेवाले को दण्ड दिया जा सकता है ?

नारद—दण्ड कौन दे सकता है ?

कृष्ण—राजा।

नारद—और यदि राजा स्वयं ऐसा अन्याय करता हो तो ?

कृष्ण—वह सामर्थ्यवान व्यक्ति, जिससे कन्या अपनी

सहायता की याचना करे और जो राजा को भी दण्ड दे सकता हो।

नारद—एक कन्या को एक पुरुष अपनी पत्नी बनाना चाहता है, परन्तु वह कन्या उसकी पत्नी नहीं बनना चाहती, किन्तु दूसरे ही को अपना पति बनाना चाहती है और जिसे कन्या अपना पति बनाना चाहती है, वह पुरुष भी उस कन्या को अपनी पत्नी बनाना चाहता है। लेकिन वह पहला पुरुष, जिसे कन्या अपना पति नहीं बनाना चाहती—कन्या के साथ बलात् विवाह करना चाहता है। ऐसे समय मे उस पुरुष का, जिसे कन्या अपना पति बनाना चाहती है और जो स्वयं भी कन्या को अपनी पत्नी बनाना चाहता है, क्या कर्त्तव्य है ?

कृष्ण—उस पुरुष का कर्त्तव्य है, कि वह कन्या की इच्छा पर उस अत्याचार करनेवाले से कन्या की रक्षा करे और उस कन्या को अपनी पत्नी बनावे।

नारद—यदि वह पुरुष अपने इस कर्त्तव्य का पालन न करे, तो ?

कृष्ण—कर्त्तव्य-पालन की शक्ति होते हुए भी जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता, वह कर्त्तव्यच्युत पाप का भागी होता है।

कृष्ण का यह उत्तर समाप्त होते ही, नारदजी ने अपनी

बगल में दबा हुआ रुक्मिणी के चित्र का पट कृष्ण के सामने पृथ्वी पर फैला दिया। रुक्मिणी का चित्र देख कर, कृष्ण आश्चर्य में पड़ गये। वे, यह निश्चय न कर सके, कि यह चित्र किसी मानवी का है, या अप्सरा का। उन्हें, चित्र की स्त्री के सौन्दर्य पर भी आश्चर्य हो रहा था और चित्रकार की निपुणता पर भी। उन्होंने, नारदजी से पूछा—महाराज, क्या यह चित्र किसी अप्सरा का है? और क्या इस चित्र को बनानेवाला चित्रकार कोई देव है? ऐसी सुन्दर स्त्री, और ऐसा कुशल चित्रकार, इस मनुष्य लोक में होना तो कठिन है। इस चित्रलिखित स्त्री ने तो अपने सौन्दर्य से मुझे मुग्ध कर लिया है। इस चित्र को देखकर मुझे अपनी रानियां भी तुच्छ लगने लगी हैं।

नारद—हाँ कृष्ण, चित्र बहुत सुन्दर है। जिसका चित्र है, उसकी सुन्दरता और विशेषता तो चित्र में आही कैसे सकती है, परन्तु चित्र को देखने से उसके सम्बन्ध की बहुत-सी बातों का अनुमान अवश्य हो सकता है।

कृष्ण—महाराज, यह चित्र किस का है और किस कुशल चित्रकार ने इसे बनाया है?

नारद – आप, चित्र और चित्र में चित्रित स्त्री की प्रशंसा तो कर रहे हैं, परन्तु पहले यह बताइये, कि इस चित्र की स्त्री में क्या विशेषता है और किन बातों के दिखाने से चित्रकार की

निपुणता जानी जाती है। आप जब यह बता देंगे, तब मैं भी आपको चित्रकार और चित्र की स्त्री का परिचय दूँगा।

चित्र को एक बार फिर भली प्रकार देखकर, श्रीकृष्ण कहने लगे—नारदजी, मैं केवल चित्र का रङ्ग देख कर ही चित्रकार की प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, किन्तु उसने चित्र में जो विशेषताएँ बताई हैं उनकी स्पष्टता के कारण ही मैं चित्रकार की प्रशंसा करता हूँ। इसी प्रकार, इस चित्र की स्त्री की प्रशंसा भी, सुन्दरता और शारीरिक रचना से ही कर रहा हूँ। जान पड़ता है, कि संसार के समस्त सौन्दर्य को इस एक ही स्त्री ने छीन लिया है। सम्भवतः चन्द्र, इस स्त्री के कारण ही आकाश को भाग गया है, क्योंकि, इसके मुखने उसकी कान्ति फीकी कर दी है। इसके केशो की वेणी ने, मोर-पुच्छ को लज्जित कर दिया, इसी कारण मोर लज्जित हो कर वन में रहने लगा है। इसकी तिर्छी भौहो ने भवॅरियों की शोभा हरण करली है, इसीसे भवँरियाँ मनुष्यों से रुष्ट रहतीं और मनुष्यो को काट खाती हैं। अब तक मृग के नेत्र ही अच्छे माने जाते थे और मृग अपने नेत्रों पर गर्व करते थे, परन्तु इस सुन्दरी के सुंदर नेत्रों ने मृगों का गर्व भंग कर डाला। इससे खेद पाकर मृग, वन में जाकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। इसकी नाक ने सुए की नाक के पतलेपन को भी जीत लिया, इसी कारण सुए, मनुष्यों से

दूर वृक्षों पर निवास करने लगे। इसके दाँतों के सामने अपने को तुच्छ मान कर, दाडिम के दाने, छिलकों के भीतर छिप गये। इसके ओठों की ललाई के आगे, मूँगों की ललाई फीकी पड़ गई, इसलिए मूँगे, समुद्र में जा गिरे। कच्छप की ग्रीवा का सौन्दर्य, इस कामिनी की मनोहारिणी ग्रीवा ने छीन लिया। अपनी गर्दन का सौन्दर्य छिन जाने से दुखित होकर कच्छप, जल में छिप कर रहने लगे। इसकी कोमल बाहों को देख कर, भाजा, मुर्झा गई। इस मत्स्योदरी का पेट देख कर मछलियाँ, पानी ही में रहने लगीं। यमुना के भँवर की शोभा, इस सुरूपा की नाभि ने छीन ली, इसलिए क्रोध के मारे यमुना का रङ्ग नीला हो गया। इसके कमर का पतलापन देख कर केहरि, मनुष्यों से द्रोह रखने लगा। इसकी जङ्घा ने, हाथियों की सूँडों को लज्जित कर दिया, इसलिए हाथी धूल उड़ाने लगे। इसके वर्ण की समता न कर सकने के कारण, सोना, पृथ्वी के गर्भ में जा छिपा। मैंने इस चित्र की स्त्री को, इन्हीं विशेषताओं से सुन्दरी बताया है और चित्रकार ने, विशेषताओं को स्पष्ट चित्रित किया है, इसीलिए, चित्रकार की भी प्रशंसा की है। अब आप यह बताइये, कि यह सुन्दरी कौन है और इसका चित्र बनानेवाला चित्रकार कौन है ?

नारद—आपने इस स्त्री के सौन्दर्य का ठीक ही वर्णन

किया है। वास्तव में यह स्त्री, ऐसी ही सुन्दरी है। जहाँ तक सू के प्रकाश की गति है, मैं वहाँ तक भ्रमण करता हूँ, परन्तु मुझे ऐसी सुन्दर-स्त्री, दूसरी कहीं नहीं दिखी।

कृष्ण—यह तो मैं भी मानता हूँ, परन्तु यह स्त्री है कौन? और यह चित्र किसने बनाया है?

नारद—चित्रकार तो आपके सामने ही बैठा है।

कृष्ण—अच्छा, यह चित्र आपने बनाया है! आप चित्र कला में ऐसे निपुण हैं; यह बात तो मुझे आज ही मालूम हुई। वास्तव में ब्रह्मचारी के लिए संसार का कोई कार्य कठिन नहीं है। लेकिन यह स्त्री कौन है?

नारद—यह विदर्भ देश स्थित कुण्डिनपुर के राजा भीम और रानी शिखावती की कन्या है। इसका नाम, रुक्मिणी है। यह, जैसी सुन्दरी है, वैसी ही गुणागरी भी है।

कृष्ण—यह क़ुँवारी है या विवाहिता?

यद्यपि कृष्ण के लिए चित्र से यह जानना कठिन न था कि यह चित्र विवाहिता का है, या कुमारी का, फिर भी कृष्ण ने नीति का पालन करने के लिए यह प्रश्न किया। उन्होने विचारा, कि चित्र से तो यह क़ुँवारी ही जान पड़ती है, लेकिन सम्भव है, कि इसने किसी को पति बनाने का निश्चय कर लिया हो।

कृष्ण की बात के उत्तर मे, नारदजी कहने लगे—मैंने इसी के लिए आप से प्रश्न किये थे! यह अभी तो अविवाहिता ही है, परन्तु इसके भाई ने, अपने पिता और इसकी इच्छा के विरुद्ध इसका विवाह चन्देरीराज शिशुपाल से ठहराया है तथा अमुक तिथि को विवाह होना भी तय हो गया है। रुक्मिणी शिशुपाल को स्वप्न मे भी नही चाहती। उसने निश्चय किया है, कि मेरे लिए कृष्ण ही पति हैं, कृष्ण के सिवा संसार के शेष पुरुष, मेरे लिए भ्राता और पिता के समान हैं। उसके हृदय मे आपके प्रति अपार अनुराग है। राजा भीम की इच्छा भी, रुक्मिणी का विवाह आप ही के साथ करने की थी, और रुक्मिणी का विवाह आपके साथ करने का प्रस्ताव भी उन्होने सबके सन्मुख रखा था, परन्तु मूर्ख रुक्म ने, अपने पिता के इस प्रस्ताव का विरोध किया। परिणामतः गृहकलह से बचने के लिए राजा भीम, रुक्मिणी के विवाह की ओर से तटस्थ हो गये। भीम की इस शान्ति-प्रियता से अनुचित लाभ उठाने के लिए रुक्म ने, अपने मित्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह तय किया है। यद्यपि शिशुपाल को भी यह मालूम हो चुका है, कि रुक्म ने यह विवाह का टीका अपने पिता से विरोध करके भेजा है, तथा रुक्मिणी भी मुझ से विवाह नही चाहती है, फिर भी उसने रुक्मिणी के विवाह का टीका

स्वीकार कर लिया है और विवाह की तयारी कर रहा है।

कृष्ण के हृदय में, रुक्मिणी के चित्र से ही रुक्मिणी के प्रति आकर्षण हो चुका था। नारद की बातों से वह आकर्षण बढ़ गया। वे, रुक्मिणी के प्रेम-रंग मे रंग गये। रुक्मिणी के प्रति कृष्ण के हृदय मे उत्पन्न प्रेम ने, कृष्ण को अधीर-सा बना दिया। वे, नारद से फिर पूछने लगे, कि क्या शिशुपाल, रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध उसको अपनी पत्नी बनाना चाहता है ?

नारद—हाँ।

कृष्ण—यदि ऐसा है, तब तो शायद उससे युद्ध भी करना पड़े।

नारद—हाँ।

कृष्ण—परन्तु रुक्मिणी के हृदय मे मेरे प्रति प्रेम हो, तब भी जब तक वह मुझ से सहायता की याचना न करे, तब तक मैं क्या कर सकता हूँ ?

नारद—रुक्मिणी को आप से प्रेम होगा, तो वह आप से सहायता माँगेगी ही।

कृष्ण—कदाचित् रुक्मिणी ने सहायता माँगी भी, तब भी एक दम से शिशुपाल से युद्ध करना कैसे उचित होगा ! कम से

कम उसे यह तो सूचित कर देना चाहिए, कि वह इस प्रकार का अन्याय न करे।

नारद—यह तो मैं आपके बिना कहे ही कर दूँगा। इससे आगे आप जाने और रुक्मिणी जाने।

यह कहते हुए नारद, रुक्मिणी का चित्रपट लेकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। अपने सामने से रुक्मिणी का चित्र हटते ही, और नारद के अन्तर्धान होते ही, कृष्ण बहुत व्यथित हुए। उनके लिए, उस चित्र का वियोग असह्य हो उठा। वे, उस चित्र की मनोहारिणी मूर्त्ति को अपनी मानसिक आँखो के सामने से न हटा सके।

रुक्मिणी के प्रेम से आकर्षित कृष्ण, उस स्थान से घर आये। रुक्मिणी की प्राप्ति की चिन्ता के साथ ही, उन्हे एक विचार और हो उठा। वे सोचने लगे, कि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ होना तय हो चुका है, और शिशुपाल भुआ का लड़का भाई है। उसके साथ रुक्मिणी का विवाह न होने देकर अपने साथ रुक्मिणी का विवाह कर लेने पर, क्या ठीक है, कि बड़े भ्राता बलदेवजी तथा उनके साथ ही परिवार के और लोग मुझ से रुष्ट हो जावें। इस प्रकार कृष्ण के हृदय में जहाँ एक ओर रुक्मिणी की रक्षा की चिन्ता हो रही थी, वहीं परिवार-कलह की आशंका भी उन्हे व्यथित बना रही थी।

इन दोनो चिन्ताओं के कारण, कृष्ण का खाना-पीना भी कम हो चला। उनके शरीर पर, चिन्ता और दुर्बलता के चिन्ह, स्पष्ट दिखाई देने लगे। रुक्मिणी सम्बन्धी बहुत कुछ समाचार, बलदेवजी भी सुन चुके थे। कृष्ण को चिन्तित और दुर्बल देख कर, बलदेवजी समझ गये, कि इन्हें रुक्मिणी के लिए चिन्ता है। उन्होंने कृष्णजी से कहा, कि मेरी समझ से आपको रुक्मिणी के लिए ही चिन्ता है। मैं सुन चुका हूँ, कि रुक्मिणी, आप ही को पति बनाना चाहती है, शिशुपाल को नहीं इच्छती। यदि आप इसीलिए चिन्तित हैं, तो इस विषय में आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जब रुक्मिणी, शिशुपाल को नहीं चाहती, तब शिशुपाल उसके साथ कदापि विवाह नहीं कर सकता। शिशुपाल यदि स्वयं समझ जावेगा और रुक्मिणी के साथ जबरदस्ती विवाह करने का विचार त्याग देगा, तब तो ठीक है, नहीं तो जिस तरह भी बनेगा, हम, रुक्मिणी के साथ जबरदस्ती करने से उसे रोकेंगे और रुक्मिणी की सहायता करेंगे। हाँ इतनी बात अवश्य है, कि जब तक रुक्मिणी की ओर से किसी प्रकार का समाचार हमारे पास न आवे तब तक हमें बीच में पड़ना ठीक नहीं है और रुक्मिणी की ओर से समाचार आने के पश्चात्, हमें मृत्यु से भी लड़ कर रुक्मिणी की रक्षा करनी होगी।

बलदेवजी की बात सुन कर, पारिवारिक क्लेश की आशंका मिट

जाने से, कृष्ण को प्रसन्नता हुई। उन्हे इस ओर की चिन्ता न रही। अब वे रुक्मिणी की ओर से किसी प्रकार का समाचार आने की प्रतीक्षा करने लगे।

शिशुपाल की तयारी

स्वार्थी दोषं न पश्यति

अर्थात्—स्वार्थी मनुष्य, दोष नहीं देखता, उसकी दृष्टि तो केवल अपने स्वार्थ पर ही रहती है।

मनुष्य, जब स्वार्थ के वश में हो जाता है, तब वह, सत्य और न्याय का अपने में से खो बैठता है। उसके सामने केवल वे ही बातें रहती है, जो स्वार्थ-पूर्त्ति में सहायक हों। जो बात स्वार्थ में बाधक है, वह तो उसे रुचती ही नहीं। उसका लक्ष्य तो केवल उसी पक्ष पर रहता है, जिसके द्वारा उसे अपना स्वार्थ पूरा होने की आशा है। जिससे स्वार्थ पूरा होने की आशा नहीं है, या जो स्वार्थ में हानि पहुँचाता है, उस पक्ष की ओर तो वह देखता भी नहीं। यदि कोई व्यक्ति उसके सामने ऐसा पक्ष रखता भी है, तब भी वह उस पक्ष पर विचार तक नहीं करता। बल्कि इस प्रकार का पक्ष सामने रखनेवाले से वह, घृणा और द्वेष करने लगता है। चाहे साक्षात् इन्द्र भी उसके सामने आकर

उसे, स्वार्थ के लिए सत्य और न्याय को पददलित न करने का उपदेश दें, समझावें; अनुनय विनय करें और हानि की ओर उसका ध्यान खींचें, तब भी स्वार्थान्ध व्यक्ति, उनकी इन बातो पर ध्यान न देगा। बल्कि अपने स्वार्थ में उन्हे बाधक समझ कर, वह उनसे द्वेष करने लगेगा। वह उस स्वार्थ-कार्य के विषय में, न्याय-अन्याय, सत्य झूठ और उचित अनुचित की मीमासा नहीं सुनना चाहता, न उस पर विचार ही करना चाहता है। अकेले स्वार्थ के वश हो जाने पर ही मनुष्य में इतना वैपरीत्य आ जाता है, स्वार्थ के साथ ही हठ का मिश्रण हो जाने पर तो, यह दशा और भी अधिक भयंकर हो जाती है। फिर तो उसके विषय में कहना ही क्या है! ऐसा होने पर तो वह, अपना सर्वनाश करने से भी नहीं हिचकिचता। रावण, दुर्योधन, कंस आदि के उदाहरण, इस बात के प्रमाण हैं।

शिशुपाल भी, स्वार्थ के वश हो गया था। वह चाहता था, कि रुक्मिणी मेरी पत्नी बने और मैं उस सौन्दर्य-लक्ष्मी का स्वामी बनूँ। इस स्वार्थ के साथ ही, उसमे हठ भी थी। इस स्वार्थ और हठ के मिश्रण से बने हुए भयंकर विष के नशे मे मस्त शिशुपाल ने, किसी की भी बात नहीं मानी। ज्योतिषी और भौजाई ने बहुत कुछ समझाया, हानि लाभ की ओर उसका ध्यान खींचा, परन्तु वह अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए तैयार न हुआ।

शिशुपाल की भौजाई ने, शिशुपाल को बहुत कुछ समझाया, परन्तु शिशुपाल ने, भौजाई के समझाने पर किंचित भी ध्यान नहीं दिया। बल्कि वह भौजाई से रुष्ट हो गया। भौजाई के महल से लौट कर, शिशुपाल ने विचार किया, कि भौजाई मुझे कृष्ण का भय बता कर कहती है, कि कृष्ण वहाँ आवेगा! कृष्ण है भी धूर्त। संभव है कि वह कुण्डिनपुर आवे और मेरे विवाह मे किसी प्रकार का विघ्न करे। रुक्म ने भी पत्र, तथा टीका लाने वाले भाट के द्वारा, कृष्ण की ओर से विघ्न होने की आशंका प्रकट की है। इसलिए मुझे, युद्ध की पूर्ण तयारी करके, विवाह समय से कुछ दिन पहले ही कुण्डिनपुर जाना चाहिए, जिसमें वहाँ की स्थिति का अध्ययन किया जा सके और कृष्ण को किसी प्रकार की धूर्त्तता करने का अवसर भी न मिले। इसके साथ ही एक बात और होगी। भावज कहती थी, कि रुक्मिणी मुझे नहीं चाहती। यदि भाभी का यह कथन ठीक भी होगा, तब भी मैं विवाह-तिथि से पहले पहुँचकर, जब कुण्डिनपुर मे अपनी सेना अपने विभव और अपनी शक्ति का प्रदर्शन करूंगा, तब संभव नहीं, कि रुक्मिणी मेरे साथ विवाह न करना चाहे। मेरे वैभव और मेरे सौन्दर्य को देखकर, रुक्मिणी स्वयं ही मेरे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट करेगी। इसके सिवा जब रुक्मिणी मेरी बारात को आई हुई और मुझे दूल्हा बना हुआ देखेगी, तब वह

कृष्ण की ओर से निराश भी हो जायेगी। मैं, अपनी सेना द्वारा प्रबन्ध भी ऐसा करूंगा, कि जिसमे कृष्ण की ओर से रुक्मिणी के पास या रुक्मिणी की ओर से कृष्ण के पास, किसी प्रकार का समाचार भी न पहुँच सके। इस कारण भी रुक्मिणी को अपने हृदय से कृष्ण की चाह निकाल देनी पड़ेगी और मेरे साथ विवाह करने के लिए विवश होना पड़ेगा। साथ ही मैं, समय २ पर अपनी दासियों को रुक्मिणी के महल मे भेज कर, वहाँ के समाचार भी मँगवाता रहूँगा और दासियो द्वारा रुक्मिणी को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा भी करता रहूँगा। इसलिए विवाह-तिथि से पहले ही कुण्डिनपुर जाना अच्छा है। लेकिन मुझे पहले अपने सहायक राजाओ के पास आमन्त्रण भेज कर, उन्हे यहाँ बुला लेना चाहिए और उनके आ जाने के पश्चात् ही विवाह की तय्यारी करानी चाहिए। यदि मैं अभी ही विवाह की तयारी करवा दूँ और कहीं कुटिल कृष्ण के बहकाने मे लग कर, सहायक राजागण समय पर न आये, तो उस दशा मे मेरा कुडिनपुर जाना भी ठीक न होगा और न जाना भी ठीक न होगा। मैं, सहायकों के न होते हुए भी कुंडिनपुर गया और वहाँ कृष्ण से युद्ध मे हार गया, तो भारी अपमान होगा और यदि विवाह की तयारी करवा कर भी मैं कुण्डिनपुर न गया, तब भी अपमान होगा। इसलिए

मुझे, सहायक राजाओं को, पहले से ही यहाँ बुला लेना चाहिए और सब राजाओ के आजाने पर ही, विवाह की तयारी करनी चाहिए। राजाओ को यहाँ बुलवा लेने पर, वे लोग कृष्ण के बँहकावे मे आने से भी बच जावेंगे, तथा कदाचित् वे कृष्ण के बँहकावे मे आ चुके हों और इस कारण मेरे बुलवाने पर न आये, तो मेरे लिए जरासन्ध से सहायता मांगने का अवसर शेष रह जावेगा।

इस प्रकार राजनीतियुक्त विचार करके शिशुपाल ने, अपने अधीनस्थ और सहायक राजाओ के पास विवाह का आमन्त्रण भेज कर उन्हे लिखा, कि 'आप लोग अपनी समस्त सेना-सहित अमुक तिथि को चन्देरी आजाइये। यह विवाह, आप ही की सहायता पर निर्भर है, अत. विवाह की तयारी तभी होगी, जब आप लोग यहाँ आ जावेंगे।'

शिशुपाल का आमन्त्रण पाकर, उसके अधीनस्थ राजा तो दलबल सहित चन्देरी आये ही, परन्तु सहायक राजाओ में से कुछ आये और कुछ—जो श्रीकृष्ण का प्रताप जानते थे, तथा इस विवाह को अनुचित मानते थे—नहीं आये। शिशुपाल को, एकत्रित राजाओं तथा उनकी सेना को देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह विचारने लगा, कि इतनी सैना यह है, मेरी सेना है और कुण्डिनपुर मे रुक्म की सेना है। इन प्रचण्ड सेनाओं द्वारा कृष्ण

को जीत कर बाँध लेना बहुत ही सरल बात है। पहले तो कृष्ण, एकत्रित सेना का समाचार सुन कर आवेगा ही नहीं। कदाचित आ भी गया, तो वह अपना ही अस्तित्व खोवेगा, उसके कारण मेरे साथ रुक्मिणी का विवाह होने में किसी प्रकार का विघ्न नहीं हो सकता। अब मुझे, विवाह की तयारी करनी चाहिए।

शिशुपाल ने, नगर, राज महल आदि सजाने, मंगलाचार करने और विवाह योग्य तयारी करने की आज्ञा दी। शिशुपाल की आज्ञानुसार विवाह की तयारी होने लगी। उस समय शिशुपाल बड़ी प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। वह कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान करने के दिन की, उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करने लगा।

इधर तो शिशुपाल, विवाह की तयारी मे लगा है और उधर रुक्म, विवाह की तयारी मे लगा हुआ है। दोनो जगह, खूब आनन्द हो रहा है, परन्तु रुक्मिणी के हृदय मे किंचित भी आनन्द नहीं है, अपितु विषाद है। इसी प्रकार द्वारका में श्री कृष्ण भी, रुक्मिणी के लिए चिन्तित हैं। किसी पहाड के शिखर पर बैठे हुए बाबा नारद, कुछ और ही विचार कर रहे हैं। वे सोचते हैं, कि मैं कृष्ण से कह चुका हूँ, कि शिशुपाल को सूचित करने का कार्य मैं करूंगा। इस कारण भी मुझे उचित है, कि मैं शिशुपाल को सूचित करूं। दूसरे, सम्भव है कि सूचित कर देने पर, शिशुपाल, रुक्मिणी के साथ विवाह करने का विचार छोड़

दे और इस प्रकार, भावी-युद्ध द्वारा होनेवाला जनसमूह का नाश रुक जावे। इसलिए, इस सम्बन्ध का यह अन्तिम कार्य मैं और कर डालूँ, उसके बाद, रुक्मिणी, कृष्ण, रुक्म और शिशुपाल अपनी-अपनी निमटेंगे। मै तो फिर आकाश मे खड़ा-खड़ा यह देखूँगा, कि विजयी सत्य और न्याय होता है, या असत्य और अन्याय।

इस प्रकार विचार कर नारदजी, चन्देरी आये। वे, शिशुपाल के यहाँ गये। शिशुपाल ने, नारद को विधि सहित प्रणाम करके उन्हे, स्वागत सत्कारपूर्वक बैठाया। शिशुपाल ने, ऊपर से तो नारद के आने पर प्रसन्नता ही प्रकट की, परन्तु उसका हृदय अस्थिर था। वह रह रह कर यही विचारता था, कि ये बाबाजी और न मालूम क्या कहेंगे।

कुशलप्रश्न हो जाने के पश्चात नारदजी, शिशुपाल से कहने लगे—राजन्, मैंने सुना है कि तुम्हारा विवाह होनेवाला है। नगर तथा राजमहल की सजावट और तुम्हारी प्रसन्नता भी ऐसा ही बता रही है। क्या वास्तव मे तुम्हारा विवाह है?

शिशुपाल—हाँ महाराज, आपने जो कुछ सुना है, वह ठीक है। सब आप ही की कृपा है। आपकी कृपा से मेरा यह विवाह होगा भी ऐसा, कि इस विवाह के समान दूसरा उचित विवाह न तो अब तक हुआ है और न होगा ही।

नारद—अच्छी बात है; राजाओं ने तो अपना जन्म ही, इस प्रकार के कार्यों में यश प्राप्त करने के लिए मान रखा है और ऐसे ही कामो में राजा लोग ख्याति भी प्राप्त करते हैं। राजाओ में भी तुम तो बड़े राजा हो, इसलिए तुम्हारा विवाह अद्वितीय हो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। परन्तु यह तो बताओ, कि विवाह होगा किसकी कन्या के साथ और बारात कहाँ जावेगी ?

शिशुपाल—महाराज, आपकी दया है, इसीसे आप पूछ रहे हैं। आपको यह जानकार अवश्य ही प्रसन्नता होगी, कि विदर्भ नरेश भीम की कन्या रुक्मिणी के साथ मेरा विवाह, अमुक तिथि को होगा। बारात, कुण्डिनपुर जावेगी।

नारद—रुक्मिणी के साथ! वह तो बडी ही उत्कृष्ट कन्या है। साक्षात लक्ष्मी ही मानी जानी जाती है। उसके साथ विवाह हो, तुम्हारे लिए इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है! जरा तुम्हारी और रुक्मिणी की जन्मकुण्डली तो मंगवाओ।

रुक्मिणी की प्रशंसा सुनकर, शिशुपाल को बड़ा ही आनन्द हुआ। उसने, तत्क्षण अपनी और रुक्मिणी की जन्म कुण्डली मंगवा कर, नारदजी को दी। नारदजी, बडे ध्यानपूर्वक दोनों की जन्म कुण्डली देखने लगे और अपनी आकृति इस प्रकार

बनाने लगे, जैसे बड़ा आश्चर्य हो रहा हो। थोड़ी देर बाद नारदजी ने, अपना सिर हिलाते हुए जन्म कुण्डलियाँ नीचे रख दीं। नारद का सिर हिलाना देख कर, शिशुपाल के हृदय में आशंका हुई। उसने, नारद से पूछा—महाराज, आपने सिर क्यों हिलाया?

नारद—देखो राजन्, हम सन्त हैं। सन्तों का काम है, कि सच्ची बात से अपने भक्त को परिचित कर दें। उन्हें, भय या आशा से असत्य कदापि न बोलना चाहिए, किन्तु सदा सच्ची बात ही कहनी चाहिए। फिर वह सच्ची बात चाहे अप्रिय ही हो, और सुनने वाला न भी माने, परन्तु झूठ बात कदापि न कहनी चाहिए। झूठ बात कहनेवाले और सच्ची बात से सावधान न करने वाले लोग, शत्रु का काम करते हैं। नीतिकार कहते हैं—

सचिव वैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज धर्म तन तीन कर, होय वेग ही नाश॥

राजन्, हम तुम्हारा अहित नहीं चाहते, अपितु हित ही चाहते हैं।

शिशुपाल—हाँ महाराज, मुझे इस बात का पूरा विश्वास है। आप, निःसंकोच वास्तविक बात कहिये।

नारद—राजन्, रुक्मिणी की जन्मकुण्डली कुछ और कहती है और तुम्हारी जन्मकुण्डली कुछ और। तुम्हारी और रुक्मिणी की जन्मकुण्डली, आपस में मेल नहीं खाती। इसलिए बहुत सम्भव है, कि रुक्मिणी के साथ विवाह करने की तयारी करके तो तुम जाओ परन्तु रुक्मिणी के साथ विवाह कोई दूसरा ही करे और तुम्हें अपमानित एवं पराजित होकर, रुक्मिणी-रहित ही लौटना पड़े। रुक्मिणी की कुण्डली कहती है, कि यह कृष्ण की पटरानी बनेगी। बल्कि कृष्ण से इसका मानसिक विवाह तो हो चुका है, शारीरिक विवाह भी उस दिन हो जावेगा, जो दिन इसके विवाह के लिए नियत हुआ है। इसमें किंचित् भी अन्तर होने वाला नहीं है। तुम्हारा और रुक्मिणी का विवाह किसी मूर्ख ने बताया है, कोई ज्योतिष का जानकार तो ऐसा विवाह कदापि नहीं जुडा सकता। मैं तुम्हें इस विवाह के भविष्य से सूचित किये देता हूँ, आगे तुम राजा हो, वीर हो, जरासन्ध के स्नेहभाजन हो, इसलिए तुम्हें जैसा उचित प्रतीत होगा, वैसा तो तुम करोगे ही।

नारद की बात सुनकर, शिशुपाल का वह ज्योतिषी तो अवश्य प्रसन्न हुआ, जिसने शिशुपाल को टीका स्वीकार करने से रोका था, परन्तु शिशुपाल अप्रसन्न हुआ। वह अपने मन में कहने लगा, कि इन बाबाजी को यदि ऐसी ही बात कहनी थी,

तो ये मुझे एकान्त में ले जाकर कह देते, जिसमें मेरी सभा के लोग और सहायता के लिए आये हुए राजागण हतोत्साह तो न होते। कोई दूसरा व्यक्ति यदि ऐसा भयंकर अपराध करता, तो मैं उसे मृत्युदण्ड ही देता, परन्तु इन बाबाजी से तो कुछ कहते भी नहीं बनता। यह भी नही कह सकता, कि मेरे यहाँ से चले जाओ। फिर भी इनकी बात को, इसी सभा में और इनके सामने ही उपेक्षणीय बता देनी चाहिए, जिसमे यहाँ उपस्थित लोगों पर इनकी बात का प्रभाव न रह सके।

इस प्रकार विचार कर शिशुपाल, ठहाका मार कर कृत्रिम हँसी हँसा। वह कहने लगा—वाह महाराज, आपने अच्छी बात सुनाई। जान पड़ता है, कि आप कृष्ण या भीम से मिल चुके हैं, इसीसे मुझे कुण्डिनपुर जाने मे भय बता रहे हैं। कदाचित आपने जन्मकुण्डली पर से ही ऐसा कहा हो, तब भी आपको यह कदापि न भूल जाना चाहिए, कि जन्मकुण्डली आदि का दुष्फल हम राजाओं को नही होता। हमारी सेना जिस ओर प्रस्थान करती है हम जिस ओर दृष्टि डालते हैं, उस ओर के क्रूर ग्रहों को भी भाग जाना पड़ता है। या वे क्रूर ग्रह भी अच्छा फल देने लगते हैं। रुक्मिणी का विवाह मेरे साथ ठहरा है। मैं, रुक्मिणी के यहाँ किसी से रुक्मिणी की याचना करने नहीं गया था, किन्तु रुक्मिणी के यहाँ से मेरे यहाँ विवाह का टीका,

आया है। यदि रुक्मिणी मेरी पत्नी बनने की इच्छा न रखती होती, तो मेरे लिए टीका ही क्यो आता ? इस पर भी कदाचित कोई विघ्न हुआ, कृष्ण वहाँ आया और उसने किसी प्रकार की बाधा डाली, तो मेरे ये योद्धागण, कृष्ण और उसके सहायकों को अपनी वीरताग्नि में भस्म कर डालेंगे। मै, कृष्ण तो क्या, साक्षात् मृत्यु से भी भय नहीं करता, न ये मेरे योद्धा लोग ही भय करते हैं। इसलिए आपने. भावी आशंका से भयभीत करने की चेष्टा व्यर्थ ही की है। भयभीत तो वही हो सकता है, जो कायर हो। हम वीरों के पास भय का क्या काम! हम, भय को तो सदा आमन्त्रित करते रहते हैं। हमारे अस्त्र-शस्त्र, शत्रुओं का रक्त चूसने के लिए उत्सुक रहते हैं। यदि कृष्ण मिल गया, तो हमारे शस्त्र, उसका रक्त शोपण करके अपनी तृषा मिटावेंगे और मुझे विजयलक्ष्मी के साथ ही रुक्मिणी रूपा लक्ष्मी भी प्राप्त करावेंगे।

यह कह कर शिशुपाल, अपने सभासदों की ओर देख कर फिर हँसने लगा। उसके जो सभासद, उसीके से स्वभाव के थे, वे भी शिशुपाल की हँसी का साथ देने लगे परन्तु जो विचारवान थे, वे, गम्भीर बने बैठे रहे।

शिशुपाल के कथन के उत्तर मे, नारदजी कहने लगे कि—

यह तो मैं पहले ही कह चुका-हूँ कि तुम राजा और वीर हो,

इसलिए अपने ही मन की बात करोगे; मैंने तो भविष्य के भय से तुमको इसलिए सूचित किया है, कि जिसमें तुम सावधान रहो। अच्छा अब हम भी चलते हैं; यदि हो सका, तो कुण्डिनपुर में विवाह की धूमधाम देखेंगे।

यह कह कर, नारदजी चलने के लिए खड़े हो गये। 'जैसी इच्छा महाराज' कह कर तथा प्रणाम करके शिशुपाल ने भी उन्हे विदा कर दिया और फिर सभा मे बैठकर अपनी वीरता की डींग हाँकने लगा। शिशुपाल, ऊपर से तो प्रसन्न दिख रहा था और विवाह का प्रबंध करा रहा था, परन्तु उसके हृदय में चिन्ता ने स्थान कर लिया था। रात के समय, वह अपने रनवास में गया, किन्तु चिन्ता के कारण उसे नींद नहीं आई।

शिशुपाल की सभा में नारदजी जो कुछ कह गये थे, वह बात सारे नगर मे फैल गई। शिशुपाल की रानी को भी मालूम हो चुका था, कि यह विवाह करने से पति को नारदजी ने भी उसी प्रकार रोका है, जिस प्रकार ज्योतिषी और जिठानीजी ने रोका था। इस प्रकार का निषिद्ध विवाह करने के लिए जाने का परिणाम क्या होगा, इस विचार से शिशुपाल की रानी का चित्त अस्थिर था। उसे भय था, कि कहीं इस विवाह में मेरे सुहाग का ही बलिदान न हो जावे। वह दीनता दिखाती हुई, अनुनय-विनय-पूर्वक शिशुपाल से कहने लगी—नाथ, पहले तो

आपको और विवाह करने की आवश्यकता ही नहीं है। इस पर भी, यदि आप विवाह करना ही चाहते हो, तो किसी दूसरी राजकुमारी के साथ विवाह कर लीजिये, परन्तु रुक्मिणी से विवाह करने, कुण्डिनपुर मत जाइये। जिस विवाह का ज्योतिषी ने भी निषेध किया है, और जिस विवाह के लिऐ जाने का दुष्परिणाम नारदजी ने पहले ही से बता दिया है, वह विवाह करने के लिए कुण्डिनपुर जाने पर, कदापि कल्याण नहीं हो सकता। रुक्मिणी, आपकी पत्नी नहीं बनना चाहती, किन्तु कृष्ण की पत्नी बनना चाहती है। रुक्मिणी के न चाहने पर भी, उसके साथ विवाह करने जाना ठीक नहीं है। नारद के कथनानुसार, कृष्ण वहाँ आवेंगे, वे रुक्मिणी से विवाह भी करेंगे और आपको अपमानित तथा पराजित होकर, खाली लौटना पडेगा। यदि नारद द्वारा कथित यह भविष्य ठीक निकला, तो मुझे भी कितना दुःख होगा! अब तक मैं वीरपत्नी कहलाती हूँ परन्तु फिर कायरपत्नी कहाऊँगी। कायरपत्नी कहा कर जीवित रहना, क्या अच्छा है! इस प्रकार के जीवन से तो मरण ही श्रेष्ठ है। कदाचित आप नारदजी की बात पर विश्वास न करें और वैसे व्यवहारिकता से देखें, तब भी आप ही बताइये, कि श्रीकृष्ण और बलराम का सामना कौन कर सकता है! आज तक युद्ध मे उनसे किसने विजय पाई है। उनसे युद्ध करने वाले के भाग्य में, केवल परा-

जय ही है । इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आपके पाँवों पड़ती हूँ और आप से भिक्षा मांगती हूँ, कि आप रुक्मिणी से विवाह करने के लिए कुण्डिनपुर मत जाइये। आपके कुण्डिनपुर जाने से मुझे, मेरे सुहाग का भय है।

पत्नी की बात सुन कर, शिशुपाल हँसने लगा। वह कहने लगा, कि स्त्रियो में स्वभावतः कायरता होती है। उस कायरता के वश होकर ही. तुम मुझ से कुण्डिनपुर न जाने का कह रही । परन्तु तुम्हारा इस प्रकार कायरता का परिचय देना नितान्त लज्जास्पद है। तुम वीर-पुत्री और वीर-रमणी हो। क्षत्रियाणी, अपने पति के सामने इस प्रकार की कायरता भरी बात कदापि नहीं करती। पहले तो मै कुण्डिनपुर से आया हुआ विवाह का टीका स्वीकार कर चुका हूँ, सब राजाओं को आमन्त्रण दे चुका हूँ, वे आ भी गये हैं, विवाह की सब तयारी भी हो चुकी है, ऐसी दशा मे मैं कुण्डिनपुर न जाऊँगा, तो लोग क्या कहेंगे ? ऐसा करने पर मेरी वीरता को कलंक लगेगा, या नहीं। दूसरे, मैं कुन्डिनपुर क्यों न जाऊँ ? केवल कृष्ण के भय से ? एक ग्वाले के भय से—उस कायर के डर से—मैं कुण्डिनपुर न जाऊँ तो लोग मेरे लिए क्या विचारेंगे ? मुझे धिक्कारेंगे, या नहीं ? वैसे तो चाहे मैं कुण्डिनपुर न जाता

और रुक्मिणी के साथ अपना विवाह न करता, परन्तु कृष्ण से रुक्मिणी की रक्षा करने के लिए मुझे अवश्य जाना पड़ेगा। रुक्मिणी क्षत्रिय-कन्या है। उसका विवाह एक ग्वाले के साथ हो, यह क्षत्रियों के लिए नितान्त लज्जास्पद वात है। उसमें भी, उस दशा में, जब कि रुक्मिणी के विवाह का टीका मुझे चढ़ाया जा चुका है और रुक्म ने मुझ से प्रार्थना की है, कि मैं रुक्मिणी के साथ विवाह कर के क्षत्रियो की मर्यादा बचाऊँ। वीर-नारी होने के कारण ऐसे समय पर तो तुम्हे उचित है, कि तुम मुझे प्रेरणा करके कुण्डिनपुर भेजो और मुझ से कहो कि एक क्षत्रिय-कन्या की रक्षा करो, उसे नीच ग्वाले के हाथ न पड़ने दो। तुम, वैसे तो मुझे युद्ध के लिए उत्साहित ही किया करती थीं, परन्तु इस वार तुम इसके विपरीत क्यों करती हो, इसका कारण मैं समझ गया। तुम, सौत के दुःख से भयभीत हो कर ही, मुझे ऐसी सम्मति दे रही हो और इसी कारण, शत्रु की प्रशंसा करने जैसे नीच कार्य में प्रवृत्त होकर, मुझे कायरता सिखा रही हो। स्त्रियों के लिए, सौत का होना वहुत वड़ा दुःख है। वास्तव में कई पुरुष, दूसरी स्त्री के वश होकर प्रथम पत्नी की उपेक्षा ही नहीं करते, अपितु उसे कष्ट भी देते हैं, परन्तु मेरे स्वभाव से तो तुम अपरिचित नहीं हो। मेरे द्वारा तुम्हारे लिए किसी प्रकार का अन्याय हो, यह कदापि संभव नहीं। इसपर

भी यदि तुम चाहो, तो मुझ से किसी प्रकार की प्रतिज्ञा करा सकती हो। बोलो, तुम क्या चाहती हो?

रानी—पतिदेव, आप भूल कर रहे हैं। मैं, सौत से बचने के लिए आपको नहीं रोकती। मुझे, सौत का किंचित् भी भय नहीं है। यदि मेरे मे बुद्धि होगी, तो मेरे लिए सौत भी, बहन के समान प्रेम रखनेवाली हो जावेगी। मैं आपको कुण्डिनपुर जाने से इसलिए रोक रही हूँ कि जिसमे वहाँ मे अपमान्ति हो कर न लौटना पड़े और एक स्त्री के लिए अनेक स्त्रियों को वैधव्य न भोगना पडे। मैं यह सुन चुकी हूँ, कि रुक्मिणी, कृष्ण की पत्नी बनना चाहती है और भीम भी रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से ही करना चाहते हैं। ऐसी दशा मे, केवल रुक्म के बुलाने पर, आपका वहाँ जाना ठीक नहीं है। इसीलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, कि आप कुण्डिनपुर मत जाइये और कहला दीजिये, कि मेरा विवाह हो चुका है, अब और विवाह नहीं करना है।

शिशुपाल—वाह, अच्छी बुद्धि सिखाती हो। आखिर स्त्री ही ठहरीं न। स्त्रियो की बुद्धि, उल्टी तो होती ही है। स्त्रियो की सीख में लगकर काम करे, तब तो पूरा ही हो जावे। तुमने यह भी नहीं विचारा कि मैं ऐसी सम्मति कैसे दूँ! वास्तव में तुम इतने दिन मे भी, मेरी वीरता और मेरे पराक्रम से

अपरिचित ही रहीं। जिस कृष्ण का तुम भय दिखा रही हो, वह भी कोई वीर है। जो अब तक नन्द की गायें चराता रहा, वन्शी बजा कर स्त्रियों को मोहित करता रहा और स्त्रियों के साथ खेलता कूदता रहा, वह वीरता क्या जाने। कदाचित् जानता भी हो, तब भी यह तो हमारे लिए प्रसन्नता की बात है कि हमें एक वीर से युद्ध करने का अवसर मिलेगा। इसलिए मैं तुम्हारी बात कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। क्षत्रियों की लाज बचाने के लिए जब रुक्म ने अपने बाप की भी बात नहीं मानी, तब मैं तुम्हारी बात कैसे मान सकता हूँ।

रानी—अच्छी बात है मत मानिये. परन्तु अब मैं, मुझे प्राप्त अधिकार की रक्षा के लिए आपसे यह प्रार्थना करती हूँ. कि आप रुक्मिणी के साथ विवाह मत करिये। जिस समय मेरा और आपका विवाह हुआ था, उस समय, विवाह के नियमानुसार आपने मुझ से यह प्रतिज्ञा की है, कि मैं तुम्हारी सम्मति के विरुद्ध कार्य न करूँगा, किन्तु प्रत्येक कार्य में तुमसे सम्मति लूँगा और तुम्हारी सहमति से ही कार्य करूँगा। मैं, रुक्मिणी के विवाह से सर्वथा असहमत हूँ। इसलिए, आपको रुक्मिणी के साथ कदापि विवाह नहीं करना चाहिए। इसके सिवा, विवाह के समय जिस प्रकार मैंने दूसरा पति करने का अधिकार नहीं रक्खा है, उसी प्रकार आपने भी दूसरी पत्नी करने का

अधिकार नहीं रखा है। ऐसी स्थिति में आप रुक्मिणी के साथ विवाह कैसे कर सकते हैं। और जब आप अपनी प्रतिज्ञा भंग कर रहे हैं, तब हम, प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए विवश क्यों हैं? विवाह-समय की गई प्रतिज्ञा को पुरुष तो भंग करें और फिर भी स्त्रियों के लिए उस प्रतिज्ञा का पालन आवश्यक हो, यह न्याय नहीं कहला सकता। हमें अबला समझ कर, पुरुषों का हम पर इस प्रकार अत्याचार करना, कदापि उचित नहीं है। आप वीर हैं, आप तो इस प्रकार का अन्याय न करिये!

पत्नी की यह बात सुन कर शिशुपाल रुष्ट हो गया। वह कहने लगा—तुम मुझ पर अपना अधिकार जताने चली हो। पुरुषों पर स्त्रियों का अधिकार! हमने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। यदि हमारी ओर से किसी ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की भी हो, तो वह हमें कदापि मान्य नहीं हो सकती। हम पुरुषों को, स्त्रियों से इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होने की आवश्यकता भी नहीं है। स्त्रियों को हमारी दासी बन कर रहना होगा, हम, स्त्रियों के दास नहीं हो सकते। हमारे लिए स्त्रियाँ, भोग्य हैं। एक भोग्य-पदार्थ के होते हुए भी, दूसरा भोग्य-पदार्थ लाने भोगने का हमे अधिकार है, उसी प्रकार एक स्त्री के होते अनेक स्त्रियाँ लाने का भी हमे अधिकार है। इस विषय में हमें यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि स्त्री सहमत है, अथवा नहीं।

तुम्हारी या रुक्मिणी की असहमति, हमारे लिए किसी भी प्रकार बाधक नहीं हो सकती। यदि किसी की असहमति हमारे लिए बाधक बनती हो, तो हम अपनी शक्ति से उस असहमति को सहमति मे परिणत कर सकते हैं, परन्तु असहमति के कारण किसी कार्य के करने से नहीं रुक सकते। यह बात साधारण पुरुषो के लिए भी है, हम तो राजा है। हमारे लिए तो वही न्याय है, जो हमारी इच्छा है। मैं तुम्हे सूचित करता हूँ कि फिर कभी अधिकार की बात मत करना। मैं, तुम पर दया करके ही तुमसे कोई प्रतिज्ञा करने के लिए तय्यार हुआ था, अन्यथा, इसकी भी आवश्यकता नहीं है।

शिशुपाल को क्रुद्ध देख कर, बेचारी पत्नी, कॉप उठी। उसने धीरे से यही कहा, कि आप नाराज मत होइये, हम तो आपकी दासी ही हैं। यदि आप ही की तरह हम भी बन जावें, तब तो आप हमारे अधिकारो की हत्या नहीं कर सकते, परन्तु पुरुषों की तरह, हम धर्म नहीं छोड़ना चाहती। जो लोग हम स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं, उन्हे इसका प्रतिफल भी अवश्य भोगना पड़ेगा।

शिशुपाल ने, ज्योतिषी, भौजाई, नारद और पत्नी, इनमे से किसी की भी बात नहीं मानी। बल्कि, समझाने से उसका

अहंकार और बढता जाता था। वह, सब के समझाने की अवहेलना करके बारात सजाने लगा।

शिशुपाल की बारात तैयार होने लगी। बाजे बजने लगे। सेना, सजने लगी। सहायक राजागण भी अपनी-अपनी सेना सहित तयार हो गये। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सुसज्जित हुए। युद्ध-सामग्री साथ लेने का प्रबन्ध भी किया गया। चन्दन की चौकी पर बैठ कर शिशुपाल, उबटन लगवाने लगा। मङ्गल गीत होने लगे। सुहागिनें, तेल चढ़ाने लगीं। तेल उबटन हो जाने पर, शिशुपाल ने स्नान किया। फिर दूलह-वेश सजा। रत्नों के आभूषण पहने। इस प्रकार, शिशुपाल, दूल्हा बन कर तयार हो गया।

दूल्हा बन कर शिशुपाल ने सोचा कि अब भावज के पास चल कर देखे, कि वे क्या कहती हैं। भावज ने, मेरे सहायक राजाओ और उनकी सेना को देखा ही है। मै भी दूल्हा बना हुआ उनके सामने जाऊँगा, इसलिए अब तो वे पूर्व की बातों को भूल, रुक्मिणी के साथ विवाह करने को ठीक बतावेंगी! शिशुपाल तो अपने सैनिक बल के सहारे इस प्रकार विचार रहा है, परन्तु भावज, शिशुपाल के सहायक राजाओ के विषय में यह विचारती है, कि मेरे मूर्ख देवर ने, इन बेचारों को, अपने विवाह में बलि देने के लिए बुलाया है।

शिशुपाल, भावज के महल में गया। उसका अनुमान था, कि इस वार मुझे देख कर भावज के चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दौड़ जावेगी, या उनने पहले मेरे विवाह का विरोध किया था, इसलिए अब मुझे देख कर लज्जित होंगी, परन्तु शिशुपाल का यह अनुमान गलत निकला। उसे, भावज के चेहरे पर, कोई अस्वाभाविक परिवर्त्तन दिखाई न दिया। भावज ने, शिशुपाल को—सदा की भांति आदर करके—बैठाया। वह शिशुपाल से कहने लगी—देवरजी, मेरे लिए यह बड़ी प्रसन्नता की वात है, कि आपने मुझे विस्मृत नहीं किया। मैं तो समझती थी, कि देवरजी मेरे महल से रुष्ट होकर गये हैं, और अब तो विवाह की तयारी में लगे है, इसलिए मुझे भूल जावेंगे, परन्तु मेरे सद्भाग्य से आप मुझे नहीं भूले। मुझे आपसे एक वार फिर कुछ कहना था, इसलिए अच्छा हुआ जो आप पधारे।

शिशुपाल समझ गया, कि भौजाई अपनी पहले की वात पर ही दृढ़ हैं, वे आज भी पहले की ही तरह रुक्मिणी के साथ विवाह करने का निषेध करेंगी। उसने विचारा कि ये स्वयं कुछ कहें, इससे पहले, इस विषय में मुझे ही कुछ कहना ठीक है। इस प्रकार विचार कर, वह अपनी भौजाई से कहने लगा—हाँ जो कुछ कहना है, कहिये, मैं भी सुनने के लिए ही आया हूँ। परन्तु मैं पूछता हूँ, कि मेरे विवाह से, आपका हृदय

क्यों जल रहा है ? आपका मुँह क्यो चढ़ा हुआ है ? मेरे जितने भी मित्र और हितैषी हैं, इस समय वे सभी प्रसन्न हैं, केवल एक आपही ऐसी हैं, जिन्हे मेरा विवाह नहीं सुहाता। भला विचार तो करो, कि ये सब राजा लोग क्या मूर्ख है, जो मेरे विवाह के लिए अपने प्राण समर्पण करने तक की तयारी करके आये हैं ? केवल तुम्ही बुद्धिमती हो ? कुछ तो विचार रखना चाहिए, कि यह कैसे आनन्द का समय है, मैं इस आनन्द मे भाग लेने से क्यो वंचित रहूँ ? आप तो केवल अपनी ही हठ पकड़ कर बैठ गई। मै समझता था, कि जब दूसरी स्त्रियाँ मंगल गान करने और तेल चढ़ाने आई हैं, तो भावज भी अवश्य ही आ-वेंगी, परन्तु आप तो बड़ी ही हठीली निकलीं। आपको मेरे सिर मौर बन्धना उसी प्रकार अच्छा नहीं लगा, जिस प्रकार वर्षा होने पर और सब वृक्ष तो हरे हो जाते हैं, परन्तु जवास सूख जाता है। अब भी समय है। समझो, अपनी ही बुद्धि मत चलाओ, किन्तु मेरे विवाह के हर्ष में भाग लो। अन्यथा विवाह तो होगा ही, केवल कहने की बात रह जावेगी।

शिशुपाल की बात के उत्तर मे भावज कहने लगी—देवरजी, यद्यपि रुक्मिणी के साथ विवाह न करने के विषय में मैंने पहले भी आप से कहा था, और मेरे कहने पर आप रुष्ट भी हो गये थे, लेकिन मैं आपके हित को दृष्टि में रख कर फिर

यही कहती हूँ, कि आप कुण्डिनपुर मत जाइये। आपकी यह वारात देख कर, मुझे भय होता है। मैं विचारती हूँ, कि इन वेचारों की स्त्रियाँ व्यर्थ मे विधवा हो जावेंगी। आप, एक स्त्री के लिए, अनेक स्त्रियों का सुहाग नष्ट मत कराइये। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। आपकी जो तयारी है, वह व्यर्थ न होगी। आप, इसी तयारी से मेरे पीहर पधार जाइये, मै अपनी बहन से आपका विवाह कराये देती हूँ। रुक्मिणी से विवाह करने के लिए कुण्डिनपुर जाकर आप, रक्त की कीच मत मचवाइये; किन्तु वहाँ सूचना भेज दीजिये, कि हम दूसरी लग्न-तिथि पर रुक्मिणी के साथ विवाह करेंगे।

शिशुपाल—वस भौजाई, आपके तो केवल यही बात है, कि रुक्मिणी के साथ विवाह न करके मेरी वहन के साथ विवाह कर लीजिये। आपकी यह बात नहीं मानी, इसी से आप रुष्ट भी हैं, परन्तु मैं आप से पहले ही कह चुका हूँ, कि कुण्डिनपुर से लौट कर आपकी बहन से भी विवाह कर लूँगा। आप, इस कारण अपना मुँह मत चढ़ाइये। आप कहती हैं, कि पहले मेरी बहन के साथ विवाह करिये, रुक्मिणी के साथ फिर करिये, लेकिन यह कैसे सम्भव है? आप तो यह सोचती है, कि रुक्मिणी के साथ पहले विवाह होगा, तो मेरी बहन छोटी रानी होगी और पहले मेरी बहन से विवाह होगा, तो रुक्मिणी छोटी

रानी होगी, परन्तु ये सब राजा लोग, आपकी बहन के साथ विवाह होना समझ कर नहीं आये हैं, किन्तु कुण्डिनपुर जाने के लिए आये है। इसलिए इस लग्न-तिथि पर विवाह करने के लिए तो कुण्डिनपुर ही जावेंगे। हम, नीति के इस कथन का उल्लंघन कदापि नहीं कर सकते—

महत्त्वमेतन्महता नयालङ्कार धारिणाम्।
न मुञ्चन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये॥

अर्थात्—नीति का भूषण धारण करनेवाले महात्माओं का यही महत्व है कि वे, घोर विपद पड़ने पर भी अपने, आरम्भ किये काम को नहीं छोड़ते।

भौजाई—देवरजी, आप और विवाह न करें, यह तो अच्छा ही है, क्योंकि मेरी एक देवरानी मौजूद ही हैं। मैंने मेरी बहन से विवाह करने का तो, इसलिए कहा था, कि आपको दूल्हा बन कर फिर दूल्हा-वेश— बिना विवाह किये ही—उतार देना बुरा मालूम होता हो, तो मेरी बहन के साथ विवाह करलें। यदि आप मेरी बहन से विवाह न करें, तो यह तो अधिक-प्रसन्नता की बात है, परन्तु कुण्डिनपुर मत जाइये। कुण्डिनपुर जाने से आपकी बड़ाई न रहेगी। न्यायानुसार, जो आपको नहीं चाहती, उसे आप क्यों चाहें। रुक्मिणी, कृष्ण को हृदय से पति मान चुकी है। ऐसी दशा में क्या आप दूसरे की पत्नी

से विवाह करने जावेंगे ? और क्या कृष्ण सहज ही रुक्मिणी को ले आने देंगे ? फिर व्यर्थ के झगड़े में पड़ कर, अपमान तथा पराजय क्यों मोल लेते हैं और धन जन की हानि क्यों करते हैं।

शिशुपाल—आप, अब यह भले कहो कि मैं अपनी बहन के लिए नहीं रोक रही हूँ, परन्तु आपका उद्देश्य तो यही है, कि एक मैं हूँ और एक मेरी बहन आ जावे, बस हमारा ही एकाधिपत्य हो जावे। रुक्मिणी की ओर से आपको यह भय है, कि वह हमारे आधिपत्य में बाधा डालेगी। यदि आपको यह भय नहीं है और आप, उस उद्देश्य से नहीं रोक रही हैं, तब फिर आप को यह विचार क्यों नहीं होता, कि इतनी तयारी हो जाने के बाद, कुण्डिनपुर न जाने में अपमान होगा!

भौजाई—देवरजी, अभी कुछ भी अपमान नहीं है और कुण्डिनपुर न जाने पर भी अपमान की कोई बात नहीं है। अपमान तो तब है, जब आप वहाँ से युद्ध में हार कर रुक्मिणी बिना ही लौटेंगे। उस समय आप स्वयं तो अपने कृत्य पर लज्जित होकर पश्चात्ताप करेंगे ही, ऊपर से आपको उन लोगों की दुराशीष भी सुननी पड़ेगी, जिनके घर के लोग युद्ध में मारे जावेंगे। इन राजाओं को और इनकी सेना को देख कर आप गर्व में मत फूलो। कृष्ण रूपी अग्नि से, ये सब तृण समान भस्म हो जावेंगे। आपका यह दूल्हा-वेश और यह मौर,

निरर्थक-बल्कि अपमान वर्द्धक होगा। आप, मुझे उपालम्भ देते हैं कि और स्त्रियाँ तो मंगल गाने आईं और आप मंगल गाने नहीं आईं, परन्तु कोई भी बुद्धिमती तथा सत्यपरायण-स्त्री, किसी भी दशा में ऐसा मंगल कदापि न गावेगी, जिसके पीछे अमंगल भरा हो। मंगल गाने के पश्चात उस कार्य में अमंगल होने पर, उस मंगल गानेवाली स्त्री को दूषण लगता है। मैं तो ऐसे विवाह का मंगल कदापि नहीं गा सकती. जो मेरी दृष्टि में अनुचित है। आपका भी कर्त्तव्य यही है, कि जो विवाह उचित नही है, नारद ज्योतिषी आदि सभी जिस विवाह का निषेध कर रहे हैं, जिस विवाह में प्रत्यत्त ही कलह और पराजय की आशंका है, तथा जिस विवाह में कन्या और उसके पिता की भावना को पददलित किया जा रहा है, वह विवाह करने का दुःसाहस न करें। आप, चंदेरी के राजा हैं। आप यहाँ से तो सिर पर मौर बाँध कर चवँर छत्र से सुशोभित होकर धूम-धाम से जावें और वहाँ से हार खाकर भागते हुए आवें, इसमें आपकी बड़ाई नहीं है।

भावज का यह कथन, शिशुपाल को असह्य हो उठा। वह क्रोध से त्यौरी बदल कर, भावज से कहने लगा—वह कृष्ण आपको इतना प्रिय क्यों है, जो आप उसकी वार-वार प्रशंसा कर रही हैं। क्या वह आपका कुछ लगता है? हम, आपके देवर

हैं, फिर भी हमारी तो बुराई ही बुराई कर रही हो और उसकी इतनी बड़ाई कर रही हो ! मालूम है कि हम कौन हैं ? हमारे सामने उस ग्वाले की बड़ाई ! और यह भी हमारी भौजाई द्वारा ! आपको अपनी स्त्री-जाति का भी ध्यान नहीं है ! यह नहीं देखतीं, कि कहां रुक्मिणी और कहाँ कृष्ण ! एक हंसिनी पर कौए का अधिकार कराना चाहती हो ! यदि मेरे यहाँ टीका न आया होता और उस समय भी रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ हो रहा होता, तब भी आप को यही उचित था, कि आप प्रेरणा करके मुझे, उस क्षत्रिय-कन्या रुक्मिणी को उस काले ग्वाल से बचाने के लिए कुण्डिनपुर भेजतीं, परन्तु आप तो और रोक रही हो ! वह भी, कृष्ण का भय दिखा कर ! आपको ऐसा करते लज्जा भी नहीं होती ! आप क्षत्रिय-कन्या हो ! वीर-पत्नी हो ! अपने वीर देवर को तुच्छ बता कर, ग्वाल की सराहना करना, क्या क्षत्रिय नारी का कर्त्तव्य है ! हमारी सेना देख कर भी आपको कुछ विचार नहीं होता ! मेरी सेना, में ऐसे ऐसे वीर हैं, कि जो कृष्ण ऐसे सैकड़ो ग्वालों को एक क्षण में मार सकते हैं ! ऐसे वीरों का अपमान करके, कृष्ण की ही बड़ाई करती जा रही हो ! मैं अब तक आपको बड़ी बुद्धिमती समझता था। काम काज में आपसे सम्मति लिया करता था, परन्तु आपका वास्तविक रूप आज मालूम हुआ । अब तक तो

आप छिपी ही रहीं, लेकिन आज मुझे मालूम हो गया कि आपकी सीख मानने वाले का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। आखिर आप भा तो स्त्री ही ठहरी न। स्त्रियों में बुद्धि कहाँ से हो सकती है। स्त्रियो के विषय मे नीतिकारों ने कहा ही है कि—

तासा वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
करोति यः कृती लोके लघुत्व याति सवतः ॥

अर्थात्—जो कृती पुरुष, स्त्रियों की छोटी बडी या थोडी बहुत बात मानता है, वह सब तरह से नीचा देखता है।

इस नियम से आप कैसे बच सकती थीं। आज किसी बड़े से बड़े क्षत्रिय राजा की भी ताकत हमारी ओर आँख उठा कर देखने की नहीं है, फिर बेचारा कृष्ण ग्वाला हमारे सामने क्या चीज़ है। लेकिन आपने तो उसकी ऐसी बड़ाई की, कि जैसे उसके बराबर संसार में दूसरा कोई है ही नहीं! मै, मेरे शत्रु के प्रशंसक को अपने राज्य मे कदापि नहीं रहने दे सकता। आप से भी मै यही कहता हूँ, कि आपके लिए मेरे राज्य मे स्थान नहीं है। आप, रथ जुतवा कर, जल्दी से जल्दी अपने पिता के यहाँ चली जाइये।

शिशुपाल—क्रोध से जल रहा था और लाल लाल आँखें करके भावज को अपना क्रोध जता रहा था, परन्तु भावज, ऐसी दुर्बल-हृदय की न थी, जो शिशुपाल के क्रोध से भय खाकर

अनुचित कार्य को भी उचित मान लेती और उससे सहमत हो जाती। यद्यपि शिशुपाल ने उससे यह भी कह दिया, कि आप मेरे यहाँ से चली जावें, फिर भी उसने अपना स्वाभाविक धैर्य नहीं त्यागा। उसने, शिशुपाल से कहा—देवर जी, स्त्रियों के लिए ससुराल से पीहर और पीहर से ससुराल जाना, कोई लज्जा की बात नहीं है। हमारे लिए, इन दो स्थानों के सिवा, तीसरा स्थान है भी तो नहीं! आप कहते हैं, तो मैं पीहर चली जाऊंगी, परन्तु आपकी बारात की चढाई तो देख लूँ। पीहर जाकर भी मैं, दूसरी स्त्रियों की तरह सदा के लिए इस घर को छोड़ देने वाली नहीं हूँ। मेरा अधिकार, पिता के घर पर उतना नहीं रहा, जितना इस घर पर है। इस घर में मैं, अधिकारपूर्वक रहूँगी। फिर भी इस समय यदि यहाँ से मेरे जाने से आपको सन्तोष होता होगा, तो मैं चली भी जाऊँगी, लेकिन आपसे तो फिर यही कहूँगी, कि आप कुन्डिनपुर मत जाओ और श्वसुर दमघोष के वंश को कलंक मत लगाओ। मेरा कथन आपको अभी तो बुरा लगता है, लेकिन मेरे कथन के विरुद्ध काम करने पर आप को मेरा कथन याद आवेगा। आपको अपनी सेना और वीरता का गर्व है, परन्तु मैं भी देखती हूँ कि आप रुक्मिणी को किस प्रकार विवाह कर लाते हैं। यदि मैं पीहर गई भी, तो जब आप रुक्मिणी को लेकर आयेंगे, तब मैं रुक्मिणी को

देखने और उसे आशीर्वाद देने के लिए, आपके सन्देश की प्रतीक्षा किये बिना ही अपने पिता के घर से यहाँ चली आऊँगी।

भावज की बात समाप्त होते ही गर्वी शिशुपाल, भावज के महल से चल दिया। उसकी बारात तयार हो चुकी थी। हाथी घोड़े रथ पैदल आदि सुसज्जित खड़े थे। प्रस्थान कालीन मंगलवाद्य बज रहे थे। गायकगण, गा रहे थे। बन्दीजन, यश उच्चार रहे थे और स्त्रियाँ मंगलगीत गा रही थीं। नगर की बहुतेरी स्त्रियाँ, बारात देखने के लिए अटारियों पर खड़ी हुई थीं। शिशुपाल ने, भावज के महल से लौट कर, बारात कूच करने की आज्ञा दी। शिशुपाल भी, छत्र चँवर से सुशोभित होकर, एक अत्यधिक सजे हुए बड़े हाथी पर सवार हुआ और भेरीनाद के साथ उसकी बारात ने, चन्देरी से कुन्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया।
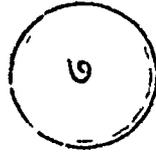
कुण्डिनपुर में—

मनुष्य के पतन का सब से बड़ा कारण, अभिमान है। अभिमान के कारण मनुष्य का जितना अधिक पतन होता है उतना पतन, किसी और कारण से शायद ही होता हो। अभिमान के वश हुआ मनुष्य, पतित से भी पतित कार्य करता जाता है, फिर भी वह उस पतित कार्य को अपने गौरव का कारण मानता है। उस पतित कार्य पर भी उसे गर्व होता है। धन, राज्य, या बल से पुष्ट अभिमान तो मनुष्य को पतन की चरम सीमा पर पहुँचा देता है। ऐसे अभिमान से भरा हुआ व्यक्ति, धन, राज्य, या बल का अधिक से अधिक उपयोग, अपना अभिमान बढ़ाने मे ही करता है। उसमें से, सरलता, सहिष्णुता और नम्रता निकल जाती है। वह, अभिमान में पड़ कर, असरलता, कठोरता और असहिष्णुता का व्यवहार करने

लगता है। उसमें एक प्रकार की विक्षिप्तता आ जाती है, जो उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। गर्वोन्मत्त व्यक्ति, उस कार्य में आगे बढ़ता ही जाता है, जिसके लिए उसने गर्व-पूर्वक विचार किया हो। ऐसा करने मे, फिर चाहे उसे धर्म, न्याय और सत्य को पददलित करना पड़े, तब भी वह, पीछे न हटेगा, किन्तु इन सब को पददलित करता हुआ बढ़ता ही जावेगा। उस कार्य के परिणाम पर विचार करने की बुद्धि तो उस मे रहती ही नहीं है। उसमे केवल अपनी बात, अपने सम्मान और अपनी कीर्त्ति-रक्षा की ही बुद्धि रहती है। वह, पहाड़ ऐसे बड़े, दूध ऐसे उज्वल और सूर्य ऐसे प्रत्यक्ष्य, सत्य न्याय और धर्म की भी हत्या कर डालता है, रुकता नहीं है। वह, जब भी रुकता है, अपने से बडी शक्ति की टक्कर से पिछड़ कर ही। फिर वह शक्ति, राजसी, तामसी या सात्विक, कैसी भी क्यों न हो, परन्तु उसका अभिमान तो तभी उतरता है, जब वह किसी बड़ी शक्ति से टकरा कर गिरता है। अपने से बड़ी शक्ति से टकरा कर गिरने के पश्चात् वह अभिमानी व्यक्ति, वैसा ही बन जाता है, जैसी शक्ति की टक्कर से उसका अभिमान उतरा है। यदि वह सात्विक शक्ति की टक्कर से गिरता है, यानी क्षमा, दया, सहिष्णुता के संघर्ष या इनके उपदेश से उसका अभिमान उतरता है, तब तो वह भी क्षमाशील, दयालु और सहिष्णु बन जाता

है। फिर उसमें से अभिमान, सदा के लिए नष्ट हो जाता है। यह बात, कतिपय उदाहरणों पर दृष्टि देने से, अधिक पुष्ट हो जाती है। अर्जुन माली, सुदर्शन सेठ की सात्विक शक्ति से टकरा कर गिरा था। परिणामतः वह स्वयं भी, सात्विक प्रकृति का बन गया। परदेशी भी, केशी श्रमण के सात्विक शक्ति के उपदेश से टकरा कर गिरा, और सात्विक प्रकृति का बन गया। चण्डकौशिक साँप भी, भगवान महावीर की सात्विक प्रकृति के संघर्ष में सात्विक प्रकृति का बन गया। सात्विक शक्ति से टकरा कर गिरनेवाला अभिमानी, सात्विक प्रकृति का ही बन जाता है। इसी प्रकार राजसी और तामसी शक्ति से टकरा कर गिरनेवाला, राजसी और तामसी प्रकृति का बन जाता है। दुर्योधन, पाण्डवों की, राजसी शक्ति से टकरा कर कई बार गिरा, परन्तु वह अधिकाधिक राजसी प्रकृति का ही बनता गया और अन्त में उसका नाश ही हुआ। तामसी प्रकृति से टकरा कर गिरने पर, तामसी प्रकृति के बनने के उदाहरण तो प्रायः देखने में आया ही करते हैं।

तात्पर्य यह है, कि किसी बड़ी शक्ति से टकरा कर गिरने पर, अभिमानी का गर्व तो टूट जाता है, परन्तु एक शक्ति ऐसी है, कि जिससे टकरा कर गिरने पर आत्मा, कल्याण की ओर अग्रसर हो जाता है और दूसरी शक्ति ऐसी होती है, कि जिससे

टकरा कर गिरने पर, आत्मा, अवनति की ओर अधिक बढ़ जाता है। फिर उसका अभिमान, क्रोध, प्रतिहिंसा आदि में परिणत हो जाता है।

शिशुपाल और रुक्म, दोनों ही अभिमानी थे। अभिमान के वश होकर, दोनो ही ने किसी की हितशिक्षा नहीं मानी। दोनो ही, गर्वोन्मत्त होकर, सत्य, न्याय और धर्म को पददलित करते हुए बढ़ते जा रहे हैं। देखना है, कि दोनों किस महाशक्ति से टकरा कर गिरते हैं और फिर भविष्य कैसा बनता है।

सरसत भाट, जैसे ही शिशुपाल को टीका चढ़ा कर लौटा, वैसे ही रुक्म ने, विवाह सम्बन्धी समस्त तयारी करनी प्रारम्भ कर दी। उसने, सारे नगर को भलीभाँति सजवाया। बाजार, मार्ग, उद्यान आदि के सौन्दर्य मे वृद्धि कराई। बारात और आमन्त्रित राजाओं के ठहरने के लिए अनेक महल सजवाये, तथा कई नये महल बनवाये। सब स्थानों पर, खान पान की सामग्री रख कर, सेवक नियुक्त कर दिये गये। यह सब करने के साथ ही, उसने युद्ध की भी तयारी कराई। सैनिकों को युद्ध शिक्षा मिली। उनका मान-सम्मान करके उन्हें सन्तुष्ट किया गया और भविष्य के विषय में भी आशा बँधाई गई।

एक ओर रुक्म तो विवाह की तयारी में लगा है। दूसरी ओर महाराजा भीम, दर्शक की भाँति सब देख सुन रहे हैं और

तीसरी ओर रुक्मिणी, कृष्णानुरागिणी बन कर, अपना अनुराग पूरा करने का विचार कर रही है। महाराजा भीम का साथी उनका चतुर और बुद्धिमान मन्त्री है। रुक्मिणी का साथ देने वाली, महाराजा भीम की बहन है, जो बुद्धिमती है। और रुक्म का साथ देने वाली, उसकी अदूरदर्शी माता है। महाराजा भीम, रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ होने के पक्षपाती होते हुए भी, रुक्मिणी के विवाह सम्बन्धी कार्य या विचार में कोई भाग नहीं लेते, न उन्हें अपनी इच्छा पूरी होने का कोई प्रत्यक्ष कारण ही दिखाई देता है। इसलिए भीम के विषय में किसी प्रकार का परिणाम देखने की आवश्यकता नहीं रहती। परिणाम तो रुक्मिणी और रुक्म के परस्पर विरोधी विचारों का देखना है, कि किसका विचार सफल होता है और किसका निष्फल।

रुक्म, विवाह सम्बन्धी और सब तयारी तो कर चुका था, परन्तु उसके मन में शिशुपाल की ओर से यह सन्देह था, कि कहीं शिशुपाल, कृष्ण से भय न खा जावे, या किसी के बहकावे में न आ जावे। क्या ठीक है कि टीका स्वीकार करके भी वह न आवे। इस सन्देह के कारण उसने रुक्मिणी को तेल नहीं चढ़वाया था और चन्देरी में अपने गुप्तचर नियुक्त कर रखे थे, कि वे चन्देरी से बारात विदा होते ही खबर दें। उसका

विचार था, कि बारात की चढ़ाई की खबर मिल जाने पर ही रुक्मिणी को तेल चढ़ाया जावे। पहले तेल चढ़ा देने पर, यदि शिशुपाल न आया, तो मेरे लिए बड़ी लज्जा की बात होगी।

रुक्म को, चन्देरी में नियुक्त गुप्तचरों की ओर से धावन द्वारा यह समाचार मिला, कि शिशुपाल बारात लेकर कुण्डिनपुर की ओर प्रस्थान कर चुके हैं और बारात में, ऐसे ऐसे, इतने मनुष्य हाथी घोड़े आदि हैं। यह समाचार पाकर, रुक्म को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसका सन्देह मिट गया। उसने आज्ञा दी, कि राजमहल में मंगलाचार किया जावे और रुक्मिणी को तेल चढ़ाया जावे। रुक्म की आज्ञानुसार, रुक्म की माता, राजमहल मे मंगलगान कराने लगी। उसने रुक्मिणी पर तेल चढ़ाने के लिए सुहागिन स्त्रियों को बुलवाया और रुक्मिणी की सखियों को आज्ञा दी, कि रुक्मिणी को शृंगार करा कर ले आओ, जिसमें उसे तेल चढ़ाया जावे।

रुक्मिणी की सखियाँ, प्रसन्न होती हुई रुक्मिणी के पास गईं। वे खिन्नचित्ता रुक्मिणी से कहने लगीं—सखी, शुभ समय में तुम उदास क्यों बैठी हो! तुम्हारे लिए तो चन्देरीराज महाराजा शिशुपाल, बारात जोड़ कर आ रहे हैं और तुम मलिन-वस्त्र पहने बैठी हो! चलो, महारानी तुम्हें बुला रही हैं। आज तुम्हें तेल चढ़ाने का दिन है। दो चार दिन मे बारात

भी आ जावेगी। आओ, तुम्हे शृंगार करा दें। विलम्ब मत करो, विलम्ब होने पर शुभ-मुहूर्त्त बीत जावेगा।

सखियों की बात सुन कर भी, रुक्मिणी वैसी ही गम्भीर बनी रही। उसने, गम्भीरता-पूर्वक सखियों से कहा—सखियो, तुम जाओ और उसे तेल चढ़ाओ, जिससे विवाह करने के लिए शिशुपाल बारात सजा कर आ रहा हो। मुझे न तो शृङ्गार ही सजना है, न तेल ही चढ़वाना है।

सखियाँ—महारानीजी आपके लिए बैठी हैं, सुहागिनें, तेल चढ़ाने के लिए मंगलगान कर रही हैं, बारात मार्ग में है, नगर में विवाह की धूम मची हुई है, और जिनका विवाह है, वे तुम, इस प्रकार उत्तर दे रही हो। शिशुपाल, और किसके लिए बारात साज कर आवेंगे? वे तो तुम्हारे लिए ही आ रहे हैं! इसलिए उठो, देर मत करो, मंगलकार्य के समय इस प्रकार की आनाकानी अच्छी नहीं होती।

रुक्मिणी—बस सखियो, इस विषय में मुझ से कुछ और न कहो। मुझे न तो शिशुपाल के साथ विवाह ही करना है, न तेल ही चढ़वाना है। मेरा विवाह जिसके साथ होना था, उसके साथ हो चुका, अब दूसरे के साथ कदापि नहीं हो सकता तुम जा कर माता से भी ऐसा ही कह दो।

सखियाँ—बहन रुक्मिणी, तुम यह क्या कह रही हो,

जरा विचारो। बड़े पुण्य-व्रत के फलस्वरूप ही शिशुपाल ऐसा वीर, पराक्रमी, वैभवशाली और सुन्दर पति प्राप्त हो सकता है। तुम्हे, ऐसे पति की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन तुम्हारी बातों से जान पड़ता है कि तुम्हारे भाग्य मे कुछ और ही बदा है, इसी से तुम इस प्राप्त सुअवसर को ठुकरा रही हो।

रुक्मिणी—सखियो, तुम लोगो का अधिक वाद-विवाद में पड़ना ठीक नहीं। मेरा विवाह, कृष्ण के साथ हो चुका। अब इस जन्म में तो मेरा विवाह किसी दूसरे के साथ नहीं हो सकता। मेरा भाग्य कैसा है, इसे मैं ही जानती हूँ, मेरे भाग्य की बात तुम लोग नहीं जान सकती।

रुक्मिणी की सखियाँ, निराश हो कर लौट गईं। उन्होंने, रुक्मिणी का उत्तर रुक्मिणी की माता को सुना कर कहा, कि रुक्मिणी, कृष्ण को अपना पति बना चुकी है, इसलिए अब वह शिशुपाल के साथ विवाह करने को तयार नहीं है, न वह, तेल चढ़वाने के लिए ही आती है। रुक्मिणी की सखियों द्वारा, रुक्मिणी का उत्तर सुन कर, रुक्मिणी की माता को बहुत दुःख हुआ। उसने, एकत्रित सुहागिनो को यह कह कर बिदा कर दिया, कि रुक्मिणी का स्वास्थ्य कुछ अच्छा नहीं है, इसलिए आज रुक्मिणी को तेल न चढ़ाया जा सकेगा।

रुक्मिणी की माता के हृदय में, रुक्मिणी के उत्तर से

बहुत चिन्ता हो गई। उसे इस बात की आशंका ने कंपा दिया, कि यदि रुक्मिणी ने अपना विचार न बदला, तो क्या परिणाम होगा ! मैंने पति की बात से असहमत होकर, पुत्र की बात का समर्थन किया, परन्तु यह क्या पता था, कि पुत्री के हृदय में कुछ और ही है। यदि रुक्मिणी, अपने विचार पर दृढ़ रही, तो और जो कुछ होगा वह तो होगा ही, लेकिन मैं पति को मुँह दिखाने योग्य न रहूँगी। इस प्रकार भविष्य की चिन्ता में व्याकुल रुक्मिणी की माता, रुक्मिणी के पास आई। उसने देखा कि रुक्मिणी, विचारमग्ना बनी बैठी है। वह, प्यार जताती हुई रुक्मिणी से कहने लगी—पुत्री, तुझे क्या हुआ है ? कहीं, विवाह जैसे शुभ कार्य के मुहूर्त्त-समय में भी इस प्रकार उदास हो कर बैठा जाता है ? सारे नगर में तो आनन्द हो रहा है, सब लोग हर्षित हैं और तू इस प्रकार उदास है। मैं तेरी अशुभचिन्तिका तो हूँ नहीं, न तेरा भाई रुक्म ही अशुभचिन्तक है। हमने, तेरे सुख के लिए विरोध सहा, और शिशुपाल ऐसे पुरुष के साथ तेरा विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया, फिर तू क्या विचार कर इस तरह रूठी बैठी है ? आज, सारे संसार में ढूंढने पर भी, शिशुपाल ऐसा पुरुष नहीं मिल सकता। वे, सुन्दर हैं, युवक हैं, बलवान हैं, वीर हैं, राज्यवैभवसम्पन्न है, ९९ राजा उनके अधीन हैं और महाराजा जरासन्ध, उनसे मित्रता

रखते हैं। ऐसा पुरुष कोई साधारण पुरुष है ? ऐसे पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा, कौन मूर्ख-कन्या न रखेगी ! ऐसा पति, किसके भाग्य में बदा है ! अनेक राजकुमारियाँ, उनसे अपना पाणि-ग्रहण करने की प्रार्थना करती है, फिर भी उन्हे वह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, जो सौभाग्य, रुक्म की कृपा से तुझे बिना श्रम के ही प्राप्त हो रहा है। शिशुपाल, तेरे साथ विवाह करना कदापि स्वीकार न करते, यदि रुक्म की उनसे मित्रता न होती। रुक्म से मित्रता का सम्बन्ध होने से ही, उनने यह विवाह स्वीकार किया है। तुझे, रुक्म का अत्यन्त आभार मानना चाहिये, लेकिन तूने सखियों को जो उत्तर दिया, उससे तो जान पड़ता है, कि तू रुक्म के सम्मान और परिश्रम को मिट्टी मे मिलाना चाहती है। क्या तुझे ऐसा करना उचित है ? उठ चल, इस शुभ मुहूर्त्त में सुहागिनो से तेल चढ़वाले। तू नहीं आई, इससे मैंने सुहागिनो को विदा कर दिया है, परन्तु कोई हर्ज नहीं, मैं उन्हे अभी बुलवाये लेती हूँ।

रुक्मिणी की माता तो समझ रही थी कि मेरी बातो का रुक्मिणी के हृदय पर अनुकूल प्रभाव पड़ रहा होगा, परन्तु रुक्मिणी को, माता की बातें शूल की तरह चुभ रही थीं। वह सोच रही थी, कि यदि माता, ऐसी बातें न कहे, तो अच्छा। माता की बात समाप्त होने पर, रुक्मिणी कहने लगी—माता, मेरा विवाह

हो चुका, अब मेरा विवाह नहीं हो सकता। आर्यपुत्री का विवाह, एक ही बार होता है, एक बार से अधिक नहीं होता। मैं, शिशुपाल की निन्दा नहीं करती। वह, जैसा आप कहती हैं, वैसा ही होगा, परन्तु मेरे लिए तो वह किसी काम का नहीं है। मैंने जिसे अपना पति बनाया है, उससे बढ़कर सुन्दर, वीर, पराक्रमी तथा ऋद्धि-समृद्ध कोई पुरुष है ही नहीं और कदाचित हो भी, तो मैं ऐसा मानने को तयार नहीं। खेद की बात तो यह है, कि आप, माता होकर और मेरा उत्तर सुन कर भी, मुझ से शिशुपाल के साथ विवाह करने का आग्रह कर रही है। आश्चर्य है, कि आप अपनी पुत्री को व्यभिचार सिखाना चाहती हैं। आप, भाई के लिए कहती हैं, कि भाई ने मेरे ऊपर उपकार किया है, परन्तु मैं ऐसा नहीं समझती। भाई ने अपना स्वार्थ देखा है, मुझ पर कृपा नहीं की है। भाई को उचित तो यह था, कि वह एक दम से पिता की बात का विरोध न करके मेरी इच्छा जानने की चेष्टा करता, परन्तु उसने, स्वार्थ और हठ के वश होकर मेरी इच्छा के विरुद्ध, दूसरे के यहाँ टीका भेज दिया। ऐसी दशा में, भाई का मुझ पर क्या उपकार है? आपने भी तो, मेरे साथ होने वाले अन्याय का प्रतिकार करने के बदले, और भाई का साथ दिया है! अब आप मुझ से भाई की ओर अपनी बात रखने को कहती हैं,

परन्तु मुझसे यह कैसे हो सकता है, कि आपकी बात रखने के लिए मैं, धर्म और अपने जीवन को नष्ट कर डालूँ! इस भव में तो मुझ से आपकी इच्छानुसार कार्य न होगा। मैं, अपना यह शरीर अग्नि को तो अर्पण कर सकती हूँ, परन्तु श्रीकृष्ण के सिवा दूसरे पुरुष को अर्पण नहीं कर सकती। आप चाहे मेरी निन्दा करें या प्रशंसा, मैं उस मार्ग को कदापि नहीं त्याग सकती, जो धर्म तथा न्याय द्वारा अनुमोदित एवं अनेक आर्य-कन्याओं द्वारा आचरित है और जिस पर मुझे विश्वास है। आप, शिशुपाल को सूचित कर दीजिये, कि यदि वह मुझे पाने की आशा से आया है, तो चुपचाप लौट जावे। उसे, मैं तो क्या, मेरी छाया भी नहीं मिल सकती।

रुक्मिणी को जो कुछ कहना था, वह उसने माता से स्पष्ट कह दिया लेकिन माता रुक्मिणी के उत्तर में तर्क वितर्क करके रुक्मिणी को समझाने की फिर चेष्टा करने लगी। वह कहने लगी—पुत्री, मैं तुझे दूसरा पति बनाने का कब कह रही हूँ और ऐसा कह भी कैसे सकती हूँ! अभी तेरा विवाह कब हुआ है, जो तू कहती है, कि मेरा विवाह हो चुका?

रुक्मिणी—माता, विवाह का अर्थ है अपनेआप को किसी के समर्पण करना। मैं, अपनेआप को श्रीकृष्ण के समर्पण कर चुकी हूँ और जब मैं श्रीकृष्ण को समर्पित हो चुकी, तब

आपका कहना मान कर अपनेआप को दूसरे के समर्पण करना दूसरा विवाह नहीं है तो क्या है ?

माता—तू और कृष्ण के समर्पण ! बेटी, कुछ विचार तो कर, कि कहाँ तू और कहाँ कृष्ण ! तू क्षत्रिय-कन्या है और उस के तो माता पिता का भी पता नहीं है ! तू सुन्दरी है, वह कुरूप है । तू गोरी है, वह काला है ! तेरा और उसका जोड़, किसी भी तरह नहीं जुड़ता । कोई तेरा यह विचार सुनेगा, तो क्या कहेगा !

रुक्मिणी—कोई कुछ भी कहे, मेरे लिए तो श्रीकृष्ण ही पति हैं। आप, उनके कुल रूप आदि के विषय में जो कुछ कहती हैं, वह ठीक नहीं है । इस विषय की सब बातें, मुझे नारदजी से मालूम, हो चुकी हैं । कदाचित आपका कथन ठीक भी हो, तब भी, प्रेम न तो जात-पाँत देखता है, न सुन्दर असुन्दर । प्रेमी को तो वही प्रिय लगता है, जिससे वह प्रेम करता है । इसके सिवा, शरीर का काला गोरा रंग, मनुष्य की अच्छाई बुराई का कारण भी नहीं हो सकता । न तो सब काले आदमी बुरे ही होते हैं, न सब गोरे आदमी अच्छे ही होते हैं । बल्कि, कहीं कहीं गोरे की अपेक्षा काले का महत्व है । आँख की पुतलियाँ, यदि काली न हों—सफेद हों—तो अन्धा बनना पड़ेगा । सिर के केश, यदि काले से उज्ज्वल हो जावें, तो अशक्तता के पंजे में फँसना पड़ेगा । काली कस्तूरी को सभी

चाहते हैं, लेकिन सफ़ेद संखिया को केवल मरने की इच्छा करने वाला ही चाहता है। कृष्ण यदि काले हैं, तो मेरे लिए हैं, दूसरे को इसकी व्यर्थ चिन्ता क्यों ?

माता—यदि ऐसा ही था, तो तुझे पहले ही कह देना चाहिए था। अब, जब कि बारात आ रही है, तेरा यह ढंग कैसे ठीक है ? यदि तू ऐसी हठ पकड़ कर बैठ जावेगी, तो इसका परिणाम क्या होगा, यह तो विचार !

रुक्मिणी—माता, मुझसे किसी ने पूछा ही कब था, जो मैंने नहीं कहा ? मुझसे बिना पूछे, चुपचाप छिपा कर टीका भेज दिया और अब कहती हो, कि पहले क्यों नहीं कहा ? बल्कि टीका चढ़ जाने के बाद जब मेरी सखियों ने मुझे टीका चढ जाने का समाचार सुनाया था, तब मैंने उसी समय मेरे ये विचार प्रकट कर दिये थे जो आपको मालूम भी हो गये थे। फिर भी आपने इस विषय में कोई विशेष विचार नहीं किया और अब मेरे सिर दोष रखती हो ! रही परिणाम की बात, परन्तु मुझे परिणाम का किंचित् भी भय नहीं है। मुझे शरण देने के लिए, मृत्यु मेरे समीप ही खड़ी रहती है, फिर मैं परिणाम का भय क्यों करूँ ? परिणाम का भय तो उसे हो सकता है, जो मरने से डरती हो। मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि यह शरीर यों तो कृष्ण के अर्पण है, परन्तु यदि उन्होंने इसे स्वीकार न किया और किसी

दूसरे ने इस पर अपना अधिकार जमाना चाहा, तो फिर मैं यह शरीर,अग्नि के समर्पण कर दूँगी, लेकिन जीवित रहती तो इस पर दूसरे का अधिकार न होने दूँगी।

रुक्मिणी की माता को, रुक्मिणी के उत्तर से बहुत निराशा हुई। उसने विचार किया कि अभी रुक्मिणी उद्विग्न है, इसलिए इस समय इससे अधिक बातचीत करना ठीक नहीं। इसे, शान्त होने देना अच्छा है। इस प्रकार विचार कर वह, वहाँ से यह कहती हुई चली, कि 'रुक्मिणी मेरी बात का उल्लंघन करेगी, यह आशा मुझे स्वप्न में भी न थी।' रुक्मिणी ने भी, वहाँ से जाती हुई माता को, उसकी बात के उत्तर मे यह सुना दिया, कि 'मुझे मेरा जीवनसाथी चुनने के अधिकार से वंचित कर दिया जायेगा, यह आशंका मुझे स्वप्न में भी न थी।'

रुक्मिणी के पास मे जाकर, रुक्मिणी की माता विचारने लगी, कि रुक्मिणी को समझाने के लिए क्या उपाय किया जाये। दूसरे दिन, उसने रुक्म की स्त्री को रुक्मिणी के पास रुक्मिणी को समझाने के लिए भेजा। रुक्मिणी की भावज ने भी, हँसी-दिल्लगी करती हुई रुक्मिणी को खूब समझाया, परन्तु किसी प्रकार सफलता न मिली। उसे भी, निराश ही लौटना पड़ा। रुक्मिणी की माता ने, विवश होकर सब हाल रुक्म से कहा। रुक्म ने विचार किया, कि इस समय रुक्मिणी को समझाना ठीक

न होगा। अभी तो वारात की अगवानी करनी चाहिए। सम्भव है, कि वारात आ जाने पर शिशुपाल और वारात को देखकर रुक्मिणी का हृदय पल्टे। वारात और शिशुपाल को देखकर भी यदि रुक्मिणी ने अपना विचार न वदला, तो फिर मैं समझाऊँगा और यदि मेरे समझाने पर भी न समझी, तव वल-प्रयोग करूँगा। इस प्रकार विचार कर, रुक्म ने अपनी माता से रुक्मिणी को फिर समझाने के लिए कहा और आप वारात की अगवानी के लिए तयारी कराने लगा।

शिशुपाल की वारात, चन्देरी से कुण्डिनपुर के लिए चली। ज्योतिषी, भावज, नारद और पत्नी ने तो शिशुपाल को कुण्डिनपुर जाने से रोका ही था. मार्ग में प्रकृति ने भी अपशकुनों द्वारा कुण्डिनपुर जाने का निषेध किया। परन्तु शिशुपाल जव नारद ऐसे महर्षि की वात भी ठुकरा चुका था, तव वह, वेचारे अपशकुनो को कव माननेवाला था! अनेक और भयङ्कर अपशकुनो की अवहेलना करता हुआ शिशुपाल, वारात सहित कुण्डिनपुर के समीप पहुँचा। मार्ग में, उसकी सुन्दर वारात देखकर दर्शकगण, खूव प्रशसा करते थे, परन्तु उन्हे क्या पता, कि इस वारात का भविष्य वुरा है और इस वारात का दूल्हा हठपूर्वक एक कन्या से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के लिए जा रहा है, इसलिए

जब यह परास्त होकर लौटेगा, तब सब बात मालूम होने पर हमें इसकी निन्दा भी करनी पड़ेगी।

इधर रुक्म ने जब सुना कि अब बारात कुण्डिनपुर से थोड़ी ही दूर पर है, तब वह भी बड़ी सजधज के साथ बारात की अगवानी करने के लिए चला। उसके साथ को सेना, सजे हुए हाथी घोड़े और पुरजन परिजन का देख कर यही अनुमान होता था, कि यह भी एक दूसरी बारात है, जो चन्देरी से आने वाली बारात से संगम 'करने जा रही है। कुण्डिनपुर के समीप—चन्देरी और कुण्डिनपुर के मार्ग मे—शिशुपाल और रुक्म का सम्मिलन हुआ। रुक्म के साथियो ने, शिशुपाल की बारात के लोगों का खूब आदर सत्कार किया। रुक्म और शिशुपाल भी मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। रुक्म कहने लगा, कि इस अवसर पर आपने पधार कर मुझ पर बडा उपकार किया है। यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है, कि मेरे पत्र का सम्मान करके आपने यहाँ पधारने का कष्ट किया। मेरे पत्र का सम्मान करके आपने मेरी भी प्रतिष्ठा बचाई और क्षत्रियकुल की भी प्रतिष्ठा बचाई। पिता से मेरा मत भेद हो गया था। वे, बहन का विवाह उस ग्वाले के साथ करना चाहते थे, परन्तु मैं यह कैसे होने दे सकता था। यदि ऐसा हो जाता, तो क्षत्रियों की नाक कट जाती'। मैंने, पिता की बात का विरोध तो किया था, पर-

न्तु यदि आप मेरी बात न मानते, तो मेरा वह विरोध भी निरर्थक ही होता। आज मैं अपने को धन्य मान रहा हूँ। आपने, पूरी तरह मित्रता निभाई और पधार कर मेरा घर पवित्र किया; नहीं तो कहाँ आप और कहाँ मैं तुच्छ! मेरे यहाँ आप पधारें, यह सद्भाग्य कहाँ!

इस प्रकार रुक्म ने, शिशुपाल की खूब प्रशंसा की। अपनी प्रशंसा सुनसुन कर शिशुपाल, प्रसन्न हो रहा था। रुक्म द्वारा की गई प्रशंसा के उत्तर मे, वह भी रुक्म की प्रशंसा करने लगा। वह भी कहने लगा, कि—आप, क्षत्रियकुल-भूषण हैं। आपने, इस समय क्षत्रियजाति को कलंकित होने से बचाया है और वह भी विरोधों को सह कर! आपके बुलाने से आकर मैंने कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं किया है। मेरे लिए आप तो इतना विरोध सहें और मैं इतना भी न करूँ! फिर मित्रता का परिचय देने का समय ही कौनसा होता? आपने जिस कार्य का पक्ष लिया, उसमे सहायता करना मेरा साधारण कर्त्तव्य है, ऐसा विचार कर ही मैंने—विवाह करने की आवश्यकता न होने पर भी—आपका भेजा हुआ टीका स्वीकार कर लिया।

रुक्म तथा शिशुपाल, परस्पर प्रशंसा करते हुए कुण्डिनपुर आये। बारात तथा अगवानी के लिए रुक्म के साथ गये हुए

लोग भी कुण्डिनपुर आये। कुण्डिनपुर के नर नारी, बारात देखने के लिए उमड़े पड़ते थे। राजपरिवार की स्त्रियाँ भी, महल की छत पर से बारात देख कर बारात की प्रशंसा कर रही थीं और रुक्मिणी के भाग्य को सराह रही थीं; परन्तु रुक्मिणी, अपने महल में उदास बैठी थी। उसे, किंचित् भी प्रसन्नता न थी। रुक्म ने, सुन्दर सजे हुए महल में शिशुपाल को उतारा। शिशुपाल के साथ के राजा आदि को भी, रुक्म ने योग्य स्थान पर उतारा और खान पान आदि की समुचित व्यवस्था करके स्थान-स्थान पर अपनी ओर से सेवक नियुक्त कर दिये। रुक्म के सुप्रबन्ध से, शिशुपाल और उसकी बारात को बहुत सन्तोष हुआ।

शिशुपाल, रुक्म के सद्व्यवहार और उसकी नम्रता की बार-बार सराहना करता था। वह कहता था, कि अच्छा हुआ, जो मैंने ज्योतिषी, भावज या नारद की बात नहीं मानी। यदि उनकी बात मान कर, मैं कुण्डिनपुर न आता, तो मुझे ऐसा सम्बन्धी कैसे मिलता! उस दशा में तो मैं ऐसे श्रेष्ठ सम्बन्ध से वंचित ही न रहता, अपितु रुक्म को अपना शत्रु बना लेता और एक क्षत्रियकन्या का ग्वाले के हाथ पड़ने का कारण भी बनता!

रुक्म और शिशुपाल में, फिर बातें होने लगीं। रुक्म

चेष्टा न करता, किन्तु घर लौट जाता। लेकिन धर्म और नीति को तो वह पहले ही पददलित कर चुका था। वह, चन्देरी में ही रुक्मिणी की असहमति जान चुका था, यदि उसे रुकना होता, तो वही रुक जाता। परन्तु उसने स्त्रियो को अपने भोग की सामग्री मान रखी थी, और इस कारण वह, स्त्रियो की इच्छा की अपेक्षा करना उसीप्रकार अनावश्यक समझता था, जिस प्रकार मांसाहारी लोग, पशु-पक्षी की इच्छा की अपेक्षा नहीं करते।

रुक्म की बात के उत्तर में, शिशुपालने पूछा—आपकी बहन ने अभी तेल नहीं चढवाया है?

रुक्म—हॉ। जान पड़ता है, कि वह पिताजी के बहकाने में लग कर ही उस ग्वाल को चाहती है।

शिशुपाल—मैं आपके कथनानुसार बारात का जुलूस तो निकालूँगा ही, परन्तु यदि इस कार्य का कोई यथेष्ट परिणाम न निकला तो?

रुक्म—न निकले। फिर बलप्रयोग का उपाय तो है ही। एक कन्या की ताकत ही क्या है। मैंने आपको व्यर्थ ही नहीं बुलाया है, न आप ही व्यर्थ को बारात साज कर आये हैं। परन्तु कोई कार्य जब तक सुगम उपाय से हो जावे, तब तक उसके लिए किसी कठिन उपाय का अवलम्बन लेना अनुचित है।

शिशुपाल—हाँ ठीक है। अच्छा, अब मैं जुलूस की तयारी कराता हूँ।

'हाँ आप तयारी कराइये' कह कर रुक्म, शिशुपाल के पास से अपने घर आया। उसके मन में 'रुक्मिणी को किस प्रकार समझाया जावे!' यह समस्या उथल-पुथल मचा रही थी। उसने, जाकर अपनी माता से कहा, कि अभी अपने महल के नीचे से वर सहित बारात निकलेगी। आप रुक्मिणी को, गोखड़े से वर का दर्शन करावें और बारात दिखावें। शायद वर और बारात देख कर, रुक्मिणी का विचार पलटे। रुक्म की माता ने, रुक्म के कथनानुसार कार्य करना स्वीकार कर लिया।

उधर रुक्मिणी के हृदय में, अपार चिन्ता हो रही थी। उसे विचार हो रहा था, कि मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कैसे होगी! पापी शिशुपाल, बारात लेकर आगया है. भाई और माता, उसके, साथ बलात् मेरा विवाह करने को उतारू हैं, और मैं अकेली असहाया तथा अबला हूँ। यद्यपि मैंने जिन्हे अपना पति माना है, उन श्रीकृष्ण को मेरी रक्षा करनी चाहिए, परन्तु वे, द्वारका में बैठे हैं। मेरे प्रेम की और मुझ पर आई हुई विपत्ति की उन्हे खबर भी है, या नहीं, यह भी नहीं मालूम। नारद, मेरे में कृष्ण के प्रति प्रेम तो उत्पन्न कर गये, परन्तु फिर

उन्होंने भी मेरी खबर नहीं ली। क्या जाने क्या होना है! मैं, इसी शरीर में कृष्ण से मिल सकूँगी, या मुझे अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए यह शरीर त्यागना पड़ेगा। हे नाथ, हे द्वारकाधीश क्या आप मेरी रक्षा न करेंगे! क्या मैं इस शरीर मे रहती हुई, आपका दर्शन न कर सकूँगी।

इस प्रकार विचारती हुई रुक्मिणी, अपनी आँखों से आँसू की बूँदें टपकाने लगी। उसे धैर्य देनेवाला भी कोई न था। केवल उसकी एक भुआ ही सहायिका थी, परन्तु वह भी, रुक्म के भय से, प्रकट मे रुक्मिणी की कोई सहायता न कर पाती थी। फिर भी, समय समय पर वह, रुक्मिणी को धैर्य बंधाया करती। रुक्मिणी की मर्मपीड़ा सुनने समझने वाली, केवल भुआ ही थी। इस वार भी वह, रुक्मिणी को समझाने लगी। वह कहने लगी—रुक्मिणी, तू इस प्रकार क्यों घबराती है! जरा धैर्य तो रख! अभी तो विवाह के कई दिन वाकी हैं। इतने समय में क्या नहीं हो सकता और क्या हो जावेगा, यह कौन जानता है। तेरा कृष्ण-प्रेम यदि सच्चा है, तो वह, कृष्ण को आकर्षित किये बिना कदापि नहीं रह सकता। तू, यह मत समझ कि वे दूर हैं; इसलिए मेरी सहायता न कर सकेंगे। उनका गरुड़ध्वज रथ, वात की वात में उन्हे कहीं से कहीं पहुँचा सकता है। उन्हें, तेरे प्रेम और तेरी प्रतिज्ञा की खबर न हो, यह भी

नहीं हो सकता। नारद ने, केवल तेरे में ही कृष्ण-प्रेम उत्पन्न नहीं किया है, किन्तु अवश्य ही कृष्ण में भी तेरे प्रति प्रेम उत्पन्न किया होगा। शिशुपाल बारात लेकर आवेगा, यह भी वे जानते होंगे। उनसे कोई बात छिपी न होगी। ऐसा होते हुए भी वे अब तक क्यों नहीं आये, या उनकी ओर से किसी प्रकार का सन्देश भी क्यों नहीं आया, यह मैं नहीं कह सकती। सच्ची बात तो यह है, कि तेरी ओर से भी तो उनके पास किसी प्रकार का सन्देश नहीं पहुँचा है। तेरे प्रेम को जानते हुए भी, तेरी ओर के सन्देश के बिना, व्यवहार की पूर्त्ति नहीं होती और वे महापुरुष, लोक-व्यवहार की अवहेलना कैसे कर सकते हैं। इसलिए मैं समझती हूँ कि तेरी ओर से कृष्ण के पास प्रेम-प्रार्थना जानी चाहिए।

भुआ के आश्वासन से, रुक्मिणी को कुछ धैर्य हुआ। वह, भुआ की अन्तिम बात पर विचार करने लगी। इतने ही में, शिशुपाल की बारात धूमधाम से राजमहल के पास आई। बारात के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सुसज्जित थे और व्यवस्थित रूप से क्रमवार चल रहे थे। शिशुपाल, एक खूब सजे हुए हाथी पर बैठा था। उसके ऊपर, छत्र लगा हुआ था और चवँर ढुल रहे थे।

राज परिवार की स्त्रियाँ तथा नगर की स्त्रियाँ, छतों पर

चढ़ कर बारात देखने लगीं, और बारात तथा शिशपाल को देख कर, रुक्मिणी के भाग्य की सराहना करने लगीं। रुक्मिणी की माता भी, बारात एवं शिशुपाल को देख कर बहुत प्रसन्न हुई। वह, रुक्म की सराहना करती हुई कहने लगी, कि रुक्म के प्रयत्न से ही यह बारात आई है और रुक्मिणी को ऐसा वर मिला है, नहीं तो, ग्वालो की बारात आती और ग्वाल ही रुक्मिणी का वर होता। उसने, रुक्मिणी की सखियों को आज्ञा दी कि रुक्मिणी को बुला लाओ, जिसमें वह भी यह सुन्दर बारात देख कर नेत्र सफल कर ले।

रुक्मिणी को माता की आज्ञा से, रुक्मिणी की सखियाँ, रुक्मिणी को बुलाने गईं। यद्यपि वे रुक्मिणी का विचार जानती थीं, फिर भी प्रयत्न करना और रुक्मिणी की माता की आज्ञा मानना, उनके लिए आवश्यक था। वे, रुक्मिणी के पास जाकर उससे कहने लगी—बहन रुक्मिणी, तू अभी तक मुर्झाई हुई ही है। कहीं चन्द्र के उदय होने पर भी, कुमुदुनी, मुर्झाई हुई रहती है। उठो, जल्दी उठो, जरा देखो तो सही, कि महल के नीचे कैसी बारात आई है। हमने तो आज तक ऐसी विशाल और अनुपम बारात न देखी है, न सुनी है। बारात के मध्य, हाथी पर विराजमान चवँर छत्र से सुशोभित महाराजा शिशुपाल को देख कर, सब लोग तुम्हारे भाग्य की सराहना कर रहे हैं

और तुम इस प्रकार उदास हो ! लो उठो, चलो, महारानीजी तुम्हें बुला रही हैं। विलम्ब मत करो, नहीं तो बारात आगे बढ़ जावेगी और फिर, भली प्रकार न देख सकोगी।

सखियों की बात के उत्तर में रुक्मिणी कहने लगी–सखियो, क्या तुम निपट ही बुद्धिहीना हो ! मैं तुम्हें अपना निश्चय सुना चुकी, फिर भी तुम इस प्रकार की बातें कर रही हो ! तुम, चन्द्र और कुमुदिनी का उदाहरण तो दे रही हो, परन्तु क्या यह नहीं समझतीं, कि चन्द्रोदय पर कुमुदिनी आप ही विकसित हो जाती है, किसी की प्रेरणा की प्रतीक्षा नहीं करती। प्रेरणा तो तभी करनी पड़ती है, जब किसी तारे को चन्द्र बता कर, उसके लिए कुमुदिनी को विकसित करने की इच्छा हो। परन्तु प्रेरणा करने पर भी, तारे के लिए कुमुदिनी विकसित नहीं होती और चन्द्र के लिए, आप ही विकसित हो जाती है। मेरा चन्द्र, अभी उदय नहीं हुआ है। जब वह उदय होगा, तब कुमुदिनी की तरह मैं भी, आप ही विकसित हो जाऊँगी, उदास न रहूँगी। तुम जाओ। मैं, कहीं न चलूँगी। यह बारात तो क्या, यदि स्वयं इन्द्र भी दूल्हा बना हुआ हो और देवता लोग उसके बाराती हों, तो मैं वह बारात भी उस दशा में कदापि न देखूँगी, जब कि वह बारात, किसी कन्या के अधिकारों का अपहरण करने के लिए सजी हो।

रुक्मिणी का उत्तर सुन कर, सखियाँ वहाँ से चली गईं। उन्होंने, पूर्व-अनुभव के कारण, रुक्मिणी से अधिक कुछ कहना उचित न समझा। रुक्मिणी ने जो उत्तर दिया था, रुक्मिणी की सखियों ने वह, रुक्मिणी की माता को जा सुनाया। रुक्मिणी की माता, दौड़ी हुई रुक्मिणी के पास आई। वह कहने लगी—रुक्मिणी, तू बड़ी हठीली हो गई है। चल, जरा देख तो सही कि कैसी निराली वारात है। उस वारात के मध्य चन्देरीराज ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, जैसे तारागण के मध्य चन्द्र। स्वर्णाभूषण से अलंकृत श्याम हाथी पर चवँर छत्र के नीचे बैठे हुए महाराजा शिशुपाल, श्याम घटा को चीर कर निकले हुए चन्द्र की ही तरह शोभा दे रहे हैं। संसार में, न तो ऐसा सुंदर दूसरा पुरुष ही है और न इस प्रकार की वारात ही किसी के यहाँ आई होगी। तूने, तेल नहीं चढ़वाया तो न सही और तुझे विवाह नहीं करना है, तो मत कर, परन्तु चल कर एक बार नेत्रों का सुख तो ले ले। वर और वारात को तो देख ले। वारात देखने के लिए लोग, दूर-दूर से आये हैं और तू यहाँ रहती हुई भी वारात देखने से क्यों वंचित रहती है? चल उठ!

माता की बातें, रुक्मिणी को बहुत ही कर्णकटु प्रतीत हो रही थीं। वह, उन बातों को अनिच्छापूर्वक सुन रही थी। माता

की बात सनाप्त होने पर. रुक्मिणी कहने लगी—माता, तुम मुझे किसका मुँह दिखाना चाहती हो? वह भी किस लिए? इसलिए कि मैं उसे पसन्द कर लूँ! उसे अपना पति बनाना स्वीकार कर लूँ। माता, तुम्हारे मुख से इस प्रकार की बातें शोभा नहीं देतीं। मैं, अपने विचार आपको पहले ही सुना चुकी हूँ। मेरे वर, श्रीकृष्ण हैं। मैं, पति रूप में तो श्रीकृष्ण को ही देखूँगी, किसी दूसरे का मुँह, पति बनाने की इच्छा से कदापि नहीं देख सकती। शिशुपाल चाहे सुन्दर हो, रत्नाभूषण पहने हो, राजाओं के साथ हो, तथा हाथी पर चढ़ कर आया हो, तब भी मैं उसका स्वागत नहीं कर सकती और कृष्ण चाहे काले भी हों, कम्बल ही ओढ़े हों, दीन दुखियों के साथ हों तथा पैदल ही हों, तब भी मैं उनका स्वागत करूंगी। उनके लिए अपनी आँखों के पाँवड़े बिछा दूँगी। उन्हें अपने हृदय-मन्दिर में ठहराऊँगी। माता, मुझे शिशुपाल से किसी प्रकार का द्वेष नहीं है। संसार में. अनेक पुरुष हैं, मैं किसी से द्वेष मान कर उसकी निन्दा करूँ भी क्यों! मैं, शिशुपाल की निन्दा न करती, परन्तु वह, मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा पति बनने के लिए आया है, एक कन्या पर अत्याचार करना चाहता है, कन्या के अधिकारों को पददलित करना चाहता है, कन्याओं को अपने भोग की वस्तु मान कर, उन्हें पशु या जड़ पदार्थ की तरह समझता

है, अपने सुख के लिए उनका जीवन नष्ट करना चाहता है, इसलिए मेरे समीप वह, धिक्कार का पात्र है। मैं उसे, कुत्ते और कौए के समान ही मानती हूँ, जो दूसरे का जूठा खाने के लिए लालायित रहता है। मेरे हृदय को श्रीकृष्ण ने जूठा कर दिया है और यह बात उसे मालूम भी हो चुकी है, फिर भी वह कुत्ते और कौए की तरह निर्लज्ज बन कर, उसे लेने के लिए आया है। लेकिन उसे यह बात विस्मृत न होनी चाहिए, कि अनेक प्रयत्न करने पर भी कौआ, राजहंसी को अपनी पत्नी बनाने में सफलता नही पा सकता। अनेक कष्टो में पड़ने पर भी, राजहंसी, अपने को कौए के समर्पण नहीं कर सकती। पतिव्रता की भी यही बात है। पतिव्रता-स्त्री भी, प्राण रहते किसी दूसरे पुरुष को पतिरूप, कदापि नहीं स्वीकार कर सकती। मैने, श्रीकृष्ण को अपना पति बना लिया है। यदि वे शरीर से न भी मिले, तो मेरे हृदय में तो बसे ही हैं। मैं, अपना जीवन उन्हीं के नाम पर व्यतीत कर दूँगी, लेकिन इस जन्म में दूसरा पति कदापि स्वीकार न करूँगी। माता, जिस मुख से अमृत पिया, उसी मुख से विष कैसे पी सकती हूँ। जिस मुख से श्रीकृष्ण को पति कहा, उसी मुख से दूसरे को पति कैसे कह सकती हूँ! एक को पति मान कर फिर दूसरे की ओर मन ललचाना, गंगा का जल तज कर, गटर का जल पीने के समान है! कौन मूर्ख, गंगा का

जल छोड़ कर गटर का जल पियेगा। जिसने गंगाजल पी लिया, उसे गटर का जल कब अच्छा लग सकता है! जो हाथी पर बैठा हुआ है, उसे गधे की सवारी कब पसन्द आ सकती है। इसी प्रकार जो श्रीकृष्ण की पत्नी बन चुकी है, उसे शिशुपाल की पत्नी बनना कब अच्छा लग सकता है। कदाचित मैंने ऐसा किया भी, अर्थात् श्रीकृष्ण को पति मानने के पश्चात् शिशुपाल को पति मान लिया, तो मेरी गणना किन स्त्रियों में होगी? क्या फिर मैं पतिव्रता रह सकती हूँ? क्या मेरा यह कृत्य एक आर्यबाला के लिए शोभनीय होगा? और फिर क्या आप, एक कुल्टा स्त्री की माता न कहलावेंगी? आप, शिशुपाल को चन्द्र के समान बताती हैं, परन्तु यह आपका भ्रम है। शिशुपाल को चन्द्र की उपमा देना, चन्द्र का अपमान करना है। वास्तव में शिशुपाल चन्द्र के समान नहीं है, किन्तु वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाले जुगनू के समान है, जो सूर्योदय से पूर्व तो खूब चमचमाते हैं, परन्तु सूर्योदय होने पर न मालूम कहाँ छिप जाते हैं। कृष्णरूपी सूर्य के सन्मुख, शिशुपाल रूपी जुगनू, निस्तेज होकर भाग जावेगा। माता, मैं किसी के रूप-लावण्य, धनवैभव या बल पराक्रम पर रीझ कर, अपना ध्येय भुलानेवाली नहीं हूँ। मैं अपनी प्रतिज्ञा से, किसी भी समय और किसी भी अवस्था में विचलित नहीं हो सकती।

कदाचित् सुमेरु भी आकर मुझ से कहे, कि मैं भी अपने स्थान से डिग जाता हूँ, इसलिए तू भी अपनी प्रतिज्ञा से डिग जा, तो मैं उससे यही कहूँगी, कि तू जड़ है और मैं, चैतन्य हूँ। तू डिग सकता है, मैं नहीं डिग सकती। गंगा और यमुना भी कहें, कि हम भी उलटी वहेंगी, तो मैं उनसे भी कह दूँगी, कि तुम चाहे उल्टी वहो, परन्तु मैं अपना वहाव नहीं वदल सकती। यदि समस्त दुःख और मृत्यु तक भी मुझे भयभीत करने आवें, तो मैं उनके आघात को प्रसन्नता-पूर्वक सह लूँगी, परन्तु अपना निश्चय न त्यागूँगी। और तो और, स्वयं श्रीकृष्ण भी आकर कहें, कि अपना निश्चय वदल दे, तो मैं उनसे भी कहूँगी, कि आप मुझे आपके द्वारा प्राप्त होने वाले सांसारिक सुखों से वंचित कर सकते हैं, परन्तु मेरे धर्म से पतित नहीं कर सकते। माता, इससे अधिक और क्या कहूँ। मुझे जो कुछ कहना था, वह कह चुकी। अव इस विषय में आपका भी मुझसे और कुछ कहना व्यर्थ है।

रुक्मिणी के उत्तर से, रुक्मिणी की माता, विलकुल ही निराश हो गई। उसका साहस, रुक्मिणी से अधिक कुछ कहने का न हुआ। उसे, अपने कार्य पर, अत्यधिक पश्चात्ताप हो रहा था। वह, रुक्मिणी के पास से ऐसी उदास होकर चली गई, जैसे गाँठ से कुछ गिर गया हो।

उधर, शिशुपाल की बारात कुछ देर तक राजमहल के सामने अपना प्रदर्शन करती रही और फिर आगे बढ़ गई। शिशुपाल, अपने हृदय में विचारता था, कि मेरी बारात को और मुझको देख कर रुक्मिणी अवश्य ही आकर्षित हुई होगी। वह क्या जाने, कि मेरा यह सब प्रदर्शन उसी प्रकार व्यर्थ हुआ, जैसे सूम के सामने भाँड़ो का नकल करना व्यर्थ होता है। बारात सहित शिशुपाल, नगर में घूम कर अपने स्थान पर आया और रुक्मिणी के विषय में किसी शुभ समाचार की उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करने लगा।

शिशुपाल और उसकी बारात को स्थान पर पहुँचाकर रुक्म, माता के महल में आया। उसको आशा थी, कि इस बार माता मुझे जाते ही यह सुनायेगी, कि रुक्मिणी ने शिशुपाल के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया है; लेकिन माता को देखते ही, उसकी यह आशा, निराशा में परिणत हो गई। माता की उदास आकृति से वह समझ गया, कि रुक्मिणी ने अपना निश्चय नहीं बदला है। रुक्म के पहुँचते ही, रुक्म की माता ने रुक्मिणी का उत्तर सुनाया। रुक्मिणी का उत्तर सुनकर, रुक्म क्षुब्ध हो उठा। वह कहने लगा, कि रुक्मिणी का साहस इतना अधिक बढ़ गया है। मैं सोचता था, कि वह सीधी तरह समझ जावे तो अच्छा है, परन्तु वह तो और अकड़ती ही जा रही है। देखता हूँ,

वह शिशुपाल के साथ कैसे विवाह नहीं करती है ! मैं, बलपूर्वक उसे शिशुपाल के साथ विवाह दूँगा !

इस प्रकार बक झक कर रुक्म, क्रोध करता हुआ माता के पास से चला गया। वह विचारने लगा, कि इस समस्या को किस तरह हल् किया जावे ! बारात आई हुई है, परन्तु जिसका विवाह है, उस पर तेल तक नहीं चढा, यह कितनी लज्जा की बात है ! मैं, अपने मित्र शिशुपाल को क्या मुँह दिखाऊँ ! उन्हों-ने तो मेरी बात स्वीकार की और मैं अपनी कही हुई बात का पालन करने मे ही असमर्थ हूँ !

रुक्म, शिशुपाल के पास आया। शिशुपाल, रुक्म का प्रतीक्षा में ही था, परन्तु वह जो परिणाम सुनने की आशा लगा-ये बैठा था, रुक्म ने उससे उल्टा परिणाम सुनाया। शिशुपाल ने रुक्म से पूछा—कहो मित्र, क्या समाचार है ? आपके अनुमान के अनुसार अब तो आपकी बहन का विचार बदल होगा और अनुकूल हुआ होगा।

रुक्म—नहीं, अभीष्ट परिणाम नहीं निकला। बहन को किसी ने इस प्रकार बँहकाया है, कि उसका ढंग ही कुछ और हो रहा है। कुछ समझ मे नहीं आता, कि उसे क्या हो गया है। मेरी समझ में तो वह नारद के बँहकाने में लगी है। दुष्ट नारद एक बार यहाँ आया था। मालूम हुआ है, कि उसी ने कृष्ण

की झूठी प्रशंसा सुना कर, रुक्मिणी को कृष्ण की ओर आकर्षित किया है ।

शिशुपाल—क्या नारद यहाँ भी आया था ? वह बड़ा ही धूर्त्त है । उसने, चन्देरी आकर मुझसे भी कहा था, कि तुम कुण्डिनपुर मत जाओ । उसने मेरे को कुण्डिनपुर जाने में बहुत भय दिखाया था, परन्तु उसकी धूर्त्तता मेरे आगे कैसे चल सकती थी । मैंने उससे उसी समय कह दिया, कि आप यह लीला कहीं और फैलावें ! उस धूर्त्त की बात मानने वाला, अपना ही सर्वनाश कर लेता है । आश्चर्य नहीं कि वह उस ग्वाले के पास भी गया हो और उससे कुछ और ही कहा हो ।

रुक्म—सम्भव है, लेकिन यदि वह ग्वाला, नारद के कहने में पड़कर कुण्डिनपुर आया, तो निश्चय ही पृथ्वी से उसका अस्तित्व उठ जावेगा । फिर भी अपने को सावधानी रखने की आवश्यकता है । कहीं उसने अपने को खबर न होने दी और महल के लोगों से मिलकर कोई षड्यन्त्र रचा, तो अपनी सेना और वीरता धरी ही रह जावेगी । वह कपटी, बड़ा ही नीच है । वह, छिपकर नगर में न आ सके, इसका प्रबन्ध करना चाहिए । मेरी समझ से, नगर के आस पास सेना का घेरा डाल दिया जावे, जिसमें कोई आदमी छिपकर बाहर से न आ सके । विवाह के दिन तक इसी प्रकार की सावधानी रखने की आवश्यकता है ।

तब तक मैं भी बहन को समझाने की चेष्टा करूँगा और यदि मेरे समझाने पर भी न मानी, तो फिर विवाह के दिन उसे बलपूर्वक आपके साथ विवाह दूँगा। अपने सामने एक लड़की का क्या साहस हो सकता है।

शिशुपाल—हाँ यह ठीक है। मैं अभी मेरी सेना को आज्ञा देता हूँ, कि वह चारों ओर से नगर को घेर ले और बिना मेरी या आपकी आज्ञा के न तो कोई नगर से बाहर जा सके न बाहर से नगर मे ही आसके।

रुक्म—महल की रक्षा के लिए मैं अपनी सेना नियुक्त कर दूँगा और महल में ऐसे गुप्तचर भी रख दूँगा जो प्रत्येक बात पर दृष्टि रखें।

शिशुपाल—यह भी ठीक है। इस ओर से सावधानी रखने की बहुत आवश्यकता है, अन्यथा कोई दुर्घटना होने पर मेरी और आपकी बड़ी हँसी होगी। संसार में, मुँह दिखाने योग्य भी न रहेगे।

शिशुपाल ने, अपनी सेना को कुण्डिनपुर घेर लेने की आज्ञा दी। उसने सैनिकों को सावधान भी कर दिया, कि कोई भी मनुष्य रुक्म या मेरी आज्ञा बिना न तो नगर में आने ही पावे, न नगर से बाहर ही जाने पावे। शिशुपाल की आज्ञानुसार सशस्त्र सेना ने, सारे नगर को घेर लिया। नगर के प्रधान

प्रधान द्वार पर, बड़े बड़े योद्धा नियुक्त कर दिये गये। नगर का आवागमन रुक गया। रुक्म ने भी, राजमहल की चारों ओर सशस्त्र सैनिक नियुक्त कर दिये और उन्हे सावधान रहने के लिए सूचित कर दिया। महल के भीतर भी अनेक गुप्तचर रख दिये, जो प्रत्येक बात का पता रखने लगे। इस प्रकार का प्रबन्ध करके शिशुपाल और रुक्म, विवाह के मुहूर्त्त वाले दिन की प्रतीक्षा करने लगे।
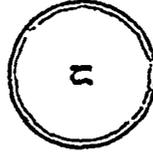
पत्र लेखन

सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किंचित् क्रियते परे ।
यत्कृतं तु पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥

अर्थात्—दूसरे के लिए किया हुआ किंचित भी सुख दुःख, अपने आत्मा में ही उत्पन्न होता है। यानी दूसरे को दिया हुआ सुख दुःख, अपने को ही प्राप्त होता है।

किसी भी प्राणी को, असहाय या असमर्थ समझ कर सताना, महान् अन्याय है। ऐसा करना, प्राप्त बल या सत्ता का दुरुपयोग करना है। बल्कि, अपने बल और अपनी सत्ता को, अपना ही नाश करने मे लगाना है। चाहे वह असहाय या निर्बल अपने पर होने वाले अन्याय का प्रत्यक्ष प्रतिकार न भी कर सके, अन्यायी को प्रतिफल न भी भुगता सके, लेकिन ऐसे निर्बल या असहाय की सहायता कोई गुप्त शक्ति अवश्य ही करती है, और वह शक्ति, उस अन्यायी को उसके अन्याय का फल अवश्य देती है। उस गुप्त शक्ति को चाहे

ईश्वरीयशक्ति कहा जाय, या कर्मशक्ति, परन्तु दीन, दु:खियो और निर्बलों पर अत्याचार करनेवाला, अपने अन्याय का प्रतिफल भोगने से कदापि नहीं बच सकता। ध्वनि से प्रतिध्वनि और आघात से प्रत्याघात का उत्पन्न होना, प्राकृतिक नियम है। फिर चाहे प्रकृति इस नियम का उपयोग शीघ्र करे या देर से, लेकिन करती अवश्य है। यही बात अन्याय और अत्याचार की भी है। दूसरे पर, अन्याय अत्याचार करने वाला थोड़ी देर के लिए अपने को चाहे बड़ा मान ले, थोड़ी देर के लिए चाहे अभिमान करले और थोड़ी देर के लिए अपने को भले सुखी समझ ले, लेकिन जब उसे अपने द्वारा किये गये अन्याय का प्रतिफल भोगना पड़ता है, तब उसका बड़प्पन, अभिमान और सुख स्वप्न—सम्पदा के समान विलीन हो जाता है। फिर वह अपने को महान् कष्ट में अनुभव करता है। उसके पश्चात्ताप की सीमा नहीं रहती।

संसार में, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ, अधिक निर्बल मानी जाती हैं। स्त्रियों ने चाहे स्वयं ही अपने आपको निर्बल बना रखा हो, या वे वास्तव में निर्बल ही हो, परन्तु उनकी गणना है निर्बलों में ही। इसीसे वे, अबला कही जाती हैं। निर्बल होने के कारण स्त्रियाँ, पुरुषों के लिए दया-पात्र मानी जानी चाहियें, लेकिन अनेक दुष्ट दुराचारी पुरुष, अबला मानी जाने वाली स्त्रियों पर अत्याचार करने में ही अपना पुरुषत्व मानते है। वे, इस

बातें को तो भूल ही जाते हैं, कि हम इन स्त्रियों पर जो अन्याय कर रहे हैं, उसका प्रतिफल हमें इस जन्म में, या अगले जन्म में अवश्य भोगना पड़ेगा। स्त्रियाँ, अपनी सहिष्णुता और क्षमा का परिचय देकर, पुरुषों द्वारा होने वाले अन्याय को सहती क्या हैं, वे, पुरुषों के अन्याय के प्रतिफल को भयंकर बना देती हैं। चींटी से लेकर हाथी तक किसी भी जीव को सतानेवाला, अवश्य सताया जाता है, तो जो विनम्र अबला, और जीवन भर अधीन रहनेवाली स्त्रियों पर अत्याचार करता है, वह इस नियम से कैसे बच सकता है! रावण ने, सीता पर अत्याचार किया था तो वह परिवार सहित नष्ट हो गया। दुर्योधन ने, द्रौपदी को सताया था, तो उसे भी रावण की ही भाँति नष्ट होना पड़ा। कंस ने देवकी को कष्ट दिया था, तो उसे भी ऐसा ही परिणाम भोगना पड़ा। रुक्मिणी पर भी, शिशुपाल अत्याचार करने को उतारू हुआ है। रुक्म भी, रुक्मिणी के कन्योचित अधिकारों को पददलित करके उसे शिशुपाल के साथ बलात् विवाह देने को तयार हुआ है; लेकिन सत्य पर दृढ़ रहनेवाली रुक्मिणी की भी कोई न कोई गुप्त-शक्ति अवश्य सहायता करेगी और शिशुपाल तथा रुक्म को, उनके दुष्कृत्य का फल भी अवश्य भोगना पड़ेगा।

अपनी माता के सामने रुक्म जो कुछ कह गया था, वह सब

रुक्मिणी ने भी सुना। साथ ही उसे यह भी मालूम हुआ, कि नगर और महल के आस पास सैनिक पहरा लगा हुआ है। नगर का आवागमन भी बन्द हो गया है। इन सब समाचारो को सुनकर, रुक्मिणी की चिन्ता बढती जा रही थी। उसका हृदय, धैर्य नहीं रखता था। वह विचारती थी, कि यदि दुष्ट भाई बलात् मेरा विवाह शिशुपाल के साथ करने लगा, तो मैं, प्राणनाश के सिवा और क्या कर सकूँगी! ऐसी दशा मे मैं, इस शरीर में रहती हुई तो कृष्ण का दर्शन कैसे कर सकती हूँ! अब तो कृष्ण का दर्शन होने की कोई आशा भी नहीं रही। क्योंकि एक तो कृष्ण दूर हैं। दूसरे, मैं उनके पास अपनी प्रार्थना भेजूँ भी, तो किसके द्वारा! मेरी प्रार्थना, कौन ले जावेगा। कौन मेरा सहायक है! भुआ के सिवा दूसरा कोई आश्वासन देनेवाला तक तो है नहीं, फिर प्रार्थना ले जानेवाला कौन हो सकता है। भुआ मेरी सहायिका अवश्य हैं, परन्तु मेरी ही तरह वे भी तो विवश हैं! कदाचित भुआ के प्रयत्न से किसी ने मेरी प्रार्थना द्वारकानाथ के पास पहुँचाना स्वीकार भी कर लिया, तब भी वह नगर से बाहर ही कैसे निकल सकता है। विवाह का दिन भी समीप ही है। इतने अल्प समय मे, कैसे तो प्रार्थना पहुँच सकती है और कैसे श्रीकृष्ण आ सकते है। मेरे लिए अब, प्राण-त्याग के सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं है। दुष्ट शिशुपाल को

भी, यह-विचार नहीं होता, कि मैं अपने को वीर मानता हूँ, तो एक कन्या पर अपनी वीरता क्या दिखलाऊँ ! भाई तो मुझे शिशुपाल के साथ बल-पूर्वक विवाह देने के लिए तयार ही है और माता भी उसी के पक्ष मे हैं। पिता, कृष्ण के साथ मेरा विवाह होने के समर्थक होते हुए भी, दुष्ट पुत्र से अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए तटस्थ है। कन्या को, माता, पिता और भाई का ही बल होता है, परन्तु मेरे लिए इनमें कोई भी अनुकूल नहीं है। ऐसी दशा में, प्राणत्याग के बिना मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कदापि नहीं हो सकती।

इस प्रकार रुक्मिणी, घोर चिन्ता सागर में डूब रही थी। उसे, कहीं किनारा नही दिखाता था, न किनारे पर पहुँचने का कोई साधन ही दृष्टि आता था। वह, चुपचाप बैठी हुई, आँखों से आँसू गिरा रही थी। चिन्ता-मग्न रुक्मिणी की आँखो की पलकें भी नियमित रूप से नहीं गिरती थीं। वह, आँसू गिराती हुई, पृथ्वी की ही ओर एकटक देख रही थी। जैसे वह अपने आँसुओं से पृथ्वी को तृप्त करके उससे कह रही हो, कि—हे पृथ्वी, तू सब को आधार देने वाली है, अत. मुझ निराधार को अपने मे स्थान दे! मुझे आश्रय देनेवाला, तेरे सिवा और कोई नहीं है।

रुक्मिणी, चिन्तासागर मे गोते लगा रही थी, इतने ही में

उसकी भुआ आ गई। रुक्मिणी को घोर चिन्ता में देख कर, भुआ कहने लगी—रुक्मिणी, तू व्यर्थ ही क्यों चिन्ता करती है। अभी तो विवाह के दिन मे पर्याप्त विलम्ब है। इतने मे तो कुछ का कुछ हो सकता है।

रुक्मिणी—हाँ भुआ यह तो ठीक है, परन्तु हृदय तो धैर्य नहीं धरता! ऐसा कोई कारण भी नहीं है, कि जिससे हृदय को कुछ सन्तोष हो। सब ओर निराशा ही निराशा दिखती है। विवाह का दिन तो अवश्य दूर है, परन्तु इतना दूर भी नहीं है, कि कोई द्वारका जाकर फिर लौट आवे। आप मुझसे श्र कृष्ण के पास प्रेम-प्रार्थना भेजने का कहती थीं, परन्तु अब तो यह मार्ग भी बन्द हो गया। पहले तो प्रार्थना ले ही कौन जावे! कदाचित कोई ले जाने को तयार भी हो, तो अब तो महल और नगर के चारों ओर सेना पड़ी हुई है। न तो कोई बाहर से आ ही सकता है, न बाहर जा ही सकता है। ऐसी दशा में, किस आधार पर धैर्य रखूँ।

भुआ—रुक्मिणी, सत्य और सच्चे प्रेम मे बड़ी शक्ति होती है। वह शक्ति, क्या नहीं कर सकती! तू विश्वास तो रख! सत्य, न मालूम किसके हृदय में कैसी प्रेरणा करता है और सब मार्ग बन्द होने पर भी, न मालूम किस ओर मार्ग कर सकता है! तू मेरी बात मान कर, कृष्ण को प्रार्थनापत्र तो लिख! मेरा

विश्वास है, तेरा प्रार्थनापत्र किसी भी तरह कृष्ण के पास पहुँच जावेगा और कृष्ण, ठीक समय पर आकर तेरी रक्षा करेंगे।

रुक्मिणी—आपकी आज्ञानुसार मैं, रात को एकान्त में बैठ कर पत्र लिखूँगी, दिन में तो मेरे आस पास कोई न कोई बना ही रहता है।

'ठीक है, रात को लिखना, परन्तु चिन्ता छोड़ दे।' कह कर भुआ, रुक्मिणी के पास से चली गई। रुक्मिणी, सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगी, परन्तु उसके लिए उस दिन सूर्य भी निश्चल-सा हो गया था। अर्थात् रुक्मिणी के लिए, शेष दिन बड़ी कठिनाई से बीता। रात होने पर रुक्मिणी, कृष्ण को पत्र लिखने बैठी।

कलम, दावात और कागज लेकर रुक्मिणी, श्रीकृष्ण को पत्र लिखने के लिए उद्यत हुई, परन्तु क्या लिखूँ ? यह निश्चय न कर सकी। चिन्ता से अस्थिर हृदय, किसी निश्चय पर नहीं पहुँचने देता था। रुक्मिणी ने, बड़ी कठिनाई से हृदय स्थिर किया और वह श्रीकृष्ण को पत्र लिखने लगी। वह, कलम से तो पत्र लिखती थी और आँखों से पत्र पर आँसू डालती थी। जैसे, पत्र पर आँसू रूपी केसर के छींटे छिटक कर श्रीकृष्ण को आमन्त्रणपत्र लिखा हो।

बड़ी कठिनाई से काँपते हुए हाथों रुक्मिणी ने, कृष्ण को पत्र लिखा। उसने पत्र में लिखा—

हे प्राणनाथ, हे हृदय सर्वस्व, मुझ अबला की रक्षा करो। मैं, सब प्रकार असहाया हूँ। आपके सिवा, मेरा कोई भी सहायक नहीं है। नारद से आपका यश सुन कर, मैंने, आपको अपना स्वामी मान लिया है। मैं, स्वयं को आपके समर्पण कर चुकी हूँ। मेरे लिए, आपके सिवा संसार के समस्त पुरुष पिता और भ्राता के समान हैं। मेरी गति, मेरी साधना मेरे आराध्य और मेरे पति, आप ही हैं। मै, इस शरीर मे रहती हुई, आपके सिवा किसी दूसरे को कदापि पति नहीं मान सकती। दुष्ट भाई, मेरी इस प्रतिज्ञा को तोडने पर उतारू है। उसने पिता की अवहेलना करके, नीच शिशुपाल को बुलाया है। वह, मुझ सिंहवधू को शृगालवधू बनाना चाहता है। पापी शिशुपाल, बारात साजकर मुझे पाने की आशा से इसी प्रकार दौड़ा आया है, जिस प्रकार कुत्ते और कौए मृत पशु के मांस के लिए दौड़ जाते हैं। मैं अपने निश्चय पर दृढ हूँ, परन्तु रुक्म और शिशुपाल, मुझ पर बल प्रयोग करना चाहते हैं। उन्होंने मुझ कन्या के लिए सारे नगर को सेना से घेर रखा है। विवाह के लिए नियत तिथि को, भाई मुझे बलपूर्वक शिशुपाल के साथ विवाह देना चाहता है। मेरी प्रतिज्ञा जान

कर, शिशुपाल को भी कुछ विचार न हुआ। वह निर्लज्जता-पूर्वक मुझे, मेरी इच्छा के विरुद्ध अपनी पत्नी बनाने के लिए उद्यत है। इस समय मेरा कोई भी सहायक नहीं है। गृह-कलह के भय से और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, पिता, तटस्थ बैठे हैं। माता, भाई की सहायिका है। इस प्रकार मेरे लिए, सब ओर आपत्ति छाई हुई है। मुझे आश्रय देनेवाला, आपके सिवा कोई नहीं है, मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि चाहे प्राण त्याग दूँ, परन्तु कृष्ण के सिवा दूसरे को पति स्वीकार न करूँगी। अभी मैं आपकी सहायता की आशा से जीवित हूँ। यदि विवाह-तिथि तक भी आपने मेरी रक्षा न की, तो दुष्ट भाई तथा पापी शिशुपाल, सत्य, न्याय और वीरता के मस्तक पर पाँव रखकर, मुझे अपने बल-प्रयोग का लक्ष्य बनावेंगे। उस दशा में, मेरे लिए, शरीर त्याग करना आवश्यक हो जावेगा। मैं, मरने से किंचित् भी भय नहीं करती हूँ, यदि भय है, तो केवल यही, कि मेरे मरने से, उनके यश को कलङ्क लगेगा, जिन्हे मैं पति मान चुकी हूँ। आपके यश को कलङ्क लगे, यह मेरे लिए असह्य है, परन्तु आपकी ओर की सहायता के अभाव मे, मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। इसलिए मैं, आपसे प्रार्थना करती हूँ, कि आप पधार कर मेरी रक्षा करिये। अधिक क्या निवेदन करूँ! मेरे लिए, एक दिन एक वर्ष के समान बीतता है। मेरे प्राण,

केवल आपके दर्शन की आशा के सहारे ठहरे हैं। आप शरणागत-वत्सल हैं, और मैं आपकी शरण हूँ। मेरी रक्षा करिये। मुझ पापिनी की उपेक्षा करने से, आपका यश दूषित होगा। लोगों में, सत्य और न्याय की श्रद्धा न रहेगी। अन्यायियों का साहस बढ़ जावेगा। इसलिए आप अविलम्ब कुण्डिनपुर पधारिये। विवाह-तिथि के पश्चात् आप मुझे जीवित न पा सकेंगे और फिर आपका कष्ट, व्यर्थ होगा। अन्त में मैं यही निवेदन करती हूँ:—

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते॥

अर्थात्—हे श्रेष्ठ मेघ, हम पपिहों के एक मात्र तुम्ही आधार हो, इस बात को कौन नहीं जानता! फिर हमारे दीन वचन की प्रतीक्षा क्यों करते हो?

इसके अनुसार, मेरे केवल आपही आधार हैं। मेरी करुण-पुकार सुनकर तो मुझ पर कृपा करो!

मैं हूँ आपकी दासी—
रुक्मिणी

रुक्मिणी ने, जैसे तैसे पत्र समाप्त किया। उसे, अपना पत्र श्रीकृष्ण के पास पहुँचने की किंचित भी आशा न थी, इसलिए

उसने पत्र को तो एक ओर छिपा कर रख दिया, और स्वयं, भावी चिन्ताओं में उलझ कर पड़ी रही।

सत्य की दृढ़ता में, विचित्र शक्ति होती है। वह शक्ति, निराशा के बादलों मे, सूर्य की तरह आशा चमका देती है। शत्रुओ के मध्य, मित्र खड़ा कर देती है। अग्नि में, शीतलता उत्पन्न कर देती है। अथाह समुद्र को, उथला बना देती है। मतलब यह, कि वह शक्ति, सत्य पर दृढ़ रहने वाले की सहायता किसी न किसी रूप में करती ही है। इसके अनेक उदाहरण भी हैं। लंका मे, रावण का राज्य था। वहाँ, सीता को आश्वासन देनेवाला कौन मिल सकता था! परन्तु सत्य की शक्ति से, विभिषण मिल ही गया। वन मे राम दो ही भाई थे, तीसरा कोई सहायक न था, परन्तु यहाँ भी वानर उनके अनुयायी बन गये। अर्जुन माली से और फाँसी से सुदर्शन सेठ की रक्षा करनेवाला कौन था। लेकिन रक्षा हुई ही। वस्त्राहरण के समय द्रौपदी सब ओर से असहाय थी, फिर भी वह नग्न नहीं ही हो सकी। उग्रसेन को बन्धनमुक्त होने की आशा न थी, परन्तु बन्धनमुक्त हो ही गये। वन मे, वधिक से दमयन्ती की रक्षा करनेवाला कोई न था, लेकिन सत्य की दृढ़ता के कारण, साँप द्वारा उसकी रक्षा हुई। रुक्मिणी पर भी कष्ट है, उसे अपनी सहायता करनेवाला—अपना पत्र ले जानेवाला—कोई नहीं

दिखता है, लेकिन सत्य को रुक्मिणी की रक्षा करना स्वीकार है, इसलिए उसने, कुशल पुरोहित के हृदय में रुक्मिणी की सहायता करने की प्रेरणा की ही।

कुण्डिनपुर में, कुशल नाम का एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। वह, कुण्डिनपुर के राजपरिवार का पुरोहित और शुभचिन्तक था। वयोवृद्ध होने के साथ ही वह, अनुभववृद्ध, चतुर और बुद्धिमान भी था। उसे, रुक्मिणी के विवाह-सम्बन्धी सब हाल मालूम थे। वह जानता था, कि रुक्मिणी, श्री कृष्ण को ही चाहती है, शिशुपाल को नहीं चाहती, लेकिन रुक्म की सहायता से वह, रुक्मिणी को बलात् अपनी पत्नी बनाना चाहता है। सेना द्वारा, सारे नगर और राजमहल को घेरने का कारण भी यही है, यह उसे ज्ञात था। वह समझता था, कि यह रुक्मिणी के प्रति अत्याचार हो रहा है, परन्तु 'जब महाराजा भीम जैसे भी तटस्थ हैं, तब मैं क्या कर सकता हूँ!' यह विचार कर, वह तटस्थ रीति से सब कुछ देख सुन रहा था।

कुशल, अपने घर सो रहा था। आधी रात के समय, सहसा उसकी नींद उचट गई। जैसे रुक्मिणी के पत्र ने, स्वयं समाप्त होने के साथ ही, कुशल की नींद भी समाप्त कर दी हो। कुशल ने, फिर नींद लेने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन फिर नींद

न आई सो न आई। रुक्मिणी विषयक घटनाओं को वह, कई दिन से देख, सुन रहा था; लेकिन उसके हृदय में कोई विशेष विचार न हुआ था। नींद उचट जाने के पश्चात, न मालूम किसकी प्रेरणा से, कुशल विचार करने लगा कि—आजकल रुक्मिणी पर बड़ी विपत्ति है। उसकी सहायता करनेवाला, कोई नहीं है। उसने कृष्ण को अपना पति मान लिया है, और उसकी प्रतिज्ञा है, कि मैं प्राण भले ही दे दूँ, परन्तु कृष्ण के सिवा दूसरे पुरुष की पत्नी न बनूँगी। इधर रुक्म और शिशुपाल की ओर से उस पर आपत्तियों की वर्षा हो रही है। कहीं रुक्मिणी का अपनी प्रतिज्ञा निबाहने के लिए, प्राण न त्याग देना पड़े। यदि ऐसा हुआ तो बड़ा अनर्थ होगा। मैंने, इस राज-परिवार का अन्न खाया है, इसलिए मेरा कर्त्तव्य है, कि मैं रुक्मिणी की हत्या रोकने का उपाय करूँ। परन्तु रुक्म और शिशुपाल की तामसी शक्ति के सामने, मेरा क्या वश चल सकता है। मैं क्या कर सकता हूँ! कुछ कर सकूँ या न कर सकूँ, कम-से-कम रुक्मिणी से मिलकर उसकी कुशल तो पूछनी चाहिए! उसे, सान्त्वना तो देनी चाहिए। इतना ही नहीं, किन्तु यदि वह मुझसे किसी प्रकार की सहायता चाहे, तो मुझे अपने प्राणों का मोह त्याग कर, उसकी सहायता भी करनी चाहिए। राजपरिवार के अन्न से पला हुआ यह वृद्ध शरीर, राजकन्या की सत्य और

न्यायानुमोदित सहायता में काम भी आ जावे, तो इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है !

इस प्रकार विचार कर कुशल ने, रुक्मिणी से मिलने का निश्चय किया। सवेरा होते ही, वह राजमहल में आया। राज-परिवार के वृद्ध पुरोहित पर सन्देह करने, या उसे रोकने का तो कोई कारण था ही नहीं, इसलिए वह, सरलता से राजमहल मे चला गया। राजपरिवार की स्त्रियो को आशीर्वाद देता हुआ और उनकी कुशल पूछता हुआ कुशल, रुक्मिणी के यहाँ आ गया। रुक्मिणी ने सदा की भाँति कुशल को प्रणाम किया। शुभाशीर्वाद देकर कुशल ने, रुक्मिणी से पूछा—राजकुमारी आप इतनी दुर्बल और चिन्तित क्यो दिखाई देती हैं ? आजकल तो आपका विवाह है, इसलिए प्रसन्नता होनी चाहिए थी, एवं शरीर-सम्पदा भी समृद्ध होनी चाहिए थी, परन्तु मैं तो इसके विपरीत देख रहा हूँ !

रुक्मिणी—महाराज, इसका कारण आप मुझसे पूछ रहे हैं ? क्या मुझ पर आई हुई विपत्ति को आप नहीं जानते हो ! इस शरीर मे अब तक प्राण ही न मालूम क्यों ठहरे हुए हैं ! आश्चर्य नहीं, कि आप कुछ दिन पश्चात इस शरीर को प्राणहीन ही देखें।

कुशल—मैं सब बातों से परिचित हूँ, परन्तु आत्महत्या तो कदापि न करनी चाहिए।

रुक्मिणी—इसके सिवा, धर्म-रक्षा का कोई उपाय भी तो नहीं है !

कुशल—धैर्य रखिये, आप जिसकी रक्षा चाहती हैं, वह धर्म भी आपकी रक्षा करेगा ! यदि कोई ऐसा कार्य हो, कि जिसे मैं कर सकता होऊँ, तो आप कहिये। मैं, उसे करने के लिए तैयार हूँ।

रुक्मिणी—वृद्ध पिता, मेरे वास्ते आप अपने प्राण संकट में डालने को तैयार मत होइये। इस समय मेरी सहायता करना रुक्म और शिशुपाल की क्रोधाग्नि में अपने प्राण समर्पण करना है।

कुशल—आप इसकी चिन्ता मत करिये। सत्य और न्याय के लिए प्राणों का ममत्व त्याग देना ही धर्म है। इस शरीर का बलिदान ऐसे शुभ कार्य में हो जावे, इससे बढ़ कर सौभाग्य की बात क्या होगी ! नीति में कहा है—

जातस्य नदी तीरे तस्यापि तृणस्य जन्म साफल्यम् ।
यत् सलिल मज्जनाकुलजनहस्तावलम्बन भवति ॥

अर्थात्—नदी किनारे पैदा हुए उस तिनके का भी जन्म सफल है, जो जल में डूबने से घबराये हुए का अवलम्बन होता है।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्तो वर त्यागो विनाशे नियते सति ॥

अर्थात्—बुद्धिमान को चाहिए, कि धन और प्राण, दूसरे के हित में उत्सर्ग कर दे। क्योंकि धन और शरीर का नाश तो अवश्य ही होगा, इस लिए दूसरे के हित में त्याग देना ही अच्छा है।

राजकुमारी, मुझे यदि ऐसा सुयोग प्राप्त हो, तो मैं उसे ठुकराने की मूर्खता कदापि न करूँगा। आप, निःसंकोच हो कर मेरे योग्य कार्य कहिये।

कुशल की बात सुन कर, रुक्मिणी के मुख पर प्रसन्नता झलक उठी। वह कहने लगी—प्रभो, तुझे धन्य है! तेरे पर विश्वास करके धर्म के नाम पर प्राणों को तुच्छ समझनेवाले लोग भी संसार में हैं। सत्य की शक्ति प्रत्यक्ष है। सत्य, अपने पर विश्वास करने वाले की सहायता करता ही है। इस समय, मुझे कोई आश्वासन देनेवाला तक न था, परन्तु सत्य की शक्ति को समझ कर, ये वृद्ध पुरोहित अपने प्राणों का मोह त्याग मेरी सहायता के लिए आ खड़े हुए। सत्य, तुझे धन्य है! तेरे में अपार शक्ति है।

रुक्मिणी की भुआ, वहीं खड़ी हुई रुक्मिणी और कुशल की बात चीत सुन रही थी। उसने, रुक्मिणी से कहा—रुक्मिणी

इन महाराज के द्वारा अपना प्रार्थनापत्र द्वारका क्यों नहीं भेज देती ?

रुक्मिणी—भुआ, जरा विचार तो करो, ये वृद्ध महाराज सेना के बीच से कैसे निकल सकेंगे और द्वारका कितने दिन में पहुँचेंगे ? विवाह का दिन समीप ही है। इतने थोड़े समय में न तो ये महाराज द्वारका पहुँच ही सकते हैं, न द्वारका से श्रीकृष्ण ही यहाँ पहुँच सकते है। ऐसी दशा में, इन्हें व्यर्थ ही संकट में डालने से क्या लाभ ?

भुआ—रुक्मिणी, तू सत्य का प्रत्यक्ष प्रभाव देख कर भी उसके विषय में सन्देह कर रही है। तू इन्हे पत्र तो दे। सम्भव है, कि तेरा पत्र समय पर श्रीकृष्ण के पास पहुँच जावे; और वे भी समय पर ही आ जावें।

रुक्मिणी से यह कह कर भुआ, कुशल से कहने लगी—कुशल महाराज, यदि आप रुक्मिणी की सहायता करना ही चाहते हैं, तो इसका एक पत्र द्वारकानाथ के पास शीघ्र से शीघ्र पहुँचा दीजिये। परन्तु यह विचार लीजिये, कि महल और नगर के आस पास सैनिक पहरा है। यदि पत्र ले जाते हुए पकड़ लिये गये, तो शिशुपाल और रुक्म, आपको मृत्यु से कम, दण्ड न देंगे।

कुशल—राजभगिनि, इसकी किंचित् भी चिन्ता न करिये।

सत्य, अपने भक्त की सहायता के लिए सदा उद्यत रहता है। इस पर भी यदि मैं पकड़ा गया और मुझे प्राण-दण्ड मिला, तो यह भी प्रसन्नता की बात होगी। मैं कुछ समय पश्चात् नष्ट होनेवाले वृद्ध शरीर को सत्य की सेवा में अर्पण कर सकूँगा।

कुशल की दृढ़ता देख कर, रुक्मिणी के हृदय का आशा-अंकुर लहलहा उठा। उसने, कुशल को वह पत्र दिया, जो रात के समय श्रीकृष्ण के नाम लिखा था। कुशल को पत्र देकर, रुक्मिणी कहने लगी—वृद्ध पुरोहित, आपका तो नाम ही कुशल है! इसलिए आपको कुछ सिखाना, अनावश्यक है। आप, सब बातों से परिचित ही हैं। मुझे जो कुछ कहना था, वह मैं पत्र में लिख चुकी हूँ। आप से केवल यह और कहती हूँ, कि समय देख कर यह पत्र देना और कहना, कि विवाह-दिन के पश्चात् मुझे जीवित न पा सकेंगे। इसलिए विवाह के दिन तक मेरी खबर ले ही लें। यह, अन्तिम अवधि है। मैं, आशा की डोरी के सहारे ही जीवित हूँ। आशा टूटते ही, मेरे प्राण पखेरू भी उड़ जावेंगे।

भुआ ने भी श्रीकृष्ण से कहने के लिए कुशल से कुछ समाचार कहे। रुक्मिणी और भुआ के कहे हुए समाचार सुन कर और पत्र लेकर कुशल, राजमहल से अपने घर आया और वहाँ से द्वारका के लिए चल पड़ा।

कुण्डिनपुर की चारों ओर, सशस्त्र सेना का पहरा लगा हुआ था। नगर से बाहर जाना, या बाहर से नगर में आना, असम्भव-सा हो रहा था। सैनिकों के उस घेरे में से एक वृद्ध ब्राह्मण का निकल जाना, बहुत कठिन कार्य था, परन्तु कुशल ने उस कठिन कार्य को भी सरल कर दिखाया। वह, न मालूम किस तरह, सैनिकों के पहरे में से बाहर निकल गया। सैनिको में से किसी को भी, कुशल के निकलने का पता न लगा। इतिहास मे भी, ऐसे कई उदाहरण पाये जाते हैं। गुजरात का बादशाह, सेना द्वारा चित्तौड़ का किला घेरे पड़ा था। कोई व्यक्ति, न तो किले में जा ही सकता था, न किले से बाहर ही आ सकता था। चित्तौड़ की रानी, किले की रक्षा कर रही थी. परन्तु कब तक! अपनी असमर्थता अनुभव करके रानी ने, मुगल बादशाह हुमायू के पास राखी भेज कर सहायता मांगनी चाही, परन्तु गुजराती सेना के पहरे में से किसी का राखी लेकर निकल जाना बहुत कठिन था। फिर भी, राखी लेकर एक राजपूत उस घेरे में से निकल ही गया और हुमायू के पास राखी पहुँचा ही दी। राखी पाकर हुमायू भी रानी की सहायता को आया और उसने गुजरात के बादशाह को मार भगाया। नागौर के लिए भी एक इतिहास-प्रसिद्ध घटना ऐसी ही है। गुजरात के बादशाह गयासुद्दीन ने, नागौर को घेर

रखा था। नागौर के राजा दिलीपसिंह की लड़की पन्ना ने, रुद्रसिंह नाम के एक वीर राजपूत के पास राखी भेज कर उसकी सहायता मंगवानी चाही थी। उस समय भी, किसी का घेरे में से निकल जाना कठिन था, लेकिन एक राजपूत, राखी लेकर निकल ही गया। इतिहास की इन घटनाओं के सिवा, कृष्ण जन्म की घटना तो संसार-प्रसिद्ध ही है। कंस ने, वसुदेव और देवकी को कारागार में डाल रखा था और ऊपर से कड़ा पहरा लगा रखा था। वसुदेव के लिए, कृष्ण को लेकर गोकुल जाने का कोई मार्ग न था, फिर भी वसुदेव, कृष्ण को लेकर निकल ही गये। कुशल के लिए भी यही बात हुई। वह भी उस सैनिक घेरे में से, द्वारका जाने के लिए सकुशल निकल गया।
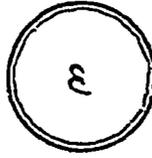
नीति-प्रयोग

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपिचार्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुर नित्य धनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेक रूपा ॥

अर्थात्—राजाओं की नीति, वेश्या की नाई अनेक रूप धारण करने वाली होती है। वह, कहीं सत्यवादिनी, कहीं कटुभाषिणी, कहीं प्रिय-भाषिणी, कहीं हिंसा करानेवाली, कहीं दयालुता दिखाने वाली, कहीं लोभी, कहीं उदार, कहीं अपव्यय करनेवाली और कहीं धन संचय करने-वाली बन जाती है।

राजाओं की कोई एक नीति नहीं होती! वे, जहाँ जिस नीति से कार्य चलना देखते हैं, वहाँ, उसी नीति से काम लेने लगते हैं। फिर चाहे वह नीति, धर्म और न्याय के अनुकूल हो या प्रतिकूल इसकी उन्हे चिन्ता नही होती, उन्हे तो कार्य साधने की चिन्ता रहती है। वे, कहीं सामनीति से काम लेते हैं। दूसरे को, अपने समान बना कर या मान

देकर कार्य साधते हैं। कहीं, दाननीति का उपयोग करते हैं। खूब उदारतापूर्वक द्रव्य आदि देकर काम बनाते हैं। कहीं, दण्डनीति चलाते हैं। मारपीट कर अपना मतलब निकालते हैं। और कहीं, भेदनीति को आगे रखते हैं। फूट डाल कर, एक को बड़ा, दूसरे को छोटा बता कर उद्देश्य सिद्ध करते हैं। इसी प्रकार के छल कपट का नाम ही राजनीति है। इसे जाननेवाले ही, राजनीति-कुशल माने जाते हैं।

शिशुपाल भी राजा था। वह भी, नीति और उनका प्रयोग जानता था। रुक्मिणी को अपने अनुकूल करने के लिए भी, उसने नीति का ही प्रयोग करना उचित समझा, लेकिन शुद्ध-सत्य के सन्मुख कपट भरी नीति कदापि सफल नहीं होती।

कुण्डिनपुर नगर को सेना से घेरने के पश्चात्, शिशुपाल ने विचार किया, कि यद्यपि मेरा मित्र रुक्म, अपनी बात पूरी करेगा और रुक्मिणी के न मानने पर, वह, बलपूर्वक रुक्मिणी को मेरे साथ विवाह देगा, परन्तु दण्डनीति का प्रयोग करने से पूर्व, साम, दान और भेद नीति का प्रयोग करना अच्छा है। दण्डनीति, अन्तिम नीति है। इससे पूर्व की नीति से यदि कार्य हो जावे, तो सर्वश्रेष्ट है। इसलिए मुझे, रुक्मिणी को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, पहले, साम, दान और भेद नीति से ही काम लेना चाहिए। इस प्रकार विचार कर शिशुपाल ने, अपने साथ

की दूती-दासियों को बुला कर उनसे कहा, कि—क्या तुम लोग, रुक्मिणी को मेरे साथ विवाह करने के लिए राजी नहीं कर सकतीं ?

दूतियाँ—महाराज, हम क्या नहीं कर सकतीं ! ऐसा कौन-सा कार्य है, जो हम से न हो सके । हम, दिन को रात बता देने और रात को दिन बता देने की शक्ति रखती हैं । रुक्मिणी तो चीज ही क्या है, हम इन्द्राणी को भी उसके निश्चय से हिला सकती हैं । रुक्मिणी बेचारी तो लड़की है, उसे वश में करना कौन-सी बात है । आपने अब तक हमें आज्ञा ही नहीं दी, नहीं तो कभी से रुक्मिणी स्वयं आकर आपके पाँवों गिरी होती ।

शिशुपाल—हाँ, तुम ऐसी ही हो । मुझे विश्वास है कि तुम रुक्मिणी को मेरे साथ विवाह करना स्वीकार करा दोगी । अच्छा तो तुम्हे इस कार्य के लिए जो कुछ चाहिए सो ले लो और कार्य में लग जाओ ।

दूतियाँ—रुक्मिणी के यहाँ, बिना कोई विशेष कारण बताये, जाना ठीक नहीं है और वह कारण भी ऐसा होना चाहिए, कि जो हमारे कार्य में सहायक हो । आप, सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण और शृङ्गार-सामग्री मँगवा दीजिये, हम, रुक्मिणी को शृङ्गार कराने के बहाने रुक्मिणी के यहाँ जायेंगी । वे वस्त्राभूषण, रुक्मिणी को आपकी ओर आकर्षित करने में सहायक

भी होंगे। आगे जो कुछ करना होगा, वह तो हम करेंगी ही।

दूतियों की युक्ति, शिशुपाल को पसन्द आई। उसने, दूतियों की इच्छानुसार, स्त्रियों के योग्य अनेक बहुमूल्य वस्त्राभूषण और शृङ्गार-सामग्री मँगवा दी। दूतियाँ, उन वस्त्रालंकार को बड़े-बड़े स्वर्ण-थालों में सजा कर, रथ मे बैठ, बड़े ठाट बाट से रुक्मिणी के यहाँ चलीं। जो कोई पूछता था, कि ये कहाँ जाती हैं, तो उनके सारथी आदि कह देते थे कि राजकुमारी को शृंगार कराने जा रही हैं।

संसार में, ऐसे बहुत कम मनुष्य निकलेंगे, जो प्रलोभन में पड़ कर अपने ध्येय से विचलित न होते हों। ध्येय से विचलित होने वालों में, अधिक संख्या, प्रलोभन में पड़ कर पतित होने वालों की ही मिलेगी। हाँ, यह अन्तर चाहे मिले कि किसी ने किस प्रलोभन मे ध्येय को ठुकराया और किसी ने किस प्रलोभन से। कोई, धन के प्रलोभन मे पड़ा होगा, कोई सुख के प्रलोभन में, कोई स्त्री खान-पान आदि के प्रलोभन मे। प्रलोभन में पड़ कर, बड़े बड़े ऋषि मुनि भी संयम (अपने ध्येय) को भुला देते हैं। बड़े बड़े न्यायनिपुण राजा भी, प्रलोभन मे फँस कर अन्याय करने लगते हैं और प्रलोभन मे पड़ जाने पर पतिव्रता स्त्रियाँ भी, पतिव्रत धर्म का तिरस्कार कर देती हैं।

जिन प्रलोभनों में पड़ कर स्त्रियाँ अपना ध्येय भुलाती हैं,

उनमें से, आभूषणादि शृंगार-सामग्री, पुरुष द्वारा सम्मान-प्राप्ति और पुरुष पर आधिपत्य, प्रमुख हैं। अपने ध्येय को ठुकराने-वाली स्त्रियों मे से अधिकांश, इन्हीं प्रलोभनों में पड़ कर अपना ध्येय भूलती हैं और अपने ध्येय को ठुकराती हैं। जिनमें, दृढ़ता का अभाव है, धैर्य की कमी है, वे स्त्रियाँ, इस प्रकार के प्रलोभनों के सन्मुख, अपने ध्येय पर स्थिर नहीं रह सकती। वे, उन प्रलो-भनो के सन्मुख, नतमस्तक हो जाती हैं। शिशुपाल को दूतियाँ, इस बात को अनुभव-पूर्वक जानती हैं, इसलिए वे रुक्मिणी को भी इसी अस्त्र से वश करने की इच्छा रखती हैं और वे, ऐसी ही सामग्री जुटा कर जाती ।

दूतियाँ, राजमहल को आईं। वे, रथ से उतर कर और आभूषणादि के थाल हाथो मे ले कर, रुक्मिणी की माता के पास गईं। उन्होने, रुक्मिणी की माता से कहा, कि—हम, चन्देरीराज की ओर से राजकुमारी को शृंगार कराने के लिए आई हैं, अतः हमें शृंगार कराने की स्वीकृति दीजिए। रानी ने, दूतियो का सत्कार करके उन्हे स्वीकृति दे दी। दूतियाँ, प्रसन्न होती हुई रुक्मिणी के पास आईं। उन्होने, बड़ी ही नम्रता-पूर्वक रुक्मिणी का अभिवादन किया और रुक्मिणी के सामने, वस्त्रा-भूषणादि की प्रदर्शिनी-सी लगा कर बैठ गईं। रुक्मिणी को इनके आने का अभिप्राय मालूम हो चुका था, इसलिए उसने न

सो इनकी ही ओर देखा और न इनके लाये हुए वस्त्राभूषणादि के थालों की ओर ही। रुक्मिणी के इस व्यवहार से दूतियों को कुछ निराशा तो हुई, परन्तु उन्होंने, निराशा को दवा कर, प्रयत्नशील रहना ही उचित समझा। वे, रुक्मिणी के आस-पास बैठ गई और कहने लगीं, कि—हमारे बड़े भाग्य, जो हमें आपकी सेवा प्राप्त हुई।

दूसरी—हमने आपकी जैसी प्रशंसा सुनी थी, आप तो उससे बहुत ही बढ़कर हैं। आप ऐसी रूपवती, हमारे देखने में तो नहीं आई।

तीसरी—जोड़ा भी अच्छा मिला है। संसार में ऐसा जोड़ा, बड़ी मुश्किल से मिला करता है।

चौथी—रुक्मकुमार हैं भी तो बुद्धिमान। वे, अपनी प्यारी बहन के लिए बेजोड़ पति कैसे ढूँढ सकते थे।

पाँचवीं—राजकुमारी के रूप की अभी क्या प्रशंसा करती हो, जरा शृंगार करा कर आपका रूप देखो।

छठी—हाँ ठीक कहा। राजकुमारी, हमारे महाराजा ने हमें यह शृङ्गार-सामग्री लेकर, आपको शृंगार कराने के लिए भेजा है। आप, शृङ्गार कराने की आज्ञा दीजिए।

दूतियों की बातें, रुक्मिणी चुपचाप सुन रही थी और विचार रही थी, कि मेरी स्त्री-बहनों में, कैसी-कैसी निर्लज्जा हैं, किजो

अपनी एक बहन को शृङ्गार-सामग्री का प्रलोभन देकर पथ-भ्रष्ट करना चाहती हैं। इस प्रकार का कार्य करनेवाली नीच स्त्रियाँ बार-बार धिक्कारने योग्य हैं।

रुक्मिणी ने, दूतियों की बात का कोई उत्तर न दिया। वह उसी प्रकार गम्भीर बनी बैठी रही। रुक्मिणी से कोई उत्तर न पाकर, एक दूती रुक्मिणी से कहने लगी—राजकुमारी, आपने हमारी प्रार्थना का कोई उत्तर भी नहीं दिया। तनिक आप इस शृंगार-सामग्री की ओर दृष्टिपात तो करिये। यदि आपकी दृष्टि से इसमे कुछ कमी हो, तो हम उसकी पूर्ति को तत्पर हैं।

रुक्मिणी ने, इस बात का भी कोई उत्तर न दिया। तब दूसरी दूती, पहली दूती की ओर देखती हुई कहने लगी—शृंगार-सामग्री मे तो कोई कमी नहीं दिखती। ऐसे ऐसे बहुमूल्य और सुन्दर वस्त्राभूषण, किसी दूसरी को तो देखने के लिए भी नहीं मिल सकते।

रुक्मिणी को फिर भी चुप देख कर, तीसरी दूती, अपनी साथिनियों से कहने लगी—बहन, तुम भोली स्त्रियों की तरह बातें कर रही हो। क्या राजकुमारी इन वस्त्राभूषणो के प्रलोभन में पड़ कर, अपने अधिकार की बात भूल सकती हैं। आखिर तो राज-कन्या हैं, बुद्धिमती हैं, कोई हम तुम थोड़े ही हैं, जो वस्त्राभूषण के लिए अधिकार का बलिदान कर दें! राजकुमारी

विचारती हैं, कि मैं ऐसी सुन्दरी और बुद्धिमती हूँ, फिर भी, दूसरी पत्नी होने के कारण पटरानी पद से वंचित रहूँगी। यह विचार कर ही आप चुप हैं।

चौथी—यह कौन-सी बात है। इसके लिए तो महाराजा और रुक्मकुमार में पहले ही बात चीत हो गई है। महाराजा ने, रुक्मकुमार से प्रतिज्ञा की है, कि मैं आपकी बहन को ही पटरानी बनाऊँगा और उन्हीं का पुत्र, राज्य का अधिकारी होगा। यदि राजकुमारी चाहतीं हों, तो हम महाराजा से ऐसा प्रतिज्ञापत्र लिखवा कर ला सकती हैं। राजकुमारी, क्या आप यही चाहती हैं?

यह बात चीत सुन कर रुक्मिणी विचारती है कि 'इनका महाराजा बड़ा ही मूर्ख है, जो मुझे देखे बिना, मेरी बुद्धि जाने बिना, मुझे पटरानी बनाने की प्रतिज्ञा कर चुका है। धिक्कार है ऐसे पुरुष को! जो मोहवश न्याय अन्याय का भी विचार नहीं करता और मेरे लिए, अपनी पत्नी के अधिकारों की हत्या करने को तयार है।' इस प्रकार के विचार से, रुक्मिणी के हृदय में शिशुपाल के प्रति घृणा हो रही थी।

दूतियों को रुक्मिणी से जब इस बात का भी उत्तर न मिला, तब पाँचवीं दूती, चौथी से कहने लगी—सखी, जिस स्त्री के अधीन उसका पति होता है, उसके सामने तुच्छ अधिकार

की क्या गणना है। पटरानी-पद मिल गया तब भी, पति-प्रेम से वंचित रहने पर, वह पटरानी-पद और दु:खरूप हो जाता है। महाराजा इन्हे पटरानी दो वना दें, परन्तु इनके आज्ञावर्ती न रहे तो वह पटरानी-पद भी किस काम का! सुख तो, पति अधीन रहे तभी है, और तभी पटरानी पद एवं वस्त्राभूषण आदि भी सुखदायी होते हैं।

छठी—हमारे महाराजा ऐसे नहीं हैं, जो इस प्रकार धोखा दें। वे, सदैव राजकुमारी के आज्ञावर्ती रहेंगे. आपकी सम्मति की कदापि अवहेलना न करेंगे। यदि राजकुमारी को केवल यह ही विचार हो, तो हमारे महाराजा, इस बात की लिखित और शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा कर सकते हैं। वोलो राजकुमारी, आप महाराजा के कथन पर ही विश्वास कर लेगी, या उनसे लिखित प्रतिज्ञापत्र लेंगी? कुछ बोलिये तो।

रुक्मिणी के हृदय मे, दूतियों की बातो से शिशुपाल के प्रति अधिकाधिक घृणा होती जा रही थी। छठी दूती की बात सुन कर रुक्मिणी विचारने लगी, कि क्या वह भी कोई पुरुष है, जो स्त्री का दासत्व स्वीकार करने के लिए तयार है। पारस्परिक सहयोग तो दाम्पत्यसुख का कारण ही है, परन्तु जो बिलकुल दास बनने को तयार है, वह 'पति' कैसे हो सकता है।

रुक्मिणी ने, दूतियों से कहा, कि मुझे तुम लोगों की बातें अच्छी नहीं लगतीं। तुम अपनी बातचीत बन्द करो और यह पाप-सामग्री की प्रदर्शिनी उठा कर यहाँ से चली जाओ, तथा अपने महाराजा से कह दो, कि रुक्मिणी तुम्हें नहीं चाहती, इसलिए यदि तुम वीरता का दावा रखते हो, यदि तुम में पुरुषत्व है, यदि तुम क्षत्रियोचित न्याय समझते हो, तो रुक्मिणी को पाने की आशा छोड़ कर, घर को लौट जाओ। मैं, वस्त्रा भूषण, पट-रानी पद या तुम्हारे महाराजा के आज्ञावर्त्ती रहने के प्रलोभन में नहीं पड़ सकती। मैं, टूटे, फटे और पुराने वस्त्र पहन कर अपनी लज्जा बचाऊँगी, परन्तु उन वस्त्रा-भूषणों की ओर देखूँगी भी नहीं, जिनमें पाप भावना भरी हुई है। मैं, पति की दासी बनकर जीवन बिताना चाहती हूँ, पटरानी बनने, या पति को अपना सेवक बनाने की भावना, मुझ में किंचित् भी नहीं है। यह इच्छा तो किन्हीं नीच स्त्रियों में ही हो सकती है और नीच स्त्रियाँ ही किसी प्रलो-भन में पड़ कर अपना धर्म खो सकती है। मुझसे तुम इस बात की आशा छोड़ दो और अपने महाराजा से भी कह दो, कि वे घर को लौट जावें। ऐसा करने पर उनकी बड़ाई होगी, उन्हें यश प्राप्त होगा और सज्जनलोग उनकी प्रशंसा करेंगे। मैं, श्रीकृष्ण को अपना पति मान चुकी हूँ, इस कारण, तुम्हारे महा-राजा के लिए पर-स्त्री हूँ। पराई स्त्री को अपनी स्त्री बनाने

का प्रयत्न करना, नीच पुरुषों का काम है। इस नीच मनोवृत्ति को त्यागने मे ही तुम्हारे महाराजा की शोभा है।

दूती—वाह राजकुमारी वाह! पहले तो आप बोली ही नहीं और बोलीं तो यह बोलीं। हमारे महाराजा, आपके यहाँ बिना बुलाये नही आये हैं, किन्तु यहाँ से टीका गया था, तब आये हैं। वे, पृथ्वी पर, साक्षात् इन्द्र के समान हैं। ऐसी कौन अभागिनी स्त्री होगी, जो उनकी पत्नी बनने का सौभाग्य ठुकरावे! आप, कुछ विचार कर तो बोली होतीं।

रुक्मिणी—इन्द्र ऐसे के लिए तो इन्द्रानी ऐसी की ही आवश्यकता है, इसलिए अपने महाराजा से कहो, कि वे किसी इन्द्रानी ऐसी को ढूँढें। मुझे ऐसा सौभाग्य नहीं चाहिए।

दूती—राजकुमारी, जब टीका चढ़ा है और बारात सजकर आई है, तब विवाह तो अवश्य ही होगा। यदि आप सरलता और प्रसन्नता से न मानेंगी, तो किसी दूसरे उपाय से मनाया जावेगा। परन्तु विवाह अवश्य होगा। महाराजा ने तो हमें यह विचार कर आपको शृङ्गार कराने के लिए भेजा, कि यदि आप सीधी तरह मान जावें, तो बलप्रयोग न करना पड़े। सीधी तरह मान जाने में, आप की भी प्रतिष्ठा है।

रुक्मिणी—बस, अधिक कुछ मत कहो, यहाँ से चली

जाओ। यदि तुम सीधी तरह न जाओगी, तो तुम्हे बलात् निकलवा दूँगी।

दूतियाँ, रुक्मिणी को कुछ भय दिखाती हुई कहने लगीं, कि यदि आपको हमारे महाराजा के साथ विवाह नहीं करना था, तो यह बात अपने भाई से कहतीं, जिसमें वे टीका भेज कर बारात तो न बुलवाते ! उनसे तो कुछ कहा नहीं, और हम पर क्रोध जताती हो ! क्या हमारा कोई स्वामी ही नहीं है, जो आप हमारा तिरस्कार करती हैं !

रुक्मिणी ने समझ लिया, कि ये दूतियाँ यहां से सीधी तरह न जावेंगी। ये तो, प्रपंच करने के उद्देश्य से ही आई हैं। उसने अपनी दासियों को आज्ञा दी, कि इन दूतियों को यहाँ से निकाल दो, इनकी यह सामग्री उठा कर फेंक दो और इनका थोड़ा ऐसा सत्कार भी कर दो, कि जिसमें भविष्य में इन्हे, किसी स्त्री को ठगने का दुसाहस न हो। रुक्मिणी की आज्ञा पाते ही, रुक्मिणी की दासियों ने, दूतियों को पीट कर बाहर निकाल दिया और उनके लाये हुए वस्त्राभूषणादि को थालो सहित उठा कर फेंक दिया। दूतियाँ, रोती चिल्लाती, वस्त्राभूषणो को एकत्रित कर अपना सा मुँह लिये चली आई। उन्हे यह भय हो रहा था, कि हमने शिशुपाल के सामने अपनी इतनी प्रशंसा की थी, परन्तु अब मार खाकर भी हम उन्हे अपना मुँह कैसे दिखा

देंगी! अन्त में, त्रियाचरित्र का अवलम्बन लेकर वे, रोती हुई शिशुपाल के सामने आईं। शिशुपाल, उत्सुकता-पूर्वक दूतियों की प्रतीक्षा कर रहा था। दूतियों के कथन पर से, उसे रुक्मिणी की प्राप्ति की बहुत कुछ आशा हो गई थी। परन्तु सहसा रुदन करती हुई दासियों को सामने देख कर, उसकी तात्कालिक आशा मिट गई। उसने, आश्चर्य-पूर्वक दूतियों से पूछा, कि तुम तो रुक्मिणी को समझाने गई थीं, फिर इस प्रकार रोती हुई कैसे आईं? दूतियों ने, शिशुपाल के सामने रुक्मिणी की अत्युक्तिपूर्ण शिकायत की। रुक्मिणी द्वारा अपना और अपनी दासियों का इस प्रकार अपमान हुआ सुनकर शिशुपाल को बहुत ही क्रोध हुआ। वह कहने लगा—एक लड़की का इतना दुःसाहस! मैं अभी उसे पकड़ मँगवाता हूँ और उसकी बुद्धि ठिकाने लाये देता हूँ! मेरे योद्धाओ! जाओ, रुक्मिणी का महल घेर लो और उसे पकड़ कर मेरे सामने उपस्थित करो।

शिशुपाल की आज्ञा से, उसके योद्धा तयार हुए, इतने ही में वहाँ रुक्म आ गया। उस समय शिशुपाल, क्रोध में बड़बड़ा ही रहा था। रुक्म ने, उससे पूछा कि—क्या बात है? आप क्रुद्ध क्यों हैं?

शिशुपाल—ये दासियाँ, आपकी बहन को शृङ्गार कराने गई थीं, परन्तु आपकी बहन ने इनके साथ बड़ा ही दुर्व्यवहार किया,

इन्हें पिटवा दिया, शृङ्गार सामग्री नष्ट-भ्रष्ट करवा डाली और मेरे लिए भी बहुत अपमान भरी बातें कही। इसलिए मैंने मेरे योद्धाओं को आज्ञा दी है, कि आपकी बहन को पकड़ लावें।

रुक्म—जरा ठहरिये, जल्दी मत करिये। रुक्मिणी को पकड़ लाना, कोई सरल बात नहीं है। ऐसा करने के लिए उद्यत होने का अर्थ, मुझमें और आपमें युद्ध छेड़ना है। मैं, इस प्रकार का अपमान, कदापि नहीं सह सकता। आपकी इन दासियों ने कोई अनुचित बात कही होगी, तभी इनके साथ ऐसा व्यवहार हुआ होगा। अन्यथा, रुक्मिणी तो क्या, कोई बुद्धि-हीन मनुष्य भी ऐसा नहीं कर सकता। आप, अपने योद्धाओं को रोकिये। इन दासियों की बातों में पड़कर, आपस में युद्ध ठानने से उपहास होगा और कोई परिणाम भी न निकलेगा। मैं आपसे जब प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, कि रुक्मिणी को आपके साथ अवश्य विवाह दूँगा, तब आपको किसी प्रकार की चिन्ता, या दूसरी कार्यवाही करने की क्या आवश्यकता है!

रुक्मकी बातों से, शिशुपाल का क्रोध शान्त हुआ। उसने अपने योद्धाओं को रोक लिया और रुक्म से मित्रता की बातें करने लगा।

शिशुपाल के पास से उठ कर रुक्म, अपने घर आया। उसे रुक्मिणी पर बहुत क्रोध हो रहा था। वह विचारता था, कि

आज रुक्मिणी के कारण, मित्र भी शत्रु बन जाता और मैं जिस से सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ, उसी से युद्ध हो जाता। अच्छा हुआ, जो मैं समय पर पहुँच गया, नहीं तो शिशुपाल के योद्धा जब महल में घुसने लगते, तब युद्ध अवश्यंभावी था। रुक्मिणी को इतना समझाया बुझाया, परन्तु वह अपनी हठ नहीं छोड़ती है। यह नहीं जानती, कि भाई, शिशुपाल से प्रतिज्ञावद्ध है। उसे, अपनी हठ के आगे मेरी बात का विचार ही नहीं है। उसकी हठ मान कर, शिशुपाल के साथ उसका विवाह न करने का अर्थ, मुझे अपनी बात खोना और शिशुपाल को अपना शत्रु बनाना है। मैं, एक बेसमझ लड़की के कारण ऐसा अनर्थ कदापि नहीं होने दे सकता। अब तक, उसे समझाने में मैं तटस्थ रहा हूँ, पर अब मैं स्वयं जाकर उसे समझाता हूँ। यदि वह मेरे समझाने पर भी न समझी, तो कल विवाह के दिन उसको पकड़ कर शिशुपाल के साथ विवाह दूँगा। वह कर ही क्या सकती है। मैं तो चाहता था, कि किसी प्रकार वह प्रसन्न रहे, परन्तु जब वह मानती ही नहीं है, तब उसकी प्रसन्नता की अपेक्षा कैसे कर सकता हूँ।

इस प्रकार विचार कर रुक्म, रुक्मिणी के महल में आया। वह, रुक्मिणी को देख कर कहने लगा—बहन रुक्मिणी, तुम अब तक ऐसी क्यों बैठी हो। तुम्हारे शरीर पर न तो उबटन

लगा है और न किसी प्रकार का शृंगार ही है। सारे नगर में उत्सव हो रहा है, बारात आई हुई पड़ी है, कल विवाह का दिन है, फिर भी तुम मलिन वेश धारण किये उदास बैठी हो।-रुक्मिणी से इस प्रकार कह कर रुक्म, रुक्मिणी की सखियों से कहने लगा—तुम लोगों ने बहन को अबतक शृङ्गार भी नहीं कराया। तुम्हारा यह अपराध है तो अक्षम्य, परन्तु रुक्मिणी के विवाहोपलक्ष्य में मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। अब शीघ्र शृङ्गार-सामग्री लाकर, मेरे सामने ही बहन को शृङ्गार कराओ।

रुक्म समझता था, कि मेरे इस कुटिलनीतिपूर्ण कथन से रुक्मिणी पर मेरा प्रभाव पड़ेगा, परन्तु रुक्म की बातों का रुक्मिणी पर किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने रुक्म से कहा—भैया, आप इन पर व्यर्थ ही रोष करते हैं। इनका क्या अपराध है! यदि कोई अपराध है, तो मेरा है। मैंने ही, उबटन आदि शृङ्गार-नहीं किया है, न करूँगी ही।

रुक्म—रुक्मिणी, तू बहुत भोली है। जान पड़ता है, कि तुझे किसी ने बहका दिया है। आज तक तू कभी मेरे सामने भी नहीं बोली, और आज तू मेरी बात के विरुद्ध ऐसा कह रही है! बारात, आई हुई पड़ी है, कल विवाह का दिन है, और तू शृंगार ही नहीं सजेगी। यह कैसे हो सकता है। नगर में तो

इतनी धूमधाम है, और जिसका विवाह है, वह तू ऐसी बातें कर रही है।

रुक्मिणी—बारात आई है तो आओ, और नगर मे धूमधाम है, तो होओ, मुझे इससे क्या।

रुक्म—तो क्या बारात लौट जावेगी ? और तू कुवाँरी ही बैठी रहेगी ? तेरे वास्ते मैंने इतना परिश्रम उठाया, इतना व्यय किया, पिता का विरोध सहा, और तू कुछ समझती ही नहीं है!

रुक्मिणी—आपने जो कुछ भी किया, वह अपने स्वार्थ के लिए। स्वार्थ के वश होकर आप, मेरे अधिकार लूटने को तयार हुए हैं। आपने मुझ पर कोई उपकार नहीं किया है, अपितु न मालूम कब की शत्रुता का बदला चुकाया है।

रुक्म—इसमे मेरा क्या स्वार्थ था ? शायद तू यह समझती होगी, कि मेरे विवाह का कार्य भाई ने अपने हाथ में लेकर पिता को इस विचार से तटस्थ रखा है, कि पिता, रुक्मिणी को बहुत द्रव्य दे देंगे। यदि वास्तव में तेरे मन में यही सन्देह हो, तो तेरा यह संदेह, भ्रमपूर्ण है। मेरे, तू एक ही बहन है। मैं तेरे को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझता हूँ। इसलिए मैं, तेरे को दहेज में इतना अधिक द्रव्य दूँगा, कि जितना आज तक किसी ने भी न दिया होगा। हाथी, घोड़े, रथ, दास-दासी, वस्त्राभूषण आदि देने में, तनिक भी अनुदारता न रखूँगा। बल्कि

अपना आधा राज्य भी तुझे देदूँगा। बोल, अब तो मेरा कोई स्वार्थ नहीं है ?

रुक्मिणी—मुझे, धन-सम्पत्ति या राज्य का किंचित भी लोभ नहीं है, न जैसा आपने कहा, वैसा मैं समझती ही हूँ। यदि आप, इसी स्वार्थ के वश होते, तब तो कोई बात ही न थी, परन्तु आपका यह स्वार्थ नहीं है, किन्तु शिशुपाल की मित्रता को दृढ़ बना कर, अपना राज्य सुरक्षित बनाने का स्वार्थ है। इसी लिए आपने, मेरे कन्योचित अधिकारों की हत्या करने की ठानी है। अन्यथा, आप ही बताइये कि मेरी इच्छा जाने बिना, आपको पिता की सम्मति की अवहेलना करके शिशुपाल को बुलाने का क्या अधिकार था ?

रुक्म—इसमें अधिकार की कौन सी बात है। कन्या को जहाँ और जिसके साथ दी जावे, उसे वहाँ और उसके साथ जाना ही चाहिए। इसमें कन्या की सम्मति जानने की क्या आवश्यकता है ?

रुक्मिणी—यह न्याय तो आप ही के मुँह का है। आप जैसा चाहें, वैसा न्याय दे सकते हैं परन्तु नीति-शास्त्र और धर्म-शास्त्र में तो यह कहा है, कि जिसे कन्या चाहे, वही वर हो सकता है, जिसे कन्या नहीं चाहती, वह वर नहीं हो सकता।

रुक्म—तू हमें नीतिधर्म सिखाती है ? क्या नीति-धर्म हम से बढ़ कर हैं ?

रुक्मिणी—हाँ, यह कहिये, कि यदि हम नीति धर्म को देखने जावें, तो कन्या के इस अधिकार को कैसे लूट सकते हैं ! भैया, आप मुझ पर यह अन्याय मत करिये। बहन के इस अधिकार को मत लूटिये। आपको, सबके साथ न्याय करना चाहिए, तो क्या आप बहन के साथ भी न्याय न करेंगे ? मैं, शिशुपाल को नहीं चाहती। मेरी दृष्टि में शिशुपाल, नीच से भी अधिक नीच है। वह वीर नहीं है, कापुरुष है। उसने अपनी दासियो द्वारा मुझसे कहलवाया, कि मैं तुम्हे पटरानी बनाऊँगा और तुम्हारा आज्ञाकारी सेवक रहूँगा। उसने मुझे देखा तक न था, मेरी बुद्धि के विषय में उसे कुछ अनुभव न था, फिर भी जो अपनी पत्नी के अधिकार छीन कर मुझे देने को तैयार है, जो स्त्री का सेवक बन सकता है, उसे वीर मानने का कौन-सा कारण है ? मैं, ऐसे नीच शिशुपाल को अपना पति कदापि नहीं बना सकती।

रुक्म—मेरी समझ से तो शिशुपाल की किसी भी ब त में समानता करने वाला, संसार में कोई दूसरा है ही नहीं। कभी तुम्हारी बात ठीक भी हो, तब भी यह विचार करो, कि मेरे बड़े भाई, अपनी बुद्धि-अनुसार जो कुछ कर चुके हैं, मैं उसकी अव-

हेलना कैसे करूँ ! पिता के समान माने जाने वाले बड़े भाई के कार्य का विरोध करना, कैसे ठीक है ?

रुक्मिणी—वाह भाई, आप तो बड़े ही न्यायशील हैं ! साक्षात् पिता की सम्मति और उनके कार्य की अवहेलना करके, आप मुझसे यह आशा कैसे करते हैं ? आपने तो पिता की भी बात नहीं मानी, और मुझसे पिता के समान बनकर अपनी बात मनवाना चाहते हैं। मैं आपके कहने मे लग कर, या आपकी बात रखने के लिए अपने प्राण तो त्याग सकती हूँ, परन्तु शिशुपाल की पत्नी बन कर, अपने तथा माता-पिता और जाति कुल के मस्तक पर, कलंक का टीका नहीं लगवाना चाहती। मैं स्वयं को एक पुरुष के समर्पण कर चुकी हूँ। मैंने एक पुरुष को अपना पति बना लिया है। अब धर्म को ठुकरा कर, मैं, दूसरे पुरुष को अपना पति कदापि नहीं बना सकती। चाहे संसार की समस्त आपत्तियाँ मुझ पर बरसने लगें, चाहे संसार के सब लोग मेरी निन्दा करें, चाहे देवगण मुझ पर कुपित हो जावें और चाहे संसार से मेरा अस्तित्व उठ जावे, परन्तु आपकी इच्छा पूरी करने के लिए मैं, धर्म का अपमान कदापि न करूँगी। मेरे पति, श्रीकृष्ण हैं। मैं, उनको अपने हृदय-मन्दिर में बैठा चुकी हूँ। स्वयं को उनके समर्पण कर चुकी हूँ। अब शिशुपाल तो क्या, साक्षात् इन्द्र भी मेरे सामने आवे, और मुझे अपनी पत्नी

बनाना चाहे, तो मैं उन्हे काग और श्वान के समान समझ कर, उनका भी तिरस्कार ही करूँगी।

रुक्म—रुक्मिणी, जरा विचार कर। वंश को कलंकित मत कर। कृष्ण, किसी भी दृष्टि से तेरे योग्य नहीं है। न तो उसके जाति-कुल का ही पता है, न वह क्षत्रिय-समाज में प्रतिष्ठित ही माना जाता है और न उसका रंग रूप ही तेरे योग्य है। इन्हीं कारणो से मैंने, पिता द्वारा किये गये—कृष्णके साथ तेरा विवाह करने के—प्रस्ताव का विरोध किया था। शायद तू पिता के कहने में लग रही है, या नारद तुझे भ्रम में डाल गये हैं, परन्तु तू मेरे पर विश्वास रख। मैं कदापि तेरा अहित न करूँगा और इसके लिए अपने जीवित रहते तो कृष्ण के साथ तेरा विवाह न होने दूँगा।

रुक्मिणी—आप, मेरा विवाह श्रीकृष्ण के साथ नहीं होने देना चाहते और मैं, शिशुपाल के साथ विवाह करना नहीं चाहती। बस समाप्त हुई बात। न आपकी इच्छानुसार कार्य हो, न मेरी इच्छानुसार कार्य हो। आप, जिसे मेरा अहित समझते हैं, उसे ही मैं अपना हित समझ रही हूँ और जिसे आप मेरा हित समझ रहे हैं, उसे मैं अपना अहित समझ रही हूँ। अब वास्तविकता का निर्णय कौन करे? इसलिए जब तक वास्तविकता का निर्णय न हो जावे, तब तक आप भी चुप रहिये, मैं भी चुप

रहती हूँ और शिशुपाल से कह दीजिये, कि वह भी अपने घर जाकर चुप बैठे।

रुक्म—और अब तक जो कुछ हुआ है, वह सब व्यर्थ जावे, शिशुपाल खाली लौट जावे, तथा मेरी सब बात, बच्चों की सी बात हो जावे! क्यों?

रुक्मिणी—इसका मैं क्या करूँ? इस बात का विचार तो पहले ही कर लेना चाहिए था; आपको पहले ही सोच लेना चाहिए था, कि मैं पिता की बात का विरोध करके बहन का विवाह शिशुपाल के साथ करना तो चाहता हूँ, परन्तु बहन की इच्छा भी तो जान लूँ। आपको, अपनी इच्छा से मेरा जीवन-साथी चुनने का क्या अधिकार था? क्या मुझे अपने जीवन के सुख-दु:ख के विषय में भी विचार करने का अधिकार नहीं है? क्या मैं, पशुओं से भी गई बीती हूँ! पशु की भी इच्छा देखी जाती है, और यदि वह किसी के साथ नहीं जाना चाहता, तो उसे भी ज़बरदस्ती नहीं भेजा जाता है, लेकिन आपने मेरे लिए यह भी नहीं किया! क्या कन्या का जीवन इतना निकृष्ट है? क्या कन्याएँ, मनुष्य नहीं हैं? शिशुपाल भी मनुष्य है और मैं भी मनुष्य हूँ। वह अपनी इच्छा पूरी करने के लिए मुझ पर ज़बरदस्ती करे और मेरी इच्छा की हत्या करे, इसका क्या कारण? क्या पुरुष में ही इच्छा होती है, हम में इच्छा नहीं होती? पुरुष तो अपनी अनु-

चित इच्छा भी पूरी कर सकता है और हम अपनी उचित इच्छा भी पूरी नहीं कर सकतीं ? बल्कि हमारी माता और हमारे भाई ही, उस दूसरे पुरुष की इच्छा पूरी करने के लिए, अपनी बहन या पुत्री की इच्छा की घात करने को तयार होते हैं। हमारा जीवन, एक ऐसे व्यक्ति के अधीन करने को तयार होते हैं, जिसके अधीन होने को हम बिल्कुल ही इच्छा नहीं रखतीं। हम कन्याओं पर होने वाला यह अन्याय, सर्वथा असह्य है। मै, इस अन्याय का लक्ष्य न बनूँगी, किन्तु अपनी शक्ति-भर, यहाँ तक कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगी। और कन्याओं के इस अधिकार को सुरक्षित रखूँगी। मैं, आपसे भी प्रार्थना करूँगी, कि आप, यह अन्याय मत करिये, किन्तु इस अन्याय को रोकने मे, मेरे सहायक बनिये।

रुक्म—मै सोचता था, कि यह विवाह-कार्य सानन्द समाप्त हो, इसमे किसी प्रकार का विघ्न न हो और बहन को भी प्रसन्न रखा जावे, परन्तु तेरा दु:साहस तो बहुत बढ़ा हुआ है। तू, समझाने से नही मानती, लेकिन इस प्रकार की हठ का परिणाम अच्छा नहीं होता। मैने, शिशुपाल को बुलाया है और उसे वचन दिया है, तो उसके साथ तेरा विवाह तो करूँगा ही, फिर चाहे तू प्रसन्नता से विवाह करना स्वीकार कर, या विवश होकर। हम, वीर हैं, क्षत्रिय हैं, बड़े बड़े वीरो को भी हमारे सामने अपनी

बात छोड़नी पड़ती है, तो तू तो चीज़ ही क्या है। कल मैं तेरे का पकड़ कर, तेरा विवाह शिशुपाल के साथ कर ही दूँगा।

रुक्मिणी—दुराग्रही को अपना दुराग्रह दिखाई नहीं देता, वह तो सत्याग्रही को भी दुराग्रही ही कहता है। इसके अनुसार आप अपनी अन्याय-पूर्ण हठ नहीं देखते और मेरी सच्ची बात को भी हठ बता रहे हैं। आप वीर हैं, तो क्या एक कन्या का अधिकार लूटने के लिए? अन्याय करने के लिए? आपके सामने उन लोगों ने अपनी बात छोड़ दी होगी, जिन्हें प्राणों का ममत्व रहा होगा। मैं तो पहले ही प्राणों का ममत्व छोड चुकी हूँ। और प्राणो का ममत्व छोड़ कर ही, मैंने, अन्याय का विरोध करने का साहस किया है। आप, इस शरीर पर अपना आधिपत्य जमा सकते हैं, इस शरीर को, अपने अन्याय, अपनी वीरता और अपने क्षात्रत्व का लक्ष्य बना सकते हैं, परन्तु आत्मा, शरीर से भिन्न है 'मैं' आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। इसलिए मुझे, आपसे, आपकी सेना से या आपके मित्र शिशुपाल से, तनिक भी भय नहीं है।

रुक्म की सारी नीति असफल हुई। वह, रुक्मणी पर क्रोध करता हुआ वहाँ से चला गया। रुक्म के चले जाने पर रुक्मिणी की माता, भौजाई और राजपरिवार की अन्य स्त्रियाँ

रुक्मिणी को समझाने तथा कहने लगीं, कि—अपने बड़े भाई की आज्ञा न मानना, अपराध है, पाप है। रुक्म को रुष्ट करना, ठीक भी नहीं है। वह, बड़ा ही क्रोधी है। कल वह, अवश्य ही तुम्हारा विवाह शिशुपाल के साथ कर देगा। फिर तुम प्रसन्नता से विवाह करना स्वीकार न करके, अपने को विपत्ति में क्यों डाल रही हो। गृह में क्लेश क्यों फैला रही हो और अपना अपमान क्यों करा रही हो। अभी भी समय नहीं गया है। तुम यदि स्वीकृति दो, तो हम रुक्म को शान्त कर देंगी।

इस प्रकार सब स्त्रियों ने, रुक्मिणी से, शिशुपाल के साथ विवाह करना स्वीकार कराने की बहुत चेष्टा की, परन्तु उन्हें सफलता न मिली। अन्त में निराश होकर वे सब भी अपने अपने स्थान को चली गईं।
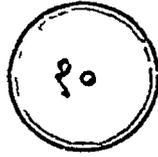
कृष्णागमन

वीर पुरुष, सहायता मांगनेवाले की सहायता करते ही हैं। वे, शरणागत को कभी निराश नहीं करते। शरणागत की रक्षा करना, वे अपना धर्म मानते हैं और इस धर्म का पालन करने से कदापि पीछे नहीं हटते। ऐसा करने में उन्हें धन जन की हानि ही क्यों न उठानी पड़े, उन्हे अपना अस्तित्व ही क्यों न खो देना पड़े और अपना सर्वस्व ही नष्ट क्यों न कर देना पड़े। वे, शरणागत की रक्षा और सहायता मांगनेवाले की सहायता अवश्य करेंगे। चाहे उनका शत्रु ही शरण आया हो, या शत्रु ही सहायता मांगता हो, ऐसे समय में वीर लोग, शत्रुता भुलाकर मित्रता का ही परिचय देंगे। मुगल बादशाह बाबर और चित्तौड़ के राणा सांगा में भयंकर लड़ाई हुई थी, परन्तु सांगा के पश्चात् चित्तौड़ की रानी ने जब बाबर के लड़के हुमायूं के पास राखी भेजकर गुजरात के बादशाह को परास्त

करने की सहायता मांगी थी, तब हुमायू, बंगाल से दौड़ा हुआ आया था और उसने अपने स्वधर्मी गुजरात के बादशाह से युद्ध करके उसे परास्त किया था। रूपनगर की राजकुमारी ने, औरंगजेब से बचाने के लिए उदयपुर के राणा राजसिंह से प्रार्थना की थी, तब राणा राजसिंह ने, धन जन की अत्यधिक हानि उठाकर भी राजकुमारी की रक्षा की थी। औरंगजेब के लड़के अकबर ने, दुर्गादास राठोड की शरण ली थी, तब दुर्गादास ने, अनेक कष्ट सहकर भी उसकी सहायता की थी। नागौर के राजा दिलीपसिंह और रुद्रसिंह, में घोर शत्रुता थी, परन्तु जब दिलीपसिंह की लड़की ने राखी भेजकर रुद्रसिंह से अपने पिता की सहायता चाही थी, तब रुद्रसिंह, पूर्व-शत्रुता को भूल, सहायता के लिए आया था और गुजरात के बादशाह को भगा कर नागौर की रक्षा की थी। इतिहास मे इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं। शास्त्रानुसार भी, राजा श्रेणिक का कनिष्ट पुत्र बहिलकुमार, अपने ज्येष्ठ भ्राता कुणिक से बचने के लिए चेड़ा की शरण गया था। चेडा में इतनी शक्ति न थी, कि वह कुणिक से लड़ता, परन्तु बहिलकुमार की रक्षा के लिए चेड़ा ने, कुणिक से संग्राम करते हुए अपने प्राण खो दिये। मेघरथ राजा ने, एक कबूतर की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस भी काट दिया था। मतलब यह, कि शरणागत की रक्षा और सहा-

यता करना, वीर लोग अपना परम कर्त्तव्य मानते है । इस कर्त्तव्य का पालन करने के लिए ही महाभारत युद्ध में, अनेक राजा लोग कौरव पाण्डव की सहायता के लिए आये थे। कौरवों और पाण्डवों के युद्ध से, किसी दूसरे की कोई हानि न थी, न किसो एक के जीतने से दूसरे राजाओ को विशेष लाभ ही था परन्तु वे, वीरोचित कर्त्तव्य से विवश थे। जो लोग, भय से उपेक्षा से, शत्रुता के कारण या किसी और कारण से, शरणागत की रक्षा तथा सहायता मांगनेवाले की सहायता नहीं करते, वे वीर नहीं, किन्तु वीर-कलंक माने जाते हैं। ऐसे लोगों की गणना, कायरो मे होती है। वीर कहला कर भी इस पवित्र कर्त्तव्य को पद दलित करने वाले, संसार में अपयश के भागी होते हैं।

रुक्मिणी ने भो कृष्ण की शरण ली है। उसने भी कृष्ण से सहायता चाही है। कुशल पुरोहित, उसकी प्रार्थना लेकर कृष्ण के पास गया है। अब देखना यह है, कि रुक्मिणी की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण, वीरोचित कर्त्तव्य का पालन कैसे करते हैं।

सेना के घेरे से निकल कर कुशल, द्वारका को चला। कुशल को मार्ग में न मालूम कोई शीघ्रगामी वाहन मिल गया, या किसी देवता की सहायता मिल गई, या आवेश मे वह स्वयं ही वेग से चला। कुछ भी हुआ हो; वह, आशा से अधिक शीघ्र द्वारका पहुँच गया। ठीक समय पर द्वारका पहुँच जाने के कारण,

उसे बड़ी पसन्नता हुई। वह विचारता था, कि अब श्रीकृष्ण रुक्मिणी की सहायता करें या न करें, मैं, ठीक समय पर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दूँगा। हर्षपूर्वक, रत्नमयी द्वारका नगरी की शोभा देखता हुआ और भूतल पर स्वर्ग-सी रमणीया द्वारका नगरी को देखने का सुअवसर प्राप्त होने से अपने भाग्य की सराहना करता हुआ, कुशल, राजभवन की ओर बढता जा रहा था। चलते चलते वह, राजद्वार पर पहुँचा। उसने, द्वारपाल को आशीर्वाद देकर उससे कहा, कि आप श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर दीजिये, कि एक विदेशी दूत, किसी अत्यावश्यक कार्य से भेंट करने आया है।

आज का-सा समय होता, तब तो द्वारपाल, कुशल को द्वार पर खड़ा भी न रहने देता, किन्तु कहता कि अपना विजिटिंग-कार्ड दो, सेक्रेटरी मुलाकात का प्रबन्ध करेंगे। सेक्रेटरी के पास विजिटिंगकार्ड पहुँच जाने पर, वह भी घण्टों खबर न लेता और जब मिलता, तब आकाश पाताल की सब बातें पूछकर, सम्भवतः आप ही श्रीकृष्ण के सामने सब मामला पेश करता, तथा दो चार दिन या अधिक में कुशल को उत्तर देता। कुशल को, श्री कृष्ण के पास तक न पहुँचने देता। लेकिन श्री कृष्ण के यहाँ का प्रबन्ध, आज के राजाओं के प्रबन्ध की तरह न था। उनके पास, एक छोटे से छोटा व्यक्ति भी जा सकता था। द्वारपाल तो केवल इसलिए रहता था, कि कौन व्यक्ति आया है, इसको

सूचना कर दे, जिससे उसके बैठने या स्वागत का कोई विशेष प्रबन्ध करना हो, तो किया जा सके। साथ ही, कोई व्यक्ति ऐसे समय में न आ जावे, जब कि किसी प्रकार का कार्य विशेष किया जा रहा हो।

श्रीकृष्ण से कहने के लिए द्वारपाल से कुशल ने जो कुछ कहा था, द्वारपाल ने कृष्ण के पास जाकर वह सब निवेदन कर दिया। कृष्ण ने, द्वारपाल को आज्ञा दी, कि उस दूत को सम्मान-पूर्वक ले आओ। कृष्ण की आज्ञा पाकर द्वारपाल, कुशल को सम्मान-पूर्वक श्रीकृष्ण के पास ले गया। कुशल ने, कृष्ण को आशीर्वाद दिया। कृष्ण ने भी, कुशल को प्रणाम करके बैठने के लिए आसन दिया। कृष्ण से आसन पाकर कुशल, गम्भीरता-पूर्वक बैठ गया।

कुशल को शान्त होने देकर, श्रीकृष्ण उससे पूछने लगे—कहिये ब्राह्मण, आपका आगमन कहाँ से हुआ ?

कुशल—मैं विदर्भ देश की राजधानी कुण्डिनपुर से आया हूँ।

कृष्ण—राजा भीम और उनका परिवार तो सकुशल है न ?

कुशल—हाँ महाराज, मैं आया तब तक तो सब कुशल ही थी, परन्तु अकुशल के बादल छा रहे थे। अकुशल बरसने से पहले यदि आपने उन बादलों को छिन्न भिन्न कर दिया तब तो कुशल ही बनी रहेगी, अन्यथा अकुशल अवश्यंभावी है।

कृष्ण—कहिये, ऐसी कौनसी बात है? आप, अपने आगमन का कारण सुनाइये। मैं, अपने योग्य कार्य को करने के लिए, सदैव तत्पर हूँ।

कुशल ने विचार किया, कि सभा में सभी प्रकार के लोग होते हैं। सभी के विचारों में समता नहीं होती और विचार-भिन्नता मिटाने के लिए अवसर की आवश्यकता हुआ करती है। एक व्यक्ति को समझाने में, विलम्ब या कठिनाई नहीं होती, परन्तु अनेक व्यक्ति को समझा कर एक निश्चय पर लाना, कठिन होता है। रुक्मिणी ने भी मुझ से कहा था, कि अवसर देख कर बात करना। नीति के अनुसार भी, कोई गुप्त या विचारणीय बात, एक दम से सभा में न कहनी चाहिए।

इस प्रकार विचार कर, कुशल ने श्रीकृष्ण से कहा—क्या सभा में ही? कुशल के उत्तर से कृष्ण समझ गये, कि दूत चतुर है, अपनी बात सभा में नहीं कहना चाहता किन्तु एकान्त में कहना चाहता है। उन्होंने कुशल से कहा—अच्छा, एकान्त चलते हैं। यह कह कर कृष्ण, बलदेवजी को साथ लेकर सभा से उठ गये और कुशल सहित मन्त्रणागृह में आये।

मन्त्रणागृह में बैठ कर, श्रीकृष्ण ने कुशल से कहा—हाँ, आपको जो कुछ कहना है, कहिये। कुशल ने रुक्मिणी का पत्र श्रीकृष्ण को दिया। कुशल का दिया हुआ पत्र लेकर,

कृष्ण उसे पढ़ने लगे ! पत्र पढ़ते पढ़ते ही, कृष्ण को रोमांच हो आया। रुक्मिणी की रक्षा करने के लिए, 'श्रीकृष्ण' की भुजाएँ फरकने लगीं, फिर भी उन्होंने गम्भीरता नहीं त्यागी; किन्तु बल्देवजी का पत्र देकर उनसे कहा, कि यह पत्र आप भी पढ़िये और कहिये कि अपने को क्या करना चाहिए !

बल्देवजी ने भी रुक्मिणी का पत्र पढ़ा। पत्र पढ़ कर, वे श्रीकृष्ण से कहने लगे कि—इस विषय में विशेष विचारणीय कौन सी बात है ? अपना कर्त्तव्य स्पष्ट है। शरणागत की रक्षा और असहाय की सहायता करना, अपना कर्त्तव्य है। यदि हम, इस कर्त्तव्य-पालन से विमुख रहते हैं, तो क्षत्रिय-कुल को दूषित बनाते हैं। हम, यदुवंशी हैं। शरणागत की रक्षा के लिए हम, एक बार मृत्यु का भी सामना करेंगे, लेकिन शरीर में प्राण रहते, शरणागत को कदापि न त्यागेंगे। यदि हम शरणागत की और विशेषत: शरण आई हुई कन्या की रक्षा न करें तो हमारी वीरता को, हमारे पुरुषत्व को और हमारे क्षात्रत्व को कोटि-कोटि धिक्कार है। हमारी गणना, अधम से अधम में होगी, यदि हम रुक्मिणी की रक्षा न करेंगे। आप, इस विषय में विशेष विचार मत करिये; किन्तु कुण्डिनपुर चल कर, रुक्मिणी की रक्षा करिये। आपके साथ, मैं भी कुण्डिनपुर चलूँगा।

यद्यपि बल्देवजी ने कृष्ण की मनभाती बात कही थी, परन्तु

नीतिज्ञ कृष्ण, प्रत्येक वात को स्पष्ट कर लेना आवश्यक समझते थे। इसी दृष्टि से उन्होंने वल्देवजी से कहा—भ्राता, यद्यपि आप जो कुछ कह रहे हैं, वह सर्वथा उचित है, लेकिन इस वात को न भूलना चाहिए, कि दूसरी ओर शिशुपाल है, जो भुआ का लड़का भाई है।

वल्देवजी—भैया, क्या अत्याचारी भाई, दण्ड का पात्र न माना जावेगा? न्याय के सन्मुख, पिता, माता, भ्राता, भगिनि आदि कोई चीज़ नहीं हैं। न्याय कहता है कि चाहे पिता हो या पुत्र, वहन हो या भाई और माता हो या पत्नी, कोई भी हो, जो अन्याय करता है उसे दण्ड देना ही चाहिए। न्याय के समीप, पक्षपात नहीं चल सकता।

कृष्ण—अच्छी वात है, चलिये, तयारी कराइये, परन्तु इतने अल्प समय में कुण्डिनपुर पहुँचेंगे कैसे?

वल्देवजी—पहुँच जावेंगे। कैसे भी पहुँचें, परन्तु पहुँचेंगे अवश्य। अधिक धावा करके पहुँचेंगे। अब विलम्ब करना ठीक नहीं, इसी समय प्रस्थान कर देना अच्छा है।

श्रीकृष्ण ने, वल्देवजी की वात स्वीकार की। उन्होंने कुशल से कहा—लो महाराज, आपके आगमन का उद्देश्य पूरा हो गया न?

कुशल—मेरा उद्देश्य तो आपका दर्शन होते ही पूरा हो गया।

कृष्ण—अब आप जल्दी से स्नान भोजन कर लीजिये, तब तक मैं रथ तयार कराता हूँ।

कृष्ण ने, सेवकों को, कुशल के स्नान भोजन का प्रबन्ध करने और रथ तयार करने की आज्ञा दी। कुशल, स्नान भोजन से निवृत्त हुआ, तब तक श्रीकृष्ण का गरुड़ध्वज रथ भी तयार होकर आ गया। रथ में श्रीकृष्ण के समस्त आयुध प्रस्तुत थे और रथ के सारथी थे स्वयं बल्देव जी। कुशल को लेकर कृष्ण, रथ मे बैठे और रथ, कुण्डिनपुर की ओर चला।

आज, विवाह का दिन है। सब ओर, खूब चहल पहल है। रुक्म के प्रबन्ध से, रुक्मिणी की—विवाह करने से इनकार करने की—बात, राज-परिवार और उससे सम्बन्ध रखनेवाले कुछ व्यक्तियों के सिवा, किसी को मालूम नहीं होने पाई है। वह चाहता है, कि मैं भीतर ही भीतर रुक्मिणी को बलात् शिशुपाल के साथ विवाह दूँ, बाहर प्रजा को, रुक्मिणी का बलात् विवाह करने की खबर न होने दूँ। इस उद्देश्य से वह, खूब धूमधाम करा रहा है। शिशुपाल की बारात मे भी, खूब राग-रंग हो रहा है। इस प्रकार सब ओर आनन्द ही आनन्द

दिखाई देता है, परन्तु रुक्मिणी के हृदय मे अपार दुःख है। वह आज अपनी मृत्यु का दिन समझ रही है। वह विचारती है, कि आज इन दुष्टों के अत्याचार से बचने के लिए, मुझे अपने प्राण विसर्जन करने पड़ेंगे। रुक्मिणी को, खाना पीना सोना बैठना कुछ नही सुहाता है। वह, इसी चिन्ता में डूबी हुई है, कि मैं अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा कर सकूँगी, या नहीं! उसकी आँखों के सामने, रुक्म और शिशुपाल की वीभत्स मूर्त्ति, अत्याचार का ताण्डव दिखा रही हैं। कृष्ण के पास पत्र देर से भेजा गया है, इसलिए वे समय पर आजावेंगे, इसका उसे विश्वास नही है। उसे, कभी-कभी यह भी सन्देह हो जाता है, कि कहीं पत्र सहित कुशल पकड़ा न गया हो और मेरे कारण उसको काल के हवाले न कर दिया गया हो। कृष्ण के आने में सन्देह होने पर भी, रुक्मिणी, उनकी ओर से सर्वथा निराश नही है। उसके हृदय मे, सन्दिग्ध आशा है। वह, उस सन्दिग्ध आशा के सहारे ही अपने हृदय को धैर्य दे रही है। जब निराशा का आधिक्य होता है, तब तो रुक्मिणी व्याकुल हो जाती है और जब आशा, निराशा को दबा देती है, तब रुक्मिणी के हृदय को कुछ धैर्य हो जाता है। वह, आशा और निराशा के बीच मे ही उलझी हुई है। बीच बीच में, भुआ से उसकी आशा को उत्तेजन मिल जाता है, लेकिन रुक्म का क्रोध, उसे

भयभीत भी बना रहा है। उसका हृदय, किसी भी प्रकार स्थैर्य-धारण नहीं करता।

अपनी सन्दिग्ध आशा के आधार पर रुक्मिणी, महल की छत पर बैठी है। उसकी आँखें, द्वारका के मार्ग पर लगी हुई हैं। कभी-कभी उसके हृदय मे यह विचार भी हो आता है, कि क्या मालूम श्रीकृष्ण, मुझ अभागिनी के लिए आने का कष्ट करेंगे, या नहीं। कहीं वे द्वारका से बाहर तो न गये होंगे! यदि मेरा पत्र उनके पास समय पर पहुँच भी गया होगा, तब भी कहीं बलदेवजी आदि उन्हें आने से मना तो न कर देंगे! रुक्मिणी के हृदय मे जब निराशा का जोर बढता है, तब वह इसी प्रकार के अनेको सन्देह में डूब जाती है, परन्तु जब आशा का जोर बढ़ता है, तब वह सोचती है, कि मैं ऐसी अभागिनी तो नहीं हूँ कि जो मुझे आत्म-हत्या करनी पड़े। मैं किसी कायर पुरुष की शरण नहीं गई हूँ, किन्तु एक महापुरुष की शरण गई हूँ। वे, दयालु हैं। करुणानिधान हैं। वे, शत्रु पर भी दया करते हैं, तो मैं तो एक अबला नारी हूँ। मुझ पर दया क्यो न करेंगे। अवश्य ही दया करेंगे। कदाचित मेरे लिए वे आने का कष्ट न भी करते, परन्तु अपने विरद की रक्षा के लिए तो वे अवश्य ही आवेंगे। बलराम आदि प्रमुख यादव भी, उन्हे एक अनाथा की रक्षा करने से कदापि न

रोकेंगे। वल्कि वे, मेरी रत्ता करने के लिए, श्रीकृष्ण को प्रेरणा करके यहाँ भेजेंगे। और आश्चर्य नहीं, कि वे स्वयं भी साथ आवें।

इस प्रकार अनुकूल प्रतिकूल विचार करती हुई रुक्मिणी ने सोचा, कि मैं कृष्ण के आने न आने के विषय मे, इतने सन्देह में क्यों पड़ रही हूँ ? मैं, अपने कृत-कर्म पर से ही निश्चय क्यों न कर लूँ, कि श्रीकृष्ण आवेंगे, या नहीं ! यदि मैंने दुष्कर्म किये होंगे, तब तो श्रीकृष्ण आ ही कैसे सकते हैं। मुझे अपने दुष्कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। और यदि मैंने दुष्कर्म नहीं किये, तो फिर श्रीकृष्ण को अवश्य ही आना होगा। अपने कार्यों की आलोचना करने पर मुझे अपना भविष्य आप ही मालूम हो जावेगा।

रुक्मिणी, अपने पापो की आलोचना करने लगी। वह कहने लगी, कि जहाँ तक मुझे याद है, मैंने जान बूझ कर कभी किसी निरपराधी जीव को नहीं सताया। कभी झूठ का प्रयोग नही किया। कभी किसी की चीज नही चुराई। ये तो वड़े वड़े पाप हुए। लोग इन वड़े पापों पर ध्यान देते हैं, परन्तु उन छोटे पापो पर ध्यान नहीं देते, जो वैसे तो छोटे कहलाते हैं, परन्तु वास्तव में परम्परा पर इन वड़े अपराधो से भी भयङ्कर

होते हैं। मैं, उन छोटे अपराधों की भी आलोचना करके देखती हूँ, कि मुझ से ऐसे पाप भी हुए हैं, या नहीं।

मैंने, अतिथि का कभी भी अनादर नहीं किया। उनको भोजन करा कर ही भोजन करती रही और शक्ति भर उनकी सेवा भी करती रही। मेरे यहाँ से, कभी कोई भिक्षुक निराश भी नहीं गया। मैं याचक को सदा सन्तुष्ट ही करती रही हूँ। मैंने, अपने पाले हुए पशु पक्षियों को केवल सेवकों के ही भरोसे कभी नहीं छोड़ा। उनके खान-पान और उनकी सेवा सुश्रूषा की देख भाल स्वयं करती रही हूँ। मैंने, भोजन में कभी भेद भाव नहीं किया। जो भोजन मैंने किया, वही अतिथि आश्रित और सेवकों को भी कराया। यह नहीं किया, कि मैंने स्वयं तो अच्छा भोजन किया हो और अतिथि आश्रित या सेवको को वह अच्छा भोजन न कराया हो। मैंने, दूसरो के सामने, कोई भी वस्तु उन्हे दिये बिना खाने का पाप कभी नहीं किया। मै जो भी वस्तु खाती हूँ, वह उस समय यहाँ उपस्थित सेवक आदि लोगों को भी देती हूँ, अकेली कभी नहीं खाती। मैंने कभी किसी के भोजन, आजीविका या आर्थिक लाभ के कार्यों में विघ्न डालने का पाप नही किया। खाने पीने या पहनने की वस्तुओं का, मैंने कभी ऐसा संग्रह भी नहीं किया, कि जो मेरे पास तो पड़ा पड़ा नष्ट हो, और दूसरे लोग उसके अभाव में कष्ट पावें।

मैंने, अपने सेवकों के साथ, सदा मनुष्यता का ही व्यवहार किया है। उन्हें, आत्मीयजनों के समान मान कर सदा सन्तुष्ट करती रही हूँ। उनसे कोई अपराध होने पर भी, मैं न तो उन्हें कठोर दण्ड ही देती हूँ, न ताड़ना ही करती हूँ। मैंने न तो उन को ऐसी प्रतिज्ञा में ही बाँधा, कि जिसके कारण वे अनैतिक आचरण करें, और न अपने कार्य के लिए उन्हें अनैतिक आचरण करने को विवश ही किया और न कभी उनसे निकृष्ट सेवा ही कराई। इस प्रकार इस जन्म में तो मैंने ऐसा कोई पाप नहीं किया है, कि जिसके कारण मैं कृष्ण-दर्शन से वंचित रहूँ, हाँ, पूर्व जन्म के पाप, मैं नहीं जानती। यदि पूर्व जन्म के पाप उदय हो और इस कारण श्रीकृष्ण मेरी खबर न लें, तो यह बात दूसरी है।

द्वारका के मार्ग पर अश्रुपूर्ण नेत्र गड़ाये, रुक्मिणी, इसी प्रकार का ध्यान कर रही है। कभी-कभी भुआ उसका ध्यान भंग कर देती है। वह कहती है, रुक्मिणी, जरा धैर्य धर और विश्वास रख। विश्वास बिना, कोई भी कार्य सफल नहीं होता। एक दम से निराश मत हो। आस्तिक लोग, अन्त समय तक निराश नहीं होते। कुशल से पत्र पाते ही कृष्ण, कुण्डिनपुर के लिए चल पड़े होंगे। वे अविलम्ब आ ही रहे होंगे। उनका गरुड़ध्वज रथ, कहीं मार्ग में ही होगा। वे,

शरणागत-रक्षक हैं। शरणागत की रक्षा करना, उनका विरद है। वे अपने इस विरद को, कदापि कलंकित न होने देंगे।

भुआ, रुक्मिणी को इस प्रकार समझा रही थी, और रुक्मिणी, आँखो से जलधार बरसाती हुई द्वारका के मार्ग की ओर देख रही थी, कि सहसा रुक्मिणी की वाम भुजा फरकी। इस शुभ शकुन से, रुक्मिणी के हृदय को कुछ शान्ति मिली। इतने ही मे, उसकी दृष्टि, एक रथ की ध्वजा पर पड़ी। उसने भुआ से कहा—भुआ, देखो तो वह क्या दिखाई देता है? क्या वह किसी रथ की ध्वजा है, या मेरे को भ्रम हो रहा है? रुक्मणी के कहने से भुआ ने, द्वारका के मार्ग की ओर देखा और वह रुक्मिणी से कहने लगी—ले रुक्मणी, अब तू चिन्ता छोड़कर प्रसन्न हो। वे देख, श्री कृष्ण ही आ रहे हैं। यह गगन-स्पर्शी गरुड़चित्र अंकित ध्वजा, उन्हीं के रथ की है। दूसरे किसी के रथ की ध्वजा पर गरुड का चित्र नहीं है।

भुआ की बात सुनकर, रुक्मिणी के हृदय में अत्यधिक प्रसन्नता हुई। फाँसी पर चढ़ते हुए व्यक्ति को जीवित रहने की विश्वासपूर्ण आशा हो जाने पर जो प्रसन्नता होती है, उस प्रसन्नता की तुलना तो उसी की प्रसन्नता से की जा सकती है। यही बात रुक्मिणी की प्रसन्नता के लिए भी है। उसने एक बार ध्वजा को गहरी दृष्टि से देखा और उसे भुआ के कथन पर

विश्वास हो गया। अब तो उसकी प्रसन्नता का कहना ही क्या था! वह, आँखों के आँसू पोछ कर, रथ की ओर देखने लगी। उस गरुड़ की ध्वजा वाले रथ को कुण्डिनपुर की ओर आते देख कर उसे अपनी रक्षा की पूर्ण आशा हो गई। उसने देखा कि रथ में एक पीताम्बरधारी पुरुष बैठा है और उसके पास ही वह ब्राह्मण भी बैठा है, जो मेरा पत्र लेकर गया था। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया, कि इस रथ में श्री कृष्ण ही हैं, जो कुशल के साथ मेरी रक्षा करने के लिए आये हैं। भुआ ने भी, यह विश्वास करने में उसकी सहायता की।

रुक्मिणी ने देखा, वह रथ आते आते जंगल में ही रुक गया। उसमें से उतर कर वृद्ध कुशल, नगर की ओर आ रहा है और रथ, प्रेमदा बाग की ओर जा रहा है। वह, भुआ को लेकर प्रसन्न होती हुई, अपने महल में आई। अब उसे, कुशल की प्रतीक्षा है। इसी बीच मे, रुक्मिणी के मन में एक और सन्देह हुआ। वह, भुआ से कहने लगी—भुआ, मेरी रक्षा के लिए श्री कृष्ण आये तो हैं, परन्तु वे तो अकेले ही देख पड़ते हैं और यहाँ इन दुष्टों की बहुत ही अधिक सेना है। इस टिड्डी-दल-सी अपार सेना से, वे अकेले युद्ध करके मेरी रक्षा कैसे कर सकेंगे! सेना ने, सारे नगर को घेर रक्खा है। इस सारी

सेना को जीतकर, वे महल तक कैसे पहुँच सकेंगे ? कहीं मुझ दुष्टा के कारण, इनके प्राण संकट में न पड़ जावें।

यह कहती कहती रुक्मिणी, फिर दुःखित हो गई। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। रुक्मिणी की आँखों के आँसू पोंछती हुई भुआ कहने लगी—रुक्मिणी, तुझे जो चिन्ता हुई है, उसका तो यह अर्थ होता है, कि या तो तू कृष्ण के बल पराक्रम को समझ ही नहीं पाई है या तुझे उनके बल-पराक्रम पर विश्वास नहीं है ! तू जरा धैर्य रख। देख तो सही, कि श्रीकृष्ण, शिशुपाल और रुक्म की सेना को किस प्रकार परास्त करके तेरी रक्षा करते है। अधिकान्श सेना तो, उनके पाँचजन्य शंख की ध्वनि से भयभीत होकर ही भाग जावेगी। फिर जब वे सुदर्शन चक्र को हाथ में लेकर घुमावेंगे, तब पृथ्वी पर कौन ऐसा है, जो उस चक्र के तेज के सन्मुख ठहर सके। कौन ऐसा वीर है, जो उनके सारंग धनुष से निकले हुए बाण का आघात सह सके ! किस जननी ने ऐसा वीर पैदा किया है, जो कौमोदकी गदा का प्रहार रोके। अकेले कृष्ण ही असंख्य सेना से युद्ध कर सकते हैं, फिर भी संभव है, कि पीछे दूसरे यादव भी आते हो। जरा ठहर तो ! घबराती क्यों है ! कुशल को तो आने दे !

भुआ, रुक्मिणी को समझा चुकी थी, कि इतने ही में

कुशल भी आ गया। कुशल को देखते ही, रुक्मिणी उसके पाँवों पर गिर पड़ी। वह कुशल के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहती थी, परन्तु हर्षावेश में उसके मुंह से एक शब्द भी न निकल सका। कुशल ने, रुक्मिणी को उठाते हुए कहा—राज-कुमारी, ठहरो, यह विलम्ब करने का अवसर नहीं है। अब विलम्ब अवांछनीय है। विलम्ब करने से, हित की हानि होगी। मैं, तुमसे यह कहने आया हूँ, कि श्री कृष्ण नगर से बाहर आ गये हैं। उनका रथ, उसी प्रेमदा बाग में गया है, जहाँ के लिए राजभगिनि ने कहा था। बल्देवजी भी साथ हैं। अब मैं जाता हूँ, यहाँ अधिक ठहरने से किसी को सन्देह हो जावेगा और कार्य में बाधा आ खड़ी होगी।

पाणि–ग्रहण

इच्छित वस्तु या व्यक्ति के मिल जाने पर, कैसी प्रसन्नता होती है, इसे सभी लोग जानते है। केवल मनुष्यो को ही नहीं, किन्तु पशु और पक्षियो को भी, इच्छित व्यक्ति या वस्तु के मिलने पर प्रसन्नता होती है। यह, संसार का नियम ही है। बल्कि जिस वस्तु या व्यक्ति के अभाव में, या उसकी प्राप्ति के मार्ग में, जितने अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं, उस वस्तु या व्यक्ति की प्राप्ति पर उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती है। इसी प्रकार जिसके लिए जितने कम कष्ट उठाने पड़ते हैं, उसकी प्राप्ति पर, उतनी ही कम प्रसन्नता होती है। ताप-पीड़ित को, छाया प्राप्त होने पर जो आनन्द होता है, वह आनन्द, उसी छाया के मिलने पर भी, उसे नहीं होता, जिसे छाया के अभाव मे कष्ट नहीं उठाना पड़ा है। जिसका पेट भरा हुआ है, उसे भोजन मिलने पर उतना आनन्द नहीं होता, जितना भूखे को भोजन मिलने पर होता है। शीतकालीन वर्षा, वैसी आनन्ददायिनी

नहीं मानी जाती, जैसी ग्रीष्मकालीन मानी जाती है। मतलब यह कि कोई भी वस्तु, कोई भी स्थान और कोई भी व्यक्ति तभी अधिक प्रिय लगेगा, उसकी प्राप्ति पर तभी अधिक प्रसन्नता होगी, जब उसके अभाव मे, उसकी प्राप्ति के मार्ग मे कष्ट, उठाने पड़े हो। यह बात, और भी अनेको उदाहरण से सिद्ध की जा सकती है।

रुक्मिणी को, कृष्ण के वास्ते अनेक कष्ट उठाने पडे हैं। अनेक दुःख सहने के पश्चात् ही उसे यह सुनने को मिला है, कि कृष्ण आये हैं। यद्यपि अभी कृष्ण उसे मिले नहीं हैं, फिर भी जिस प्रकार प्यासे चातक को घन की गर्जन सुनकर ही अत्यन्त आनन्द होता है, उसी प्रकार रुक्मिणी को श्री कृष्ण के आगमन मात्र से आनन्द हुआ है। जब श्री कृष्ण मिल जायेंगे, तब की प्रसन्नता के लिए तो कहना ही क्या है!

कुशल पुरोहित, अपने घर गया। कुशल के जाने के पश्चात, रुक्मिणी, भुआ से कहने लगी—भुआ, आपने श्री कृष्ण को नगर से बाहर प्रेमदा बाग मे किस उद्देश्य से ठहराया है? मैं, उनके पास कैसे पहुँच सकूँगी?

भुआ—रुक्मिणी, अब तुझे किसी भी बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मैं, सब कुछ कर लूँगी। तू

तो, जैसा मैं कहूँ, वैसा करती जाना। अब तू अपने में किंचित भी चिन्ता मत रहने दे, प्रसन्न रह।

रुक्मिणी की भुआ ने विचार किया, कि इस समय मुझे भी वैसी ही नीति से काम लेना चाहिए, जैसी नीति, रुक्म और शिशुपाल ने रुक्मिणी के साथ बरती है। इस समय, कपट-पूर्ण नीति के बिना काम होना कठिन है। दुष्ट लोग, वैसे न मानेंगे, इसलिए मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए, कि रुक्म और शिशुपाल तो यह समझकर प्रसन्न हों, कि हमारी आशा पूर्ण हो रही है और मुझे रुक्मिणी को श्री कृष्ण के पास पहुँचाने का मार्ग मिल जावे।

इस प्रकार विचार कर भुआ, अपनी भौजाई-रुक्मिणी की माता के पास गई। उसने रुक्मिणी की माता से कहा—भावज जी, लो रुक्मिणी को तेल उबटन लगवाकर, शृङ्गार कराओ। मैंने, रुक्मिणी को समझा लिया है, वह अब शृङ्गार कर लेगी।

भुआ की यह बात सुनकर, रुक्मिणी की माता और राज-परिवार की अन्य स्त्रियों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे, बहुत ही प्रसन्न हुई। रुक्मिणी की माता, अपनी ननद से कहने लगी कि हम सब रुक्मिणी को समझा कर हार गई, रुक्म भी रुक्मिणी से रुष्ट होकर चला गया, फिर भी रुक्मिणी नहीं मानी और आपने उसे किस तरह राजी कर लिया ?

भुआ—वह मानती कैसे ? मानना, उसके वश की बात नहीं थी। अपन सब मूल में ही गल्ती कर रही थीं, इसी से रुक्मिणी नहीं मानती थी। रुक्मिणी के न मानने मे, देव-प्रकोप कारण था। अपने यहाँ की यह परम्परा है, कि जिस कन्या का विवाह होता है, वह सबसे पहले प्रेमदावागस्थित कामदेव यक्ष के मन्दिर मे जाकर, कामदेव का आशीर्वाद लेती है और तब उस पर तेल चढता है। रुक्मिणी के विवाह में, इस परम्परा का पालन नहीं हुआ, इसलिए वे, कामदेव यक्ष ही विघ्न कर रहे थे। यह परम्परा मुझे भी अब तक याद नहीं आई थी, परन्तु सहसा याद आ गई। तब मैंने यक्षराज की प्रार्थना की, कि जो भूल हो गई, उसे आप क्षमा करे, मै रुक्मिणी को शृंगार करा कर आपके मन्दिर में लाऊँगी, और रुक्मिणी आपकी पूजा करके आपका आशीर्वाद प्राप्त कर लेगी, तब उसका विवाह होगा। जैसे ही मैंने यक्षराज की यह प्रार्थना की, वैसे ही रुक्मिणी पर से उनका प्रकोप हट गया और रुक्मिणी की आकृति ही बदल गई। अब वह खूब प्रसन्न है। उसने, शृङ्गार और विवाह करना भी स्वीकार कर लिया है। चलो, अब विलम्ब न करो। यक्षराज के मन्दिर में जाना है, इसलिए रुक्मिणी को जल्दी ही शृङ्गार कराओ।

शिखावती—वास्तव में यह बड़ी भारी भूल हुई थी, और

इस भूल के कारण ही, रुक्मिणी को तथा हम सब को क्लेश भोगना पड़ा। प्रसन्नता की बात है, कि आज आपको यह बात याद आ गई और शान्ति हुई।

शृङ्गार-सामग्री लेकर, रुक्मिणी की माता, भौजाई आदि स्त्रियां, मंगल गाती हुई, रुक्मिणी के महल में आईं। रुक्मिणी की प्रसन्नता देखकर, इन सब के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे सब, मंगल गाती हुई, रुक्मिणी को तेल उबटन लगाने लगीं। सब स्त्रियां तो समझ रही थीं, कि हम शिशुपाल के साथ विवाह करने के लिए रुक्मिणी को तेल उबटन लगा रही हैं, परन्तु रुक्मिणी और उसकी भुआ, अपने मन में कह रही हैं, कि यह तेल उबटन किसी और के लिए ही लग रहा है।

स्त्रियों ने, रुक्मिणी को शृङ्गार कराया। रुक्मिणी की भावज आदि, बीच बीच में रुक्मिणी की हँसी भी करती जाती हैं, परन्तु रुक्मिणी, थोड़ा मुसकरा देने के सिवा और कुछ नहीं बोलतीं। जैसे हृदय की प्रसन्नता ने उसे मूक बना दिया हो।

थोड़ी ही देर में, रुक्मिणी के प्रसन्न होने और शृङ्गार कर लेने की बात, रुक्म तथा शिशुपाल को भी मालूम हुई। इस समाचार के सुनने से, दोनों ही को बहुत हर्ष हुआ। रुक्म तो विचारता था, कि मेरी बात पूरी हुई। अच्छा हुआ, कि रुक्मिणी मान गई। यदि वह न मानती और मैं जबरदस्ती

उसका विवाह कर भी देता, तब भी, जाननेवालों के लिए तो मैं अन्यायी ही ठहरता। अच्छा हुआ, कि मेरी प्रतिज्ञा भी रह गई और मुझ पर कोई दूषण भी न लगा सकेगा। उधर शिशुपाल विचार रहा था, कि रुक्म ने मुझे वचन दिया था, इस लिए वह अपनी बहन का विवाह तो मेरे साथ करता ही, परन्तु विवाह का वह आनन्द न मिलता, जो अब मिलेगा। इसके सिवा, ज़बरदस्ती विवाह होने पर, वह दाम्पत्य-सुख भी न मिलता, जो प्रसन्नता से विवाह होने पर मिलता है। इस प्रकार शिशुपाल और रुक्म, अपनी अपनी विजय मान कर प्रसन्न हो रहे हैं, और रुक्मिणी, अपनी विजय मान कर प्रसन्न हो रही है।

रुक्मिणी को शृङ्गार करा कर सब स्त्रियां, उसे कामदेव यक्ष की पूजा कराने के लिए ले जाने की तयारी करने लगीं। भुआ ने, रुक्मिणी की माता से कहा, कि अब तुम रुक्मिणी को आशीर्वाद दो कि यह, यक्षराज को प्रसन्न करके अपना मनोर्थ पूर्ण होने का वर प्राप्त करे। भुआ विचारती है, कि रुक्मिणी की अपनी माता से विदाई है, इसलिए रुक्मिणी की माता से आशीर्वाद दिला देना चाहिए और इसी अभिप्राय से उसने, रुक्मिणी की माता से आशीर्वाद देने के लिए कहा। परन्तु रुक्मिणी की माता, इस बात को क्या जाने, कि रुक्मिणी, यक्ष-पूजा के बहाने

मेरे यहाँ से अपने पति के घर जा रही है और यक्ष-पूजा से उसका अभिप्राय कृष्ण-पूजा है ! उसने, प्रसन्नता-पूर्वक रुक्मिणी को आशीर्वाद देकर कहा—पुत्री, जाओ, यक्षराज की पूजा करके उन्हें प्रसन्न करो और कामना पूर्ण होने का वरदान प्राप्त करो।

स्वर्ण-थालों में, पूजा-सामग्री और पकवान आदि रखे गये। अनेक रथ तयार होकर आये, जिनमें वस्त्राभूषण साजे हुई स्त्रियाँ, मंगल गाती हुई बैठीं। रुक्मिणी को लेकर भुआ भी, एक रथ में बैठी और इनके रथ के पीछे-पीछे सब रथ, नगर से बाहर के लिए चले।

सब रथ, नगर के द्वार पर आये। द्वार पर, शिशुपाल की सेना का पहरा था। शिशुपाल के सैनिको ने, रथों को रोक दिया और कहा, कि नगर से बाहर जाने देने की आज्ञा नहीं है। सब से आगे वही रथ था, जिसमें रुक्मिणी और उसकी भुआ बैठी थी। रथ रुकने का कारण मालूम होने पर, रुक्मिणी की भुआ, रोष जताती हुई शिशुपाल के सैनिकों से कहने लगी, कि—क्या तुम लोगों को मालूम नहीं है, कि राजकुमारी यक्ष—पूजा के लिए जा रही है ? क्या तुमने नहीं सुना, कि अब तक यक्षराज के प्रकोप से ही विघ्न पड़ रहा था और अब उनकी कृपा से ही रुक्मिणी ने तेल उबटन लगवाया है ? तुम नहीं जाने देवे, तो

लो, हम सब लौटी जाती हैं। इसमें हमारा क्या है, हानि तो तुम्हारे महाराजा की ही है।

इस प्रकार कह कर भुआ ने, रथ लौटाने को आज्ञा दी। भुआ की बाते सुन कर, सैनिकगण यह विचार कर भयभीत हुए, कि कहीं ये लौट गई और कोई अनर्थ हुआ, तो हम लोग संकट में पड़ जावेंगे। उन्होंने, भुआ से नम्रता-पूर्वक प्रार्थना की, कि आप अभी रथ न लौटाइये, हम शीघ्र ही जाकर महाराजा से इस विषय में निर्णय किये लेते है। भुआ ने, बड़ी कृपा और अनिच्छा दिखाते हुए, सैनिकों की यह प्रार्थना स्वीकार की। एक सैनिक, शीघ्रता से शिशुपाल के पास गया। उसने, सब समाचार शिशुपाल को सुनाया। शिशुपाल ने उत्तर दिया, कि उन सब को जाने दो और तुम लोग भी उनके साथ जाओ, जिस में किसी प्रकार का विघ्न न होने पावे! यक्षराज की पूजा करा कर, उन सब को अपनी रक्षा मे लौटा लाना। देखो, बहुत सावधानी रखना, किसी प्रकार का विघ्न न होने पाये।

'जो आज्ञा' कह कर, शिशुपाल का सैनिक नगर-द्वार पर आया। उसने भुआ से कहा, कि महाराज ने, यक्ष-पूजा के लिए आप लोगों को जाने देने की स्वीकृति दी है, परन्तु रक्षा के लिए हम लोग भी साथ रहेंगे। भुआ ने उत्तर दिया, कि तुम

लोग प्रसन्नता से साथ रहो, इसमें हमें कौनसी आपत्ति हो सकती है !

रथ, नगर-द्वार से बाहर हुए । शिशुपाल के सैनिक, रथों को चारों ओर से घेर कर, साथ-साथ चलने लगे । चलते-चलते जब रथ बाग के समीप पहुँचे, तब भुआ ने, अपना रथ रुकवा कर साथ की स्त्रियों से कहा, कि अब हम सब को बाग से बाहर ही ठहर कर, रुक्मिणी को अकेली ही यक्षराज की पूजा करने के लिए जाने देनी चाहिए; जिससे यह, यक्षराज को प्रसन्न करके इच्छित वर मांग सके । स्त्रियाँ, अपने मनोर्थ सबके सामने प्रकट नहीं करती हैं । उन्हें, ऐसा करने में लज्जा आती है । स्त्रियों के विशेषत चार मनोर्थ होते हैं । पहिला मनोर्थ, अचल सुहाग प्राप्त होने का होता है । दूसरा मनोर्थ यह होता है, कि हमें हमारा पति सम्मान दे । तीसरा यह मनोर्थ होता है, कि हमें सौत का दुःख न हो और चौथा मनोर्थ, कल्याणकारी पुत्र प्राप्त होने का होता है । स्त्रियाँ, अपने इस मनोर्थ को, एकान्त में ही प्रकट कर सकती हैं । इसलिए रुक्मिणी को अकेली ही जाने देनी चाहिए, जिसमें यह, यक्षराज के सन्मुख अपने ये मनोर्थ प्रकट करके, इनकी पूर्ति का वरदान प्राप्त कर सके । अपन सब साथ जावेंगी, तो रुक्मिणी, लज्जा में पड़ कर यक्षराज की पूरी तरह आराधना भी न कर सकेगी और अपने मनोर्थ

प्रकट करके उनकी पूर्त्ति का वरदान भी न माँग सकेगी। इस प्रकार, थोड़ी देर की लज्जा, इसके हित की घातिका होगी।

स्त्रियो ने भी, भुआ की बात का समर्थन किया। भुआ ने, रुक्मिणी के हाथ मे पूजा-सामग्री का थाल दे दिया और उससे कहा, कि—जाओ, यक्षराज की आराधना करके उनको प्रसन्न करो और अपनी मनोकामना पूर्ण करो। रुक्मिणी समझ गई, कि यह भुआ से विदाई है। वह, अपनी भुआ के पाँवों पड़ी। भुआ जान गई, कि रुक्मिणी मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट करके कहती है, कि आप की कृपा से ही मैं यहाँ तक आ पाई हूँ, मेरा मनोर्थ पूर्ण हुआ है, और मेरी प्रतिज्ञा तथा मेरे जीवन की रक्षा हुई है। उसने, रुक्मिणी को उठा कर उससे कहा—रुक्मिणी, मैं तो पहले ही आशीर्वाद दे चुकी हूँ, कि यक्षराज तुम पर प्रसन्न हों।

रुक्मिणी, प्रसन्न होती हुई बाग में चली। शिशुपाल के सैनिक कहने लगे, कि—ये अकेली कहाँ जा रही हैं? हम भी साथ जावेंगे। भुआ ने उन सबसे कहा कि यक्षराज की पूजा एकान्त में ही की जा सकती है और इसीलिए हम सब यहाँ ठहर गई हैं। जब हम स्त्रियाँ भी वहाँ नही जाती हैं, तब पुरुष तो जा ही कैसे सकते हैं। यदि रुक्मिणी अकेली न होगी,

कोई साथ होगा, तो वह न तो खुले हृदय से यक्षराज की आराधना ही कर सकेगी, न इच्छित वर ही माँग सकेगी।

भुआ की बात सुन कर, सैनिक भी ठिठुक गये। उन्होंने विचार किया, कि यह अकेली लड़की जाही कहाँ सकती है! अपन सारे बाग को ही घेरे लेते हैं, फिर कहाँ जावेगी और कौन क्या कर सकेगा! इस प्रकार विचार कर सैनिको ने प्रेमदा बाग को आसपास से घेर लिया।

रुक्मिणी, यक्ष के मन्दिर पर पहुँची। कृष्ण-दर्शन के प्यासे, उसके नेत्र, कृष्ण के लिए इधर उधर दौड़ने लगे। उसने देखा, कि यक्ष का मन्दिर भी है, गरुड़ध्वज रथ भी पड़ा हुआ है, परन्तु श्रीकृष्ण नहीं हैं।

रुक्मिणी का प्रेम और उसकी भावना देखने के लिए, श्री कृष्ण, अन्तर्धान हो गये थे। कृष्ण को वहाँ न देख कर, रुक्मिणी बहुत व्याकुल हुई। वह कहने लगी—हे माधव, हे दैत्यारि, आप कहाँ हो! मैं, आपके लिए यहाँ आई, और आप कहाँ चले गये! हे वसुदेवनन्दन, क्या यह समय छिप जाने का है! आपके न मिलने से, मुझ दुःखिनी के हृदय को अपार दुःख हो रहा है। आप, मुझ पर दया करके, शीघ्र ही प्रकट होइये। हे देवकीसुवन, आपका गरुड़ध्वज रथ बताता है, कि आप हैं तो यहीं, फिर आप मुझे दर्शन क्यों नहीं देते! हे हलधरअनुज,

मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया है, कि जो इतना सब हो जाने पर भी, आपके दर्शन से वंचित हूँ। हे सारंगपाणि, कहीं दुष्ट शिशुपाल की सेना से भयभीत कर आप छिप तो नहीं गये ? परन्तु ऐसा सम्भव नहीं। क्योंकि आप तो भयनिवारक हैं, स्वयं ही भयभीत कैसे हो सकते हैं। हे सुभद्रार्जा के वीर, आपने मेरे मे क्या दोष देखा, जो मुझे नहीं अपनाते हो ! हे श्याम, मैं अब तक प्यासे चातक की नाईं आपके दर्शन की आशा लगाये थी, परन्तु अब जब दर्शन का समय आया, तब आप दर्शन क्यों नहीं देते ! हे रुक्मिणीवल्लभ, यह रुक्मिणी आप ही की है। इसके लिए, आपके सिवा संसार मे दूसरा कोई नहीं है। हे प्राणाधार, हे मेरे नाथ, भुआ की कृपा से ही मुझे आपके दर्शन का शुभ योग मिला था, और आपने भी कुशल से यह कहा था, कि मैं रुक्मिणी को यक्षमन्दिर मे मिलूँगा, फिर अब आप प्रकट होकर मुझे धैर्य क्यो नहीं बँधाते ! हे स्वामी, आप मुझे मेरा अपराध तो बता दो, जिसमे मुझे सन्तोष तो हो।

इस प्रकार बार बार कह कर रुक्मिणी, रुदन करने लगी। रुक्मिणी को व्याकुल और रुदन करती देख कर श्री कृष्ण, रुक्मिणी के सामने आ खड़े हुए। श्री कृष्ण को देखकर, रुक्मिणी का हृदय हर्ष से भर गया। हर्ष के मारे, उसे रोमांच हो आया। उसने, श्री कृष्ण का दर्शन करके, अपने नेत्रो को

सफल, अपनी कामना और अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण समझा। वह श्री कृष्ण को देख कर, हाथ जोड़ लज्जा के भाव से झुक कर खड़ी हो गई। हर्षावेग कम होने पर, वह श्री कृष्ण से कहने लगी, मैंने, जब से नारदजी द्वारा आपकी प्रशंसा सुनी, तभी से मेरे हृदय मे आपके दर्शन करने की अभिलाषा थी। वह अभिलाषा आज पूरी हुई। मुझ अबला की रक्षा करने के लिए आपने बड़ा कष्ट उठाया। आपने, ठीक समय पर पधार कर इन दुष्टों से मेरा उद्धार किया और मेरी प्राण-रक्षा की। यदि आप आज न पधारे होते, तो मेरे प्राण-पखेरू, इस शरीर-पिंजर को छोड़ कर उड़ जाते। अब आप इस दासी का पाणिग्रहण करके, इसे अपनी सेवा का सौभाग्य प्रदान कीजिये।

रुक्मिणी की बातें सुन कर कृष्ण विचारते थे, कि मैंने, नारद द्वारा रुक्मिणी का चित्र देखा था। उस चित्र पर से ही मैंने अनुमान कर लिया था कि रुक्मिणी, जैसी सुन्दरी शरीर से है, वैसी ही हृदय से भी सुन्दरी होगी। मेरा यह अनुमान, बिलकुल ठीक निकला। इस प्रकार विचारते हुए श्री कृष्ण, रुक्मिणी से कहने लगे—राजकुमारी, धैर्य धरो। मैं तुम्हारे हृदय का प्रेम देखने के लिए ही अन्तर्धान हुआ था। मैं जानना चाहता था, कि रुक्मिणी में जैसा सौन्दर्य्य है, वैसा ही हृदय भी है, या नहीं! और एक स्त्री-रत्न में जो विशेषता होनी

चाहिए, वह रुक्मिणी में भी है, या नहीं। तुम, मेरी इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुईं। मेरे न मिलने पर, यदि तुम चाहतीं, तो मेरे लिए कटु-शब्द भी प्रयोग कर सकती थीं और कह सकती थीं, कि मैंने तो इतने कष्ट सहे और वे यहाँ भी मुझे न मिले। हृदय हीन हैं, निठुर हैं, आदि। परन्तु तुमने ऐसा न करके, सच्चे प्रेम का परिचय दिया है। सच्चा प्रेमी, अपने प्रेमास्पद के दोष तो देखता ही नहीं। उसकी दृष्टि तो, प्रेमास्पद के गुणों पर ही रहती है। पतिव्रता-स्त्री और ईश्वर-भक्त मे तो यह बात विशेष रूप से होती है। मैं तुम्हे पाकर, बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुमने, मेरे लिए अनेक कष्ट सहे हैं। मैं, तुम्हारे प्रेम और तुम्हारी सहिष्णुता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

रुक्मिणी और कृष्ण, परस्पर इसी प्रकार की बातें कर रहे थे, इतने ही मे वहाँ बलदेवजी आ गये। बलदेव जी को देख कर, कृष्ण, संकोच करके रुक्मिणी के पास से यह कहते हुए हट गये, कि भ्राता जी आये। बलदेवजी को देख कर रुक्मिणी भी, लज्जा-पूर्वक एक ओर खड़ी हो गई। वह, टेढ़ी दृष्टि से हलधरजी की ओर देखने लगी और ऐसे जेठ की अनुज-वधू बनने का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण, अपने को धन्य मानने लगी। वह अपने मनमें कहने लगी, कि इन्हे धन्य है, जो मेरी रक्षा के लिए, अपने छोटे भाई के सहायक बनकर आये हैं।

बलदेवजी ने, आते ही श्री कृष्ण से कहा भैया, अब शीघ्र चलो, विलम्ब मत करो। बलदेवजी की बात सुनते ही, श्री कृष्ण ने रुक्मिणी का पाणिग्रहण कर के उसे रथ में बैठाया और आप भी रथ में बैठ गये। रुक्मिणी और श्री कृष्ण के बैठ जाने पर, बलदेवजी ने रथ को उसी ओर चलाया, जिस ओर से रुक्मिणी अपने साथ की स्त्रियों को छोड़कर बाग में आई थी।

कृष्ण के साथ रथ मे बैठी हुई रुक्मिणी, उसी प्रकार शोभा पाने लगी, जिस प्रकार चन्द्र के साथ रोहिणी और इन्द्र के साथ इन्द्रानी शोभा पाती है। उसका हृदय आनन्द के मारे उछल रहा था। वह, अपने को बड़ी सद्‌भागिनी मान रही थी।

रथ वहाँ आया, जहाँ रुक्मिणी के साथ की स्त्रियाँ खड़ी हुई थीं। रुक्मिणी को एक अपरिचित पुरुष के साथ रथ मे बैठी देख कर, भुआ के सिवा शेष सब स्त्रियाँ आश्चर्य करने लगीं। रुक्मिणी की सखियाँ, रुक्मिणी से कहने लगीं—सखी रुक्मिणी, तुम किस अपरिचित पुरुष के साथ बैठी हो और कहाँ जा रही हो? तुम्हारे लिए हम यहाँ खड़ी हैं, महल में माता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी, विवाह की सब तैयारी हो चुकी है और तुम, हम सब को छोड़ कर कहाँ जा रही हो? सखियों की बात सुन कर, रुक्मिणी कहने लगी—सखियो, मैं रथ में

किसी दूसरे पुरुष के साथ नही बैठी हूँ, किन्तु अपने प्रियतम के साथ ही बैठी हूँ, और वहीं जा रही हूँ, जहां ये लेजा रहे हैं। मेरे पति मुझे मिल गये, इसलिए अब विवाह की तयारी व्यर्थ है। तुम सब घर जाओ। यदि सम्भव हुआ, तो फिर कभी अपना मिलन होगा। तुम, माता से मेरा प्रणाम कहना और कहना, कि रुक्मिणी की चिन्ता मत करो, वह तो जिन्हें चाहती थी और अपने को जिनके अर्पण कर चुकी थी, उनसे मिल गई। पिता से भी मेरा प्रणाम कहना और निवेदन करना, कि रुक्मिणी को वही वर प्राप्त हुआ है, जिसके साथ आप रुक्मिणी का विवाह करना चाहते थे। भाई से भी मेरा प्रणाम कहने के साथ ही कह देना, कि अपने मित्र शिशुपाल को समझा कर घर लौटा दो, जिसमें उसको अधिक हानि न हो। सखियो, मैं तुम लोगो से विलग होती हूँ, इसके लिऐ मुझे क्षमा करना।

रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के रथ में बैठी देख कर, रुक्मिणी की भुआ, बहुत प्रसन्न हुई। उसने, संकेत द्वारा रुक्मिणी से कुछ कहा और जब रथ आगे बढ़ गया, तब सब स्त्रियों के साथ वह भी नगर की ओर चली।

श्री कृष्ण का रथ वहाँ पहुँचा, जहाँ शिशुपाल के सैनिक खड़े हुए थे। रुक्मिणी को, कृष्ण के साथ रथ में बैठी देख कर, सैनिक आश्चर्य में पड़ गये। वे विचारने लगे, कि, यह पुरुष

कहाँ से आ गया और राजकुमारी को कहाँ लिये जा रहा है !
वे, कर्त्तव्य-विमूढ़-से हो गये । इस बात का निश्चय न कर सके,
कि हमें क्या करना चाहिये । अन्त मे कुछ सैनिक, शिशुपाल
को सूचित करने के लिए दौड़े ।

रथ आगे चला । इतने ही में, महर्षि नारद श्रीकृष्ण के
रथ के सामने आ खड़े हुए । श्री कृष्ण, रुक्मिणी और बलराम
ने नारद को प्रणाम किया । नारदजी श्रीकृष्ण से कहने लगे,
अहा महाराज, आपतो बड़े ही चोर हैं । जान पड़ता है, कि
बचपन में खाने पीने की चीजें चुराने की जो आदत थी, वह
बढ़ गई है और अब आप राजकन्या की चोरी करने लगे हैं ।
नारदजी की बात सुन कर, श्रीकृष्ण रुक्मिणी और बलराम
हँस पड़े । श्रीकृष्ण कहने लगे—नारदजी, आप तो. आग लगा
कर पानी के लिए दौड़नेवालों की सी बात कहते हैं । यह सब
आपकी ही करतूत है और अब आप हमें ही चोर बना रहे है ।

नारद—यह तो ठीक है, परन्तु मैंने, आपसे चोरी करने के
लिए कब कहा था ? हाँ, रुक्मिणी की रक्षा करने को अवश्य
कहा था, परन्तु रक्षा तो वही कर सकता है, जो वीर और सामर्थ्य-
वान है । यदि इसी का नाम रक्षा हो, तो इस प्रकार की रक्षा
तो कायर और चोर भी कर सकते हैं ।

नारदजी की बात सुनकर, श्री कृष्ण ने विचार किया कि

वास्तव में यदि मैं रुक्मिणी को लेकर चुपचाप चला गया, तो मेरी गणना चोरों में ही होगी । इसलिए, चुपचाप न चल कर, शिशुपाल और रुक्म को सूचित कर देना चाहिए, जिसमें उनके मन की बात मन ही में न रह जावे और वे जो कुछ कर सकते हैं, वह करलें । इस प्रकार विचार कर, श्रीकृष्ण ने नारद जी से कहा—अच्छा लो, चोरो की भाँति रुक्मिणी को न ले जावेंगे । नारद जी से इस प्रकार कह कर, श्री कृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख उठाया । वे, पांचजन्य शंख को जोर से वजाने लगे, जैसे उसके द्वारा यह कह रहे हो, कि 'हे शिशुपाल और रुक्म, हम कृष्ण और बल्देव, रुक्मिणी को लेकर जा रहे हैं । हम, तुम्हे सूचित करते हैं, जिसमे तुम यह न कह सको, कि—कृष्ण, रुक्मिणी को चोरी से ले गये । यदि तुम दर्प रखते हो, तो अपने सुभटो सहित शीघ्र आओ, हम यहाँ खड़े हैं ।'

शिशुपाल की जो सेना वहाँ खड़ी थी, वह भी शंख की घोर ध्वनि से भयभीत होकर, भाग गई । कुण्डिनपुर नगर भी शंख-ध्वनि से काँप उठा । सब लोग, भय और आश्चर्य के साथ विचार करने लगे, कि यह शंख-नाद किसका है, और क्यों किया गया है ।

उधर भुआ और सब स्त्रियाँ, महल को आईं । रुक्मिणी की सखियाँ, हृदय से तो—रुक्मिणी की आशा पूर्ण होने और

उसे इच्छित पति मिलने के कारण—प्रसन्न थी, परन्तु ऊपर से उदास होकर, रुक्मिणी की माता के सामने गई । रुक्मिणी की सखियो को उदास देख कर, रुक्मिणी की माता ने उनसे पूछा, कि—तुम लोग उदास क्यो हो ? रुक्मिणी कहाँ है ?

सखियाँ—महारानी जी, राजकुमारी तो रथ में बैठ कर चली गई ।

शिखावती— किसके रथ मे ?

सखियाँ—जिन्हे वे चाहती थी और जिन्हे अपना पति बताती थीं, उन्ही श्री कृष्ण के रथ में । राजकुमारी ने, आपको प्रणाम कह कर, आपसे यह निवेदन करने के लिए कहा है, कि—आप, मेरी चिन्ता न करें । मुझे मेरे पति मिल गये और मैं उन्हीं के साथ जा रही हूँ । मै, यहाँ यक्ष की पूजा करने नहीं आई थी, किन्तु अपने पति को पूजा करने आई थी ।

शिखावती—तो क्या वह उस ग्वाल के साथ गई ?

सखियाँ—हाँ महारानी, द्वारकाधीश श्री कृष्ण के रथ मे बैठ कर गई । राजकुमारी, जिस पुरुष के साथ गई हैं, वैसा पुरुप, आज तक हमारे देखने में भी नहीं आया था । राजकुमारी की अभिलाषा, उच्च ही थी । हम तो उस पुरुष का रूप, उसके मुख पर झलकने वाली गंभीरता और उसकी मधुर

मुसकान देख कर, थकथकी-सी रह गई । उस पुरुष के मुख पर, भय या अभिमान का तो चिन्ह भी नहीं था ।

शिखावती—रुक्मिणी की रक्षा के लिए तो सेना भी गई थी, फिर वह कृष्ण, वहाँ कैसे आ गया ?

सखियाँ—हाँ, सेना तो गई थी, फिर भी कृष्ण, कहाँ से और कैसे आ गये, यह हम नहीं जानती । हम सब बाग से बाहर खड़ी रही थीं और राजकुमारी अकेली ही यक्षराज की पूजा करने गई थीं । परन्तु जब वे लौटीं, तब श्रीकृष्ण के रथ में बैठी हुई थीं । हमने उनसे कहा भी, कि माता प्रतीक्षा करती होंगी, घर चलो, परन्तु उनने वही उत्तर दिया, जो हम पहले ही आपसे निवेदन कर चुकी हैं । हाँ—वे यह और कह गई हैं, कि बेचारे शिशुपाल को जैसे तैसे समझा कर विदा कर देना, जिसमें उसकी दुर्दशा न हो ।

शिखावती—रुक्मिणी की भुआ जी कहाँ हैं ?

सखियाँ—वे अपने महल को गईं ।

शिखावती—जान पड़ता है, कि यह उन्हीं के षड्यन्त्र का परिणाम है। चलो, मैं उनके पास चलती हूँ ।

रुक्मिणी की सखियों के साथ शिखावती, अपनी ननद के महल में आई । वह, रुक्मिणी की भुआ से कहने लगी—आप यह क्या कर आई ?

भुआ—जो उचित और न्याय था !

शिखावती—मौर बाँधे चन्देरीराज तो यहाँ बैठे हैं और रुक्मिणी दूसरे पुरुष के साथ—विशेषतः एक ग्वाल के साथ—जावे, क्या यह उचित है ?

भुआ—अपने पति के साथ जाना सर्वथा उचित है, फिर चाहे कितने ही अन्य पुरुष मौर बाँधे क्यों न बैठे रहें।

शिखावती—तब तो जान पड़ता है, कि रुक्मिणी के जाने में आपकी भी सहायता थी।

भुआ—निःसन्देह मेरी सहायता थी। जब सब लोग एक ओर हो गये, रुक्मिणी की सहायता करनेवाला कोई न रहा, तब क्या मैं भी रुक्मिणी की सहायता न करती ? वास्तव में मैंने रुक्मिणी की सहायता नहीं की है, किन्तु सत्य और न्याय की सहायता की है। रुक्मिणी जब शिशुपाल को नहीं चाहती थी और कृष्ण को अपना पति मान चुकी थी, तब उसे बलात् शिशुपाल के साथ विवाह देने को तयार होना और श्रीकृष्ण से वंचित् रखना, क्या न्याय होता ? क्या आपने इस पर विचार किया था ? यदि नहीं, तो फिर मैं रुक्मिणी का साथ देकर, अन्यायपूर्ण कार्य को असफल बनाने का उपाय क्यों न करती ?

शिखावती—आप तो घर की ही थीं, आपका हम सब से विरुद्ध जाना क्या ठीक था ?

भुआ—यदि मेरा, आप से विरुद्ध जाना ठीक न था, तो क्या आपका, अपने पति से विरुद्ध जाना ठीक था ? आप से विरुद्ध होकर रुक्मिणी का साथ देना यदि मेरे लिए अपराध है, तो आपका अपराध, मेरे अपराध से हजारगुना बढ़ कर है ! रुक्मिणी को साथ देने का मेरा कार्य, मै तो अच्छा ही समझती हूँ, आप चाहे अच्छा न समझें। मै तो आप से भी यही कहती हूँ, कि जो होना था, वह हो गया और उचित ही हुआ। अब भलाई इसी मे है, कि आप रुक्म को समझा दो, जिसमे वह श्रीकृष्ण से युद्ध छेड़ कर, स्वयं को उस आग मे भस्म करने के लिए न डाले। यदि रुक्म ने युद्ध किया, तो पहले तो श्रीकृष्ण से विजय पाना ही कठिन है, कदाचित श्रीकृष्ण को जीत भी लिया, तब भी आपकी कन्या का अनिष्ट होगा। रुक्मिणी, जब श्री कृष्ण को चाहती है, तब आपका वाधक होना, किसी भी प्रकार उचित नहीं है।

ननद की बातें सुन कर, शिखावती को चुप हो जाना पड़ा। अब उसे यह भय हो रहा था, कि कहीं रुक्म, श्रीकृष्ण से युद्ध करके अपने प्राण न खो बैठे। साथ ही, उसे पति के कथन के विरोध में सहायता देने का भी पश्चात्ताप हो रहा था।

युद्ध

किन्हीं दो व्यक्ति या दो समूह का, पक्ष विपक्ष में होकर, परस्पर या एक पक्ष का दूसरे पक्ष पर प्रहार करना, मारना, काटना हानि पहुँचाना, युद्ध कहा जाता है। ऐसे युद्ध के लिए मनुष्य तभी तयार होता है, जब उसमें से सात्विक भावना निकल जाती है और उसके स्थान पर, राजसी या तामसी भावना, अपना स्थान जमा लेती है। मनुष्य मे, जब तक सात्विक भावना रहती है, तब तक उसे चाहे कोई मार डाले, उसके शरीर को क्षत-विक्षत कर डाले, या उसकी कोई बड़ी से बड़ी हानि कर डाले, तब भी वह अपने में प्रतिहिंसा की भावना कदापि न आने देगा। इसके विपरीत, यानी सात्विक—भावना के अभाव में मनुष्य, राग या द्वेष के वश होकर युद्ध के लिए तयार होता है और युद्ध करता है।

युद्ध, विशेषतः लालसा की पूर्ति के लिए ही होता है। फिर वह लालसा, द्रव्य, भूमि या स्त्री की हो, या यश बड़ाई

आदि की। परन्तु युद्ध का प्रधान कारण, है लालसा ही। मनुष्य, लालसा के वश होकर ही मनुष्य का भीषण रक्तपात करने कराने को उतारू होता है। यद्यपि कभी कभी, किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों को, लालसा के अधीन व्यक्ति से अपनी या दूसरे की रक्षा करने के लिए भी युद्ध करना पड़ता है, परन्तु इस प्रकार के युद्ध का कारण भी है लालसा ही। यदि वह पहला व्यक्ति, लालसा के अधीन न हुआ होता, तो उस दूसरे व्यक्ति को रक्षा के नाम पर युद्ध क्यों करना पड़ता!

युद्ध, न्याय की रक्षा के लिए भी किया जाता है और अन्याय की वृद्धि के लिए भी। किसी भी कारण से हो और किसी भी लिए किया जावे, धार्मिक दृष्टि से हिंसात्मक युद्ध, निन्द्य और त्याज्य है। प्रसंगवश युद्ध का वर्णन किया जावे यह बात दूसरी है परन्तु कोई भी धार्मिक व्यक्ति, या धर्मशास्त्र युद्ध का कदापि समर्थन नहीं करते।

सैनिकों के मुख से, रुक्मिणी—हरण का समाचार सुन कर, शिशुपाल ने युद्ध की घोषणा कर दी। शिशुपाल की सेना, युद्ध के लिए तयार हो गई। कृष्ण द्वारा अपनी बहन का अपहरण सुन कर, रुक्म भी बहुत क्रुद्ध हुआ। वह भी, कृष्ण को जीवित पकड़ लाने या मार डालने की तयारी करने लगा।

कुण्डिनपुर के प्रमुख नागरिकों ने विचार किया, कि रुक्मिणी, पहले से ही श्रीकृष्ण को चाहती थी। वह, शिशुपाल को पति नहीं बनाना चाहती थी, फिर भी रुक्म ने शिशुपाल को बुलाया और शिशुपाल, बारात साज कर आया। अब, जब रुक्मिणी ने अपना इच्छित वर पा लिया है, तब शिशुपाल और रुक्म का कृष्ण से युद्ध करना, ठीक नहीं है। यदि कृष्ण ने रुक्मिणी की इच्छा के प्रतिकूल उसका अपहरण किया होता, तब तो श्रीकृष्ण का कार्य अन्याय कहा जाता, और हम लोग भी श्रीकृष्ण के विरुद्ध होकर न्याय का साथ देते, तथा श्रीकृष्ण को दण्डनीय मानते, परन्तु स्थिति इसके विपरीत है। रुक्मिणी, स्वयं ही श्रीकृष्ण को चाहती थी, और उनके साथ गई है। अब, शिशुपाल या रुक्म का श्रीकृष्ण से युद्ध करना, निरर्थक और हानिप्रद है। यदि शिशुपाल, युद्ध करने से रुक जावेगा, तो फिर रुक्म भी युद्ध करने न जावेगा। इसलिए चलकर शिशुपाल को समझाना चाहिए। यदि हमारे समझाने से शिशुपाल मान गया, तो जन-हत्या न होगी।

इस प्रकार विचार कर, प्रमुख नागरिक शिशुपाल के पास आये। कुण्डिनपुर के नागरिकों का आना सुनकर, शिशुपाल ने अनुमान किया, कि कृष्ण अकेला ही आया है, इसलिए उसीने इन सबको मेरे पास भेजा होगा और मुझे समझाने का

जाल रचा होगा । उसने, नागरिकों को अपने सामने आने देने की स्वीकृति दी । शिशुपाल के सामने पहुँच कर, नागरिकों ने उसका अभिवादन किया । शिशुपाल ने, नागरिकों से उनके आने का कारण पूछा । नागरिक कहने लगे—महाराज, न्याय कहता है, कि 'कन्या वरे सो वर ।' कन्या का पति वही है, जिसे कन्या अपना पति बनावे । इसके अनुसार रुक्मिणी ने, श्रीकृष्ण को अपना पति बना लिया है । रुक्मिणी, कृष्ण की पत्नी बन चुकी है । ऐसी दशा में अब युद्ध छेड़ कर, मनुष्यों की हत्या कराने से क्या लाभ ? कदाचित आपने युद्ध में विजय भी प्राप्त की, तब भी जो आपको चाहती नहीं है, उसे आप अपनी पत्नी कैसे बना सकते हैं ! इसलिए हमारी प्रार्थना है, कि रुक्मिणी गई, तो जाने दीजिये, हम आपका विवाह, राजपरिवार को किसी दूसरी कन्या के साथ करा देंगे, लेकिन युद्ध में, बड़ी जन-हानि होगी, इसलिए आप युद्ध रोक दीजिये । कृष्ण, यदि रुक्मिणी को बलात् ले गये होते, तब तो हम आपसे युद्ध रोकने का न कहते, परन्तु रुक्मिणी को कृष्ण, बलात् नहीं ले गये हैं, अपितु रुक्मिणी स्वेच्छा से उनके साथ गई है ।

शिशुपाल—वाह, आप लोग मुझे खूब समझाने आये । आपको यह भी विचार नहीं हुआ, कि हम यह बात किस से

कह रहे हैं। यहाँ से टीका पहुँचने पर, मैं बारात सजा कर रुक्मिणी के साथ विवाह करने के लिए आया, अनेक राजा लोग मेरे साथ आये, अब युद्ध से भय खा कर मैं तो दूसरी कन्या से विवाह करलूँ और जिसके लिए आया, उस रुक्मिणी को वह ग्वाला ले जावे। यह कैसे हो सकता है। हम क्षत्रिय युद्ध से भय नहीं करते। उस ग्वाले को हम अभी ही पकड़ कर बाँधे लेते हैं। उसकी क्या ताकत है, कि वह हमारी भावी-पत्नी को चुरा कर भाग जावे! रुक्मिणी तो हमारी है ही, रुक्मिणी के बहाने हमें अपनी शूरता दिखाने और अपने शत्रु कृष्ण को अधीन करने का जो सुअवसर मिला है, उसे हम कदापि नहीं जाने दे सकते। फिर भी आप लोग आये हैं, इसलिए आप लोगों की बात रखने को हम इतना कर सकते हैं, कि यदि वह ग्वाल, रुक्मिणी को छोड़ देगा, तो फिर हम न तो युद्ध ही करेंगे और न उसे मारेंहीगे। यदि आपको युद्ध रोकना ही है, तो आप लोग जाकर उस ग्वाल को समझाओ। उससे कहो, कि तू अकेला ही आया है रुक्मिणी के विवाह के दहेज में प्राण क्यों देता है।

नागरिकों का प्रमुख—कृष्ण से हम कुछ कहें, तो कैसे! रुक्मिणी ने स्वयं ही उन्हें स्वीकार किया है, फिर भी वे, रुक्मिणी को चुरा कर नहीं लिये जा रहे हैं। रही उनके अकेले होने

की बात, लेकिन कृष्ण ने, अकेले ही बड़े बड़े कार्य किये हैं। बचपन में कंस को, अकेले ने ही मारा था। कालीनाग को अकेले ने ही नाथा था। और गोवर्द्धन पर्वत भी, अकेले ने ही उठाया था। वे अकेले हैं, फिर भी उन्हें जीतना कठिन है। इसीलिये हम कहते हैं, कि व्यर्थ ही मनुष्यों का नाश मत कराइये। उनको यह तो मालूम हो ही गया होगा, कि आप अपने साथ इतनी सेना लाये हैं, और आपसे युद्ध होने की आशङ्का उन्हें भी रही होगी, फिर भी वे अकेले ही आये, तो अपने बल पराक्रम के भरोसे पर ही आये होंगे।

शिशुपाल—उसे, हम ऐसे किसी शूर से काम नहीं पड़ा है, इससे उसका साहस बढ रहा है। हमसे मुकाबला होने पर उसे मालूम होगा, कि किसी की भावी-पत्नी को चुरा ले जाना, कैसा होता है।

नागरिक—रुक्मिणी को आप अपनी भावी-पत्नी कहते हैं, तो हम इसका एक उपाय बताते हैं, जिससे यदि रुक्मिणी आपकी भावी-पत्नी होगी, तो वह आपको मिल भी जावेगी और युद्ध भी रुक जावेगा। हम रुक्मिणी के स्वयंवर का प्रबन्ध कराते हैं। स्वयंवर-मण्डप में, आप भी बैठ जाइये और कृष्ण भी बैठ जावें। रुक्मिणी, आप दोनों में से जिसके गले में वरमाला डाल दे, वही रुक्मिणी का पति हो।

शिशुपाल—वाह, बड़ी अच्छी युक्ति निकाली ! रुक्मिणी जब कृष्ण के रथ में ही बैठ गई, तो अब वरमाल डालने में शेष ही क्या रहा ! हम बारात सजा कर आये हैं, इसलिए अब चाहे रुक्मिणी की इच्छा हो या न हो, उसे हमारे साथ विवाह करना ही पड़ेगा। हम, स्वयंवर में जा कर रुक्मिणी की वरमाल की प्रतीक्षा क्यों करें ? वह तो हमारी पत्नी ही है। हम अभी उस ग्वाल को जीत कर रुक्मिणी को लाते हैं।

नागरिक—यदि आपको हमारी यह बात भी स्वीकार नहीं है और आप कृष्ण से युद्ध ही करना चाहते हैं, तो आप और कृष्ण, दोनों द्वन्द्व-युद्ध कर लीजिये। बेचारी सेना का मत कट-वाइये, दोनों के युद्ध में जो जीते, वही रुक्मिणी का पति हो।

शिशुपाल—अब आप लोगों के आने का भेद खुल गया ! मालूम हो गया, कि आप लोग कृष्ण की ओर से ही आये हो। कृष्ण, अकेला है। उसे मेरा भय है। इसी से वह चाहता है, कि या तो युद्ध रुक जावे, या स्वयंवर कर लिया जावे, या जैसा मैं अकेला हूँ उसी तरह शिशुपाल भी अकेला हो जावे। लेकिन उसकी यह चाल, किसी मूर्ख पर ही काम कर सकती है, उसकी चालाकी में, मैं नहीं फँस सकता। मेरे साथ ये सब योद्धा, तमाशा देखने के लिए नहीं आये हैं ! इनके होते हुए, मुझे युद्ध करने की आवश्यकता भी क्या है ! जान पड़ता है, कि आप

लोगों ने, कृष्ण से घूस खाई है, इसीसे उसका पक्ष लेकर आये हो। चलो यहाँ से चले जाओ! युद्ध के शुभ मुहूर्त के समय, आप लोगों की ऐसी बातें, मैं नहीं सुनना चाहता।

नागरिक—हम तो इसलिए आये थे, कि सेना सहित आप, कृष्ण से युद्ध करके अपने को संकट में न डालें, परन्तु आप तो अपने ही गर्व में हैं। हम फिर कहते हैं, कि कृष्ण से युद्ध करने पर, आपको बड़ा ही पश्चाताप करना पड़ेगा। इस पर भी, आप अपनी हठ नहीं छोड़ते हैं, तो हम भी देखते हैं, कि आप कैसे वीर हैं! और कृष्ण को जीत कर, रुक्मिणी के साथ किस प्रकार विवाह करते हैं!

यह कह कर नागरिक, अपने-अपने घर चले गये। शिशुपाल की सेना, युद्ध के लिए तयार ही खड़ी थी। युद्ध के बाजे बज रहे थे। चारण लोग, वीरों को संग्राम के लिए उत्तेजित कर रहे थे। अपने सैनिकों और साथ के राजाओं से शिशुपाल कहने लगा, कि आप लोग मेरे साथ आये और नगर को घेरकर सब तरह का प्रबन्ध भी किया, फिर भी यह दुर्घटना घटी ही। नीच कृष्ण, न मालूम कहाँ से तथा कैसे आगया और यह षड्यन्त्र न मालूम कैसे रचा गया। अपने को पता भी न लगने पाया। जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब आप लोगों के होते हुए भी, यदि वह ग्वाल रुक्मिणी को ले गया, तो आप सबका

आना तथा इतना प्रबंध करना भी निरर्थक होगा और लोगों मे उपहास भी होगा।

शिशुपाल की बात सुनकर, शिशुपाल के सेनापति और उसके साथ के राजा लोग, उससे कहने लगे—आप विश्वास रखिये, हम अभी कृष्ण को पकड़े लाते हैं। वह गोपियों का दूध दही चुराते चुराते, बड़ी चोरी भी करने लगा है, परन्तु आज उसे मालूम हो जावेगा, कि चोरी का फल कैसा होता है। उस दस्यु को दण्ड देने के लिए, हम लोग बहुत हैं, इसलिए आप यहीं ठहरिये, आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह ग्वाला भाग न गया, तो आज अवश्य ही हमारे द्वारा काल-कवलित होगा।

शिशुपाल—हाँ, आप लोग ऐसे ही वीर हैं। अच्छा तो जाइये और अपनी वीरता दिखाइये।

टिड्डीदल के समान शिशुपाल की सेना, श्री कृष्ण को पकड़ने के लिए चली। शिशुपाल की प्रचण्ड सेना आती देख कर रुक्मिणी बड़ी चिन्तित हुई। वह विचारने लगी, कि मुझ-दुष्टा ने, प्राणनाथ को संकट मे डालकर, बड़ा ही अनर्थ किया है। इससे तो अच्छा यही था, कि मैं स्वयं ही आत्महत्या कर लेती, या माता मुझे जन्म देते ही मार डालती। आज मेरे ही कारण यह झगड़ा मच रहा है। यद्यपि ये दोनों भाई बलवान

हैं, लेकिन हैं तो दो ही व्यक्ति! इतनी सेना से दो आदमियों का विजय पाना, बहुत ही कठिन है। यद्यपि लोहा कठोर होता है, फिर भी जलते हुए बहुत से कोयले, उसे गला ही देते हैं। इसी प्रकार, बहुत आदमियों से केवल दो आदमी, कब तक लड़ सकते है।

चिन्ता के कारण, रुक्मिणी का मुख मुर्झा गया। रुक्मिणी का मुर्झाया हुआ मुख देखकर, कृष्ण ने उससे पूछा—राजकुमारी तुम उदास क्यों हो? कहीं पिता का घर छूटने का तो दुःख नहीं है। यदि यही दुःख हो तो, हम तुम्हे तुम्हारे पिता के यहाँ पहुँचा दें।

रुक्मिणी—किसी भी पतिव्रता स्त्री को, पति के मिलने से जितनी प्रसन्नता होगी, उतनी प्रसन्नता, पिता के घर रहने में कदापि नहीं हो सकती। पतिव्रता, पति के यहाँ अपना जीवन व्यतीत करने में ही आनन्द मानेगी। मुझे, पिता का घर छूटने का दुःख नहीं है, किन्तु इस बात की चिन्ता है, कि मेरे लिए आप ऐसे महापुरुष संकट में पड़ रहे हैं। लोग, मेरे भाग्य की सराहना करते हैं, परन्तु वास्तव में मैं, अभागिनी हूँ और मेरे अभाग्य के कारण ही आप को इतनी बड़ी सेना से युद्ध करना पड़ेगा।

कृष्ण—मैं समझ गया। तुम, शिशुपाल की सेना देख कर यह भय कर रही हो, कि इस विशाल सेना से ये दो आदमी कैसे तो युद्ध करेंगे और कैसे विजय प्राप्त करेंगे। परन्तु तुम इस बात की चिन्ता मत करो, कि यह सेना बहुत है और ये दो ही आदमी हैं। एक ही सूर्य, बहुत से अन्धकार को नष्ट कर देता है। तृण-समूह को, आग की ज़रा-सी चिनगारी भी जला कर भस्म कर देती है। इसी प्रकार हम भी इस सारी सेना को देखते ही देखते मार भगाते हैं।

कृष्ण की बात सुनकर, रुक्मिणी को धैर्य हुआ। उसकी चिन्ता, दूर हुई, परन्तु कुछ ही देर बाद श्री कृष्ण ने उसे फिर चिन्तित देखा। कृष्ण ने रुक्मिणी से पूछा—राजकुमारी, तुम्हें फिर किस चिन्ता ने आ घेरा? क्या मैं इस सेना को परास्त न कर सकूँगा?

रुक्मिणी—नहीं नाथ, आपका कथन सुनने के पश्चात्, मुझे इस सेना की पराजय के विषय में किंचित भी सन्देह नहीं रहा; परन्तु अब मुझे इस बात की चिन्ता है, कि मैं अभागिन, पिता-गृह के नाश का कारण बनूँगी। स्त्री का कर्त्तव्य है, कि वह पतिगृह और पितागृह, दोनों की कुशल चाहे, और दोनों का कल्याण करे, परन्तु मैं, इस कर्त्तव्य का पालन न कर सकूँगी।

कृष्ण—क्यों?

रुक्मिणी—मेरा भाई रुक्म, क्रोधी और हठी है। वह आप से युद्ध करने अवश्य आवेगा और इस कारण मैं, पितृ-गृह, घातिका कहाउँगी।

रुक्मिणी की बात सुन कर, कृष्ण ने विचारा, कि वास्तव मे रुक्मिणी का कथन ठीक है। एक सहृदय-स्त्री को इस प्रकार विचार होना स्वाभाविक है। उन्होने, रुक्मिणी से कहा—राजकुमारी, मै तुम्हारी यह बात सुनकर, और तुम्हारे सुन्दर विचार जान कर, बहुत प्रसन्न हूँ। मैं, तुम्हे किसी भी प्रकार दु:खित नहीं करना चाहता, इसलिए तुम चिन्ता दूर करो। मैं रुक्म को न मारूँगा।

कृष्ण से, अपने भाई की प्राण-रक्षा का विश्वास मिल जाने पर रुक्मिणी की चिन्ता मिट गई। उसे, बहुत प्रसन्नता हुई। इतने ही मे, शिशुपाल की सेना भी सामने आगई। शिशुपाल की सेना को सामने देखकर, श्री कृष्ण ने फिर पांचजन्य शख बजाया और अपना धनुप चढाकर, उसे टंकारा। शंख और धनुष की घोर ध्वनि से, वहाँ की पृथ्वी, काँपने-सी लगी। सेना के अनेक आदमी तो, उस ध्वनि से भयभीत होकर ही भाग गये। जिनमे कुछ अधिक साहस था, वे आगे बढ़े और चारों ओर से श्रीकृष्ण को घेर कर, मारो, पकड़ो आदि कहते हुए, श्री कृष्ण के रथ पर बाणवर्षा करने लगे।

शिशुपाल की सेना, द्वारा छोड़े गये बाणों को व्यर्थ करते हुए श्रीकृष्ण, अपने बाणों से शिशुपाल की सेना को घायल करने लगे। शिशुपाल की सेना, श्री कृष्ण के कठिन बाण न सह सकी। सैनिक लोग, श्री कृष्ण के बाणों से घायल हो होकर, पृथ्वी पर गिरने लगे। सेना को इस प्रकार नष्ट होते देख कर, शिशुपाल का सेनापति, सेना को उत्तेजित करता हुआ आगे बढ़ा, परन्तु श्री कृष्ण ने एक ही बाण से, उसका मुण्ड रुण्ड से भिन्न कर दिया। सेनापति के मरते ही, शेष सेना रण-स्थल त्याग कर भागी। सेना को भागती देख कर, श्रीकृष्ण ने भी धनुष रख दिया और वे, शंख द्वारा विजयघोष करने लगे।

भागी हुई सेना, शिशुपाल के पास गई। उसने सेनापति के मारे जाने और सेना नष्ट होने का सार वृत्तान्त, शिशुपाल को सुनाया। सेनापति के मारे जाने का समाचार सुन कर, शिशुपाल को बड़ा ही क्रोध हुआ। क्रोध के मारे वह, अपने होंठ चाबने लगा। उसने, शेष सेना को युद्ध के लिए तयार होने की आज्ञा दी, और साथी राजाओं सहित स्वयं भी, युद्ध के लिए तयार हुआ।

सेना सहित शिशुपाल, रणस्थल में आया। श्रीकृष्ण का रथ, वहाँ खड़ा हुआ था। श्रीकृष्ण को देखकर शिशुपाल

अपनी सेना को उत्तेजित करता हुआ कहने लगा, कि—मैं, अपने सेनापति का बदला लेने के लिए, कृष्ण बलदेव को मारे बिना कदापि न छोड़ूँगा। शिशुपाल और उसकी सेना ने श्रीकृष्ण के रथ को चारो ओर से घेर लिया, और रथ पर बाण-वर्षा करने कराने लगा। अपने पर बाणवर्षा होती देख कर, श्रीकृष्ण ने भी अपना धनुष उठाया। उसी समय, बल्देवजी श्रीकृष्ण से कहने लगे—भैया, यद्यपि अपराधी होने के कारण शिशुपाल दण्ड का पात्र है, फिर भी यह, भुआ का लड़का भाई है, और आपने इसके ९५ अपराध क्षमा करने का भुआ को वचन दिया है। इसलिए इसको मारना मत। इसका अपमान ही इसके अपराध का पर्याप्त दण्ड है। बल्देवजी की बात स्वीकार करते हुए, श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, कि मैं शिशुपाल का बध न करूँगा।

अपने सारंग धनुष द्वारा तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाण छोड़ कर श्रीकृष्ण, शिशुपाल की सेना को, काटने लगे। शिशुपाल की सेना प्रतिक्षण घटने लगी। यद्यपि शिशुपाल अपनी सेना का उत्साह बढाता जा रहा था, परन्तु अन्त मे वह सेना को भागने से न रोक सका। उसकी बची बचाई सेना, युद्ध-स्थल छोड़ कर भागी। शिशुपाल अकेला रह गया, परन्तु वह भी अधिक देर तक न टिका रह सका।

वह भी रण छोड़ कर अपने डेरे को भाग गया। शिशुपाल और उसकी सेना के भागते ही, श्रीकृष्ण ने पाँचजन्य शंख से विजयनाद किया।

शिशुपाल की हार का समाचार, सारे नगर में फैल गया। रुक्म ने भी सुना, कि शिशुपाल और उसकी सेना हार गई है! शिशुपाल की हार से रुक्म को समझ लेना चाहिए था, कि जब अनेक साथी राजाओं सहित विशाल सेना का स्वामी शिशुपाल भी श्रीकृष्ण से हार गया है, तब मेरी क्या शक्ति है, जो कृष्ण को जीत सकूँ! परन्तु क्रोध और अभिमान के वशीभूत रुक्म को, यह विचार कैसे हो सकता था! रुक्मिणी को कृष्ण ले गये, यह समाचार सुनते ही उसने युद्ध की घोषणा तो करा ही दी थी और उसकी सेना भी, एकत्रित तथा सुसज्जित थी। वह, क्रोध करके कह ही रहा था, कि उस निर्लज्ज ग्वाल को, किंचित भी लज्जा नहीं है। उसे यहाँ किसने बुलाया था! वह, बिना बुलाये ही आया, और भेद पाकर बहन को हरण किये जा रहा है। मैं, आज पृथ्वी पर से कृष्ण का नाम ही उठा दूँगा!

रुक्म, इस प्रकार क्रोध कर रहा था, परन्तु शिशुपाल की सेना युद्ध कर रही है इसलिए कृष्ण से युद्ध करने नहीं गया था। वह सोचता था, कि—शिशुपाल की और मेरी सम्मिलित

सेना ने यदि कृष्ण को मारा या परास्त किया, तो विजय किसकी सेना ने की यह विवाद खड़ा हो जावेगा । इसलिए पहले यह देख लेना चाहिए, कि शिशुपाल की सेना, युद्ध मे क्या करती है। फिर मैं तो कृष्ण-विहीन पृथ्वी करूँगा ही ।

रुक्म ने जब यह सुना, कि शिशुपाल और उसकी सेना कृष्ण से हार गई है, तब उसने अपनी सेना लेकर कृष्ण पर चढाई कर दी । उसने सेना द्वारा कृष्ण के रथ को घेर लिया, और कृष्ण के सामने जाकर कहने लगा—अरे निर्लज्ज ग्वाल, तेरा साहस इतना बढ़ गया है, कि तू मेरी बहन को हरण करे । ले, अपने इस अपराध का फल भोग । यह कह कर रुक्म, कृष्ण पर बाण बरसाने लगा और कृष्ण, उसके तथा उसकी सेना के अस्त्र शस्त्र निष्फल करने लगे । इसी बीच मे अवसर पाकर श्रीकृष्ण ने, रुक्म की सेना के सेनापति को मार गिराया तथा रुक्म के हाथ का धनुष काट डाला । धनुष कटने और सेना-पति के मरने से, रुक्म को बहुत ही क्रोध हुआ । वह, गदा लेकर रथ से उतर पड़ा और कृष्ण के रथ पर झपटा । उसने जोर से अपनी गदा, श्रीकृष्ण के रथ पर मारी, जिससे श्रीकृष्ण के रथ की ध्वजा टूट गई । कृष्ण ने विचार किया, कि मैं रुक्मिणी को वचन दे चुका हूँ, कि तुम्हारे भाई रुक्म को न मारूँगा और रुक्म, कायरों की तरह भागनेवाला नहीं है । ऐसी

दशा में यदि इसे स्वतन्त्र रहने दिया, तो यह अस्त्र शस्त्र चलाना बन्द न करेगा। इस प्रकार विचार कर उन्होंने, बल्देवजी को सैन की। कृष्ण का अभिप्राय जान कर बल्देवजी, रथ से कूद पड़े। उन्होंने, झपट कर रुक्म को पकड़ लिया और उसे बंदी बना कर, रथ में डाल लिया। रुक्म के बन्दी होते ही, उसकी सेना भी तितिर बितिर होकर भाग गई।
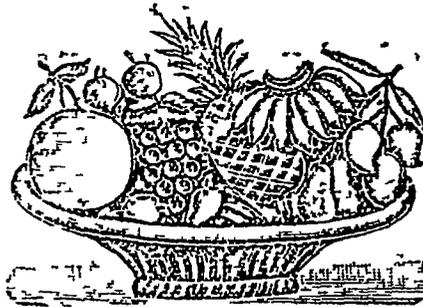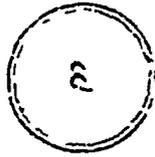
अंत में—

गुणवदगुणवद्वाकुर्वता कार्य मादौ ।
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ॥
अतिरभस कृताना कर्मणामाविपत्ते—
र्भवति हृदयदाही शल्य तुल्यो विपाकः ॥

अर्थात्—काम करने वाले बुद्धिमान को, काम के अच्छे बुरे परिणाम का विचार करके तब काम प्रारम्भ करना चाहिए। क्योंकि, बिना विचारे अति शीघ्रता से किये हुए काम का फल, मरणकाल तक हृदय को जलाता और उसमें काँटे की तरह खटकता रहता है।

मनुष्य को, कार्य के विषय मे, न्याय अन्याय और सत्य असत्य देख कर, कार्य के परिणाम पर विचार किर लेना उचित है। साथ ही, सज्जनो और हितैषियों की भी सम्मति जान लेनी चाहिए और फिर जो कार्य न्याय तथा सत्य से अनुमोदित हो, जिसके करने मे हितैपी और सज्जन लोग भी सहमत हो, उस कार्य को करना तो अनुचित

नहीं है, लेकिन जो कार्य अन्याय-पूर्ण हो, जिससे सत्य की हत्या होती हो, और जिसके विषय में सज्जनों तथा हितैषियो का विरोध हो, वह कार्य कदापि न करना चाहिए । कार्य की अच्छाई बुराई का निर्णय किये विना, उसके परिणाम पर विचार किये विना, और सज्जनो तथा हितैपियो की सहमति विना, हठ मूर्खता, क्रोध या अभिमान वश किये गये कार्य से, अभीष्ट फल भी प्राप्त नहीं होता, जीवन भर के लिए पश्चात्ताप भी रहता है, हानि भी उठानी पड़ती है, और सज्जनो तथा हितैषियों के सहयोग से भी वंचित रहना पड़ता है । इसके विपरीत—अर्थात् औचित्य तथा परिणाम पर विचार करके, सज्जनों तथा हितैषियो की सहमति से—किये गये कार्य का परिणाम प्राय: अच्छा ही होता है, कभी कभी चाहे बुरा हो । कदाचित इस रीति से किये गये कार्य का परिणाम बुरा भी हो, तब भी वैसी हानि नहीं होती, न वैसा पश्चात्ताप ही होता है, जैसी हानि और जैसा पश्चात्ताप इसके विरुद्ध रीति से किये गये कार्य के दुष्परिणाम से होता है । नीतिकारो का कथन है —

सुहृद्‌भिराप्तैरसकृद्विचारितं
स्वय च बुद्धिया प्रविचरिताश्रयम् ।
करोति कार्य्यंखलु य. स बुद्धिमान्
स इव लक्ष्म्या यशसाञ्च भाजनम् ॥

अर्थात्—जो मित्र तथा आप्त पुरुषों से सलाह लेकर और अपनी बुद्धि से विचार कर काम करता है, वह लक्ष्मी और यश का पात्र होता है।

नीतिकारों के इस कथन का दूसरा अभिप्राय यही होगा, कि जो आदमी, मित्र और आप्त पुरुषों से सलाह लिये बिना तथा अपनी बुद्धि से विचारे बिना काम करता है, वह विपत्ति और अपयश का पात्र होता है। मनुष्य को उचित है, कि वह, विपत्ति और अपयश के कार्य न करे।

कथा का उद्देश्य, कार्य का परिणाम बताना ही होता है। अर्थात्, यह दिखाना होता है, कि अमुक व्यक्ति ने अमुक अच्छा कार्य किया, तो यह परिणाम हुआ और बुरा कार्य किया, तो यह परिणाम हुआ। कार्य का फल बता कर, अच्छे कार्य में प्रवृत्त होने और बुरे कार्य से निवृत्त होने का आदर्श-पूर्ण उपदेश ही, कथा का ध्येय है। यह कथा भी, ऐसे ही ध्येय की पूर्ति के लिए है। इसके द्वारा भी, कार्य का उचित अनुचित परिणाम ही बताया गया है। इसलिए अब देखते हैं, कि इस कथा का अन्त किस परिणाम के साथ होता है।

भक्त लोग, इस कथा को आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हैं। वे, इस कथा पर आध्यात्मिक विचार करते हैं, और इस कथा को आध्यात्मिक रूप देते हैं। वे कहते हैं, कि हमें विवाह या युद्ध की आवश्यकता नहीं है, हमें तो इसमें से आत्मकल्याण में

सहायक तत्त्व शोधना है। इसके लिए वे, रुक्म को क्रोध, शिशुपाल को अभिमान, रुक्मिणी को सद्बुद्धि और कृष्ण को आत्मा मानते हैं। इस कथा में, ये ही चार पात्र मुख्य हैं, शेष गौण हैं, और ये मुख्य पात्र भक्तों की दृष्टि मे क्रोध, अभिमान, सद्बुद्धि, और आत्मा के रूप हैं। उनका कथन है, कि रुक्म रूपी क्रोध के आमन्त्रण पर, शिशुपाल रूपी अभिमान, रुक्मिणी रूपा सद्बुद्धि को अपनी अनुगामिनी बनाना चाहता है, परन्तु रुक्मिणी रूपा सद्बुद्धि, कृष्ण रूपी आत्मा की शरण जाकर अपनी रक्षा चाहती है। रुक्मिणी रूपा सद्बुद्धि को चाहने वाला—या उसकी रक्षा करने वाला—कृष्ण रूपी आत्मा, रुक्म और शिशुपाल रूपी क्रोध और अभिमान को परास्त करके रुक्मिणी रूपा सद्बुद्धि की रक्षा करता है, जो हमारे लिए मार्ग-दर्शक आदर्श है।

यह तो उन भक्तो की दृष्टि हुई, जिनका लक्ष्य केवल आत्म-कल्याण ही है, लेकिन सांसारिक परन्तु न्यायप्रिय लोग, इस कथा को अपनी दृष्टि से देखते हैं। वे, कथा के पात्रों को इसी रूप मे मानकर, इस कथा को गार्हस्थ्य जीवन की मार्ग-दर्शिका समझते हैं। उनका कथन है कि यद्यपि माता पिता और भाई को, कन्या का विवाह करने, उसके लिए योग्य वर खोजने का अधिकार अवश्य है, लेकिन इस अधिकार का

उपयोग, कन्या की रुचि और उसकी स्वीकृति की अपेक्षा रखता है। जब तक कन्या की स्वीकृति प्राप्त न कर ली जावे, तब तक उसका विवाह करने का अधिकार किसी को नहीं है। कन्या को उचित सम्मति देना, वंश-मर्यादा की ओर उसका ध्यान खींचना और उसके हिताहित को उसके सामने रखना तो ठीक है; परन्तु कन्या की रुचि की अवहेलना करना, उसके अधिकार की उपेक्षा करना और बलात् उसका विवाह करना, अन्याय है। रुक्म ने, रुक्मिणी पर ऐसा ही अन्याय करना चाहा था। उसने रुक्मिणी की स्वीकृति और रुचि की उपेक्षा करने के साथ ही, अपने वृद्ध तथा अनुभवी पिता की सम्मति की भी अव-हेलना की थी, और पिता का अपमान किया था। रुक्म का कार्य, पिता के प्रति पुत्र का, और बहन के प्रति भाई का जो कर्त्तव्य है, उसके विपरीत था। रुक्म की तरह, रुक्म की माता ने भी अपना कर्त्तव्य भुला दिया था। उसे उचित था, कि वह सबसे पहले अपनी कन्या की इच्छा जानती और फिर-पति या पुत्र, दोनों में से-उसकी बात का समर्थन करती, जिसकी बात कन्या की इच्छा के अनुकूल होती। लेकिन उसने, ऐसा नहीं किया। रुक्म की ही तरह शिशुपाल भी, न्याय को ठुकरा कर अन्याय करने पर उतारू हुआ था। किसी भी पुरुष को, न तो अधिकार ही है, न उसके लिए यह उचित ही

है, कि जो कन्या उसे नहीं चाहती, उसके साथ बलपूर्वक विवाह करे और उस कन्या को, उस पुरुष से वंचित रखे, जिसे कि वह कन्या चाहती है। अभिमानवश शिशुपाल ने, इस कर्त्तव्य की अवहेलना तो की ही, साथ ही अपने शुभचिन्तकों और श्रद्धेय जनों की शिक्षा को भी उसने नहीं माना। अन्याय करने और कर्त्तव्य की अवहेलना करने के कारण, रुक्म, शिखावती और शिशुपाल, दण्ड के पात्र हैं। यदि इन्हें दण्ड न मिलता, तो रुक्मिणी तो अत्याचार का शिकार होती ही, भीम ज्योतिषी, नारद, भावज, और शिशुपाल की पत्नी की सत्यानुमोदित बात का भी संसार पर बुरा प्रभाव पड़ता।

दूसरी ओर रुक्मिणी को यह अधिकार था, कि वह मर्यादा की रक्षा करती हुई, इच्छित पति प्राप्त करे। यदि उसके इस अधिकार की रक्षा न होती, यदि रुक्म और शिशुपाल के अत्याचार से उसे अपना निश्चय त्यागना पड़ता। या अपने प्राण खोने पड़ते—तो इससे, सत्य और न्याय को दूषण लगता। इसलिए उसकी रक्षा होना आवश्यक था। उसने कृष्ण की शरण ली थी, इसलिए श्रीकृष्ण का कर्त्तव्य था, कि वे शिशुपाल और रुक्म से रुक्मिणी की रक्षा करते।

कन्या के अधिकार, उनकी रक्षा और उन्हें लूटने के प्रयत्न का परिणाम बताने के साथ ही यह कथा, गृहस्थ स्त्रियों को भी

यह शिक्षा देती है, कि रुक्मिणी ने श्री कृष्ण को, केवल मन और वचन से ही पति माना था, शरीर से तो उसने श्री कृष्ण को देखा भी नहीं था। फिर भी रुक्मिणी ने, कष्टों और प्रलोभनों के सामने मस्तक नहीं झुकाया और शिशुपाल को अपना पति बनाना स्वीकार नहीं किया, तो जिन्होंने मन, वचन और काय तीनों से किसी पुरुष को पति बनाया है, उन स्त्रियों का कर्त्तव्य क्या है ? और उन्हे पतिव्रत की रक्षा के लिए कितनी दृढता रखनी चाहिए—उनमे कष्टसहन की कितनी क्षमता होनी चाहिए—और उन्हे प्रलोभनो को किस प्रकार ठुकराना चाहिए।

इस प्रकार न्यायशील गृहस्थ, इस कथा को न्याय-रक्षा की दृष्टि से देखते हैं और अन्यायी गृहस्थ, इसे किसी और ही दृष्टि से देखते होंगे। ऐसा होना, स्वाभाविक भी है। पात्र वस्तु को अपने अनुकूल रूप से ही गृहण करता है।

इस कथा मे, हम साधुओ को ग्रहण करने योग्य सार-रुक्मिणी की दृढ़ता है। रुक्मिणी ने जो प्रण किया, उसे तुडवाने के लिए शिशुपाल और रुक्म ने अनेक प्रयत्न किये, फिर भी वह अपने निश्चय पर से न डिगी। अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए, कष्ट सहती रही, प्राण देने तक को तयार हो गई, परन्तु रुक्म के भय या शिशुपाल के प्रलोभन में पड़कर, उसने अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध—शिशुपाल को पत्नी बनना स्वीकार न किया।

यह दृढ़ता, हम साधुओं के लिए अनुकरणीय है। पतिव्रता का उदाहरण, भक्तो के लिए भी मार्गदर्शक होता है।

तात्पर्य यह, कि जो लोग कथा द्वारा किसी प्रकार की शिक्षा लेना चाहते हैं, उनके लिए यह कथा शिक्षा देनेवाली है और जो इसे केवल उपन्यास जानते हैं, उनके लिए उपन्यास ही है। यह तो, अपनी अपनी दृष्टि और अपनी अपनी भावना पर निर्भर है। जिसकी जैसी दृष्टि और जैसी भावना होगी वह, प्रत्येक बात मे से वैसा ही अभिप्राय निकालेगा। अब तो यह देखना है, कि इस कथा का अन्तिम परिणाम क्या है!

श्री कृष्ण से परास्त होकर शिशुपाल, अपने डेरे को भाग आया। वह विचारने लगा, कि अब मैं क्या करूँ। मुझे, ज्योतिषी, भावज, नारद और मेरी पत्नी ने कुण्डिनपुर आने से रोका था। मेरे सम्मान की रक्षा के लिए भावज तो, अपनी बहन का विवाह भी मेरे साथ कराती थी, परन्तु मैने न तो उनकी ही बात मानी, न और सब को ही। यहाँ के नागरिक भी मुझे समझाने आये थे। यदि नागरिकों की बात मान कर भी मैं युद्ध करने न जाता, तो न तो मेरी सेना ही नष्ट होती, न मुझे पराजय ही मिलती और न मेरा अपमान ही होता! अब मैं चन्देरी भी कैसे जाऊँ! वहाँ के लोग मुझे क्या कहेंगे! मैं, भावज को अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा!

शिशुपाल, इसी प्रकार पश्चात्ताप कर रहा था। उसे, चन्देरी लौट जाने में भी लज्जा हो रही थी, परन्तु साथ ही यह भी विचार होता था, कि यदि चन्देरी न जाऊँ, तो फिर कहां जाऊँ। इतने ही मे उसने सुना, कि सेना सहित रुक्मकुमार ने कृष्ण पर चढ़ाई की है। यह समाचार सुन कर, शिशुपाल को कुछ धैर्य मिला वह विचारने लगा, कि यदि रुक्मकुमार ने कृष्ण को जीत लिया, तो वे, निश्चय ही रुक्मिणी का विवाह मेरे साथ करेंगे और रुक्मिणी के साथ मेरा विवाह हो जाने पर चन्देरी जाने में वैसी लज्जा न होगी, जैसी लज्जा, रुक्मिणी के बिना जाने में है। यद्यपि अपनी पराजय पर से शिशुपाल को यह आशा न रखनी चाहिए थी, कि रुक्म कृष्ण को जीतेगा; उसे सोचना चाहिए था कि जब मेरी विशाल सेना और सहायक राजाओं सहित मैं भी कृष्ण को जीतने मे असमर्थ रहा, तो रुक्मकुमार, कृष्ण को कैसे जीत सकेगा। परन्तु स्वार्थ मे ये सब बाते नहीं दिखतीं। स्वार्थी मनुष्य को तो अपनी ही बात दिखती है। भीष्म, द्रोण, कर्ण प्रभृति बड़े बड़े योद्धाओं को पाण्डवो ने मार डाला था, फिर भी दुर्योधन को शल्य से यह आशा थी, कि शल्य, पाण्डवो को जीतेगा। इसी तरह शिशुपाल भी, रुक्म द्वारा कृष्ण की पराजय की आशा कर रहा था।

शिशुपाल, रुक्म की विजय की प्रतीक्षा करने लगा। उसे अब भी रुक्म की विजय के पीछे रुक्मिणी प्राप्त होने की आशा थी, लेकिन उसकी यह आशा, अधिक देर तक न रही। कुछ ही देर बाद, रुक्म की सेना नगर में भाग आई। रुक्म के बंदी होने का समाचार, शिशुपाल ने भी सुना। यह समाचार सुनते ही, शिशुपाल की सब आशा नष्ट हो गई। अब उसे कुण्डिनपुर में ठहरना भी बुरा मालूम होने लगा। उसे भय हो रहा था, कि कुण्डिनपुर के नागरिक, रुक्म के बन्दी होने का कारण मुझे ही बनावेंगे और मुझे ही धिक्कारेंगे। क्योंकि, वे मुझे समझाने आये थे, फिर भी मैंने उनकी बात नहीं मानी और युद्ध छेड़ दिया।

अपनी बची खुची सेना लेकर, हृदय में पश्चात्ताप करता हुआ शिशुपाल, कुण्डिनपुर से निकल चला। उसके हृदय में यही विचार हो रहा था, कि मैं चन्देरी किस प्रकार जाऊँ। वहाँ से मैं बारात सजाकर सेना सहित बड़ी उमङ्ग से चला था, और अब सेना नष्ट करा कर बिना विवाह किये ही वहाँ जाऊँगा, तो लोग मुझे क्या कहेंगे। मैं जब चला था, तब तो नगर में मंगल गान हो रहा था, लेकिन अब मेरे चन्देरी पहुँचने पर, मृत सैनिकों के आत्मीयजनों का रुदन सुनने को मिलेगा। उनकी स्त्रियाँ मुझे दुराशीष देंगी। मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा! भावज

जब मेरा ध्यान उस तरफ खींचेगी, और अपनी कही हुई बातों का स्मरण करावेगी, तब मैं क्या कहूँगा ! हाय ! इस प्रकार अपमानित होकर चन्देरी जाने से तो मर जाना अच्छा है ! अब तक मै वीर कहाता था, परन्तु अब कायर कहाऊँगा ! मेरी पत्नी से, मैं क्या कहूँगा ! यह कैसे कहूँगा, कि तुम्हारी बात नहीं मानी, उसका यह परिणाम हुआ ! मैं तो अब चन्देरी नहीं जाऊँगा ! आत्महत्या करके अपनी जीवनलीला यहीं समाप्त कर दूँगा ! और सब की बात न मान कर, अभिमान और हठ करने का प्रायश्चित्त करूँगा !

इस प्रकार विचार कर शिशुपाल ने अपने साथियो से कहा, कि तुम सब चन्देरी जाओ, मै चन्देरी न आऊँगा, किन्तु यहीं मरूँगा ! यह कह कर वह, प्राणत्याग के लिए उद्यत हुआ । शिशुपाल के मन्त्री ने विचार किया, कि इस समय शिशुपाल को बड़ा दु ख है । यदि इसे समझाकर आत्महत्या से न रोका गया, तो यह मर जावेगा ! उसने, शिशुपाल का हाथ पकड़ कर उससे कहा—महाराज, आप यह क्या कर रहे हैं ! इस प्रकार प्राण त्याग करना, मूर्खों और कायरों का काम है । आत्महत्या करने से, क्षति की पूर्त्ति भी तो नही हो सकती ! वीरो को, या तो जय मिलती है, या पराजय । जो लड़ता है, वह कभी हारता भी है । जो कायर है, वह लड़ेगा ही नही, तो हारेगा क्यो ! जय-पराजय,

अपने वश की बात नहीं है। कभी पराजय होती है और कभी जय होती है। आप जीवित रहे, यही प्रसन्नता की बात है। आपका जीवन है, तो कभी यह पराजय, जय के रूप में परिणत भी हो सकती है। आप आत्महत्या का कायरता पूर्ण विचार त्यागिये। यदि आप ही ऐसी कायरता करेंगे, तो इस शेष सेना और मृत सेना के परिवारवालों की क्या दशा होगी! आप, इस सेना को धैर्य बँधाइये। घायल सैनिकों की सेवा सुश्रुषा का प्रबन्ध करिये और मृत सैनिकों के परिवार के लोगों को धैर्य देकर, उनके भरण पोषण की व्यवस्था करिये। आत्म-हत्या करने से, कोई लाभ नहीं है।

शिशुपाल पर मन्त्री के समझाने का, यथेष्ट प्रभाव पड़ा। वह, चन्देरी को चला, परन्तु लज्जा के मारे उसने दिन के समय नगर में प्रवेश नहीं किया, किन्तु रात को अंधेरे मे प्रवेश करके सीधा अपने महल मे चला गया और मुँह ढाँक कर चुपचाप सो रहा। उसके हृदय मे यही इच्छा हो रही थी, कि कोई मुझसे न बोले और कुण्डिनपुर के विषय मे न पूछे, तो अच्छा।

शिशुपाल के परास्त होने और रुक्मिणी रहित लौटने का समाचार, सारे नगर मे फैल गया। शिशुपाल की पत्नी और उसकी भाभी को भी सब हाल मालूम हुआ। भाभी, बुद्धि-मती और सज्जन-हृदय की स्त्री थी। उसने विचार किया,

कि जो होना था वह तो हो चुका, देवरजी ने मेरी बात नहीं मानी, तो उसका फल भी उन्होंने भोगा, अब अपनी प्रशंसा और उनकी निन्दा के लिए उन पर व्यंग करना, या ताने देकर उन्हे दुःखित करना, सज्जनों और हितैषियो का काम नहीं है, किन्तु शत्रु का काम है और उस शत्रु का काम है जिसमे गंभीरता नहीं है, अपितु जो ओछी प्रकृति का है। सज्जनो का काम तो दुःखी को धैर्य देना ही है।

इस प्रकार विचार कर भावज, शिशुपाल के पास गई। वह शिशुपाल से कहने लगी— देवरजी, आप इतने दुःखित क्यों हैं! जो होना था, वह हुआ, इसमे आपका कुछ दोष नहीं है। प्राणी, कर्माधीन है। उसकी बुद्धि भी कर्माधीन ही होती है इसलिए जैसे कर्म उदय मे आते हैं, बुद्धि भी वैसी ही बन जाती है। उस समय, किसी के हित वचन भी नहीं रुचते, न अपनी स्वयं की बुद्धि ही औचित्य का निर्णय कर सकती है। नीति मे कहा है—

असम्भवं हेम मृगस्य जन्म,
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्ति काले,
धियोऽपि पुंसा मलिना भवन्ति॥

अर्थात्— सोने के हरिण का होना असम्भव है, फिर भी राम को

सोने के मृग का लालच हो गया । इससे प्रकट है, कि बहुधा विपत्ति के समय, बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलिन हो जाती है ।

देवरजी, विपत्ति आने वाली थी, इसलिए जब राम की भी बुद्धि मलिन हो गई थी, तब आपकी बुद्धि मलिन हो, इसमे क्या आश्चर्य है ! आप, चिन्ता छोड़िये, भविष्य का विचार करिये और जो कुछ हुआ, उसके लिए समझिये कि—

अवश्यमेव भोक्तव्य कृतकर्म शुभाशुभम् ।
ना भुक्त क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ॥

अर्थात्—अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म (विपाक या प्रदेश से) अवश्य भोगने होते है । बिना भोगे कर्म, सौ करोड कल्प में भी क्षय नहीं होते ।

भाभी ने, शिशुपाल को धैर्य देने के लिए इस प्रकार खूब समझाया. और उससे कहा, कि अब से आप प्रत्येक कार्य सोच समझ कर किया करियेगा, हठ में मत पडा करियेगा और अपने हितैषियों की बात को सहसा मत ठुकराया करियेगा । भाभी के समझाने से शिशुपाल को धैर्य हुआ ।

उधर कुण्डिनपुर में, रुक्म के बन्दी होने का समाचार सुन कर, रुक्म की माता को बड़ा ही दुःख और पश्चात्ताप हो रहा था । उसे, पति और पुत्र, दोनो की ही ओर का दुःख था । वह विचारती थी, कि मैंने बिना सोचे समझे पति की बात का

विरोध किया, उसका परिणाम यह हुआ, कि पुत्री का विवाह भी न कर पाई और पुत्र भी वन्दी हुआ। यदि मैं उस समय रुक्म की वात का समर्थन न करती, तो शायद रुक्म का साहस शिशुपाल को बुलाने का न होता और आज मेरे पुत्र को वन्दी न वनना पडता। क्या ठीक है, कि मै रुक्म को फिर जीवित देख सकूँगी, या नही! मै, पुत्री के लिए कष्टदात्री भी वनी, पुत्र भी खोया, और पति को भी मुँह दिखाने योग्य न रही। रानी शिखावती का हृदय, दुख और पश्चात्ताप से जल रहा था। उसके दुख तथा पश्चात्ताप का अन्त तभी हुआ, जब रुक्म लौट कर आया. उसके साथ ही शिखावती ने भी महाराजा भीम से क्षमा प्रार्थना की और महाराजा भीम ने दोनो को धैर्य वॅधाया।

वल्देवजी ने, रुक्म को वन्दी बना कर रथ मे डाल लिया। उन्होने, रुक्म की ऐंठी हुई मूंछ उखाड कर रुक्मिणी से कहा— अनुजवधू, अपने भाई की दया करके इस पर से मक्खियॉ उडाती रहना। वल्देवजी के इस ताने से, रुक्म को वहुत लज्जा हुई, परन्तु वह विवश पड़ा था।

कृष्ण का रथ, द्वारका की ओर चला। वन्दी वना हुआ रुक्म, रथ मे पड़ा पड़ा मन ही मन पश्चात्ताप कर रहा था। लज्जा के मारे वह, रुक्मिणी की ओर देख भी नही पाता था।

भाई को बन्दी बना हुआ देख कर, रुक्मिणी को बड़ा ही दुःख हुआ। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह, भाई के दुर्व्यवहार को भूल कर, यह विचारने लगी, कि मेरे ही कारण भाई को बन्दी होना पड़ा है, अब मैं किस प्रकार भाई को बन्धन-मुक्त कराऊँ। रुक्म को छुडाने के लिए, उसे दूसरा कोई मार्ग न देख पड़ा। वह, साहस करके रथ से कूद पड़ी और दौड़ कर, रथ के सन्मुख आ खड़ी हुई। रुक्मिणी, के रथ से कूदते ही, रथ रुक गया। रथ के सामने खड़ी हुई रुक्मिणी, हाथ जोड़ कर आँखों से आँसू बहाने लगी। कृष्ण और बलदेवजी, रुक्मिणी का अभिप्राय समझ गये, फिर भी श्री कृष्ण ने उससे पूछा, कि तुम रथ से क्यों कूद पड़ी और इस प्रकार क्यों खड़ी हो? रुक्मिणी कहने लगी—महाराज, घोर से घोर शत्रु को भी क्षमा प्रदान करना, क्षत्रियों का बहुत छोटा-सा कर्त्तव्य है। आप भी इस कर्त्तव्य का पालन तो करेंहीगे, क्योंकि आप महापुरुष हैं, परन्तु इस समय भाई को बन्दी देख कर मेरा हृदय बहुत दुःखी हो रहा है। यह, मेरा बड़ा भाई है। इसलिए मैं प्रार्थना करती हूँ, कि आप मेरे इस भाई को बन्धन मुक्त कर दीजिये।

कृष्ण—तुम्हारे जिस भाई के कारण तुम्हे इतने कष्ट भोगने

पड़े, तुम्हारे जिस भाई ने हम पर घातक आक्रमण किया, उसे बन्धन-मुक्त कैसे किया जा सकता है !

रुक्मिणी—यह तो ठीक है, परन्तु जब घोर से घोर शत्रु के महान् से महान् अपराध भी क्षमा किये जा सकते हैं. तब क्या मैं अपने भाई के अपराध नहीं भुला सकती ? और क्या आप अपने पत्नी-भ्राता को क्षमा नहीं कर सकते ?

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥

अर्थात्—जो अपने उपकारियों के लिए भला है, उसकी भलाई में क्या विशेषता है ! महात्मा लोग तो उसे ही भला कहते हैं, जो अपने अपकारियों पर भी कृपा करे ।

रुक्मिणी की इस बात ने कृष्ण के हृदय को द्रवित कर दिया; परन्तु उन्हे यह विचार हुआ, कि रुक्म को भ्राता ने बन्दी बनाया है । यदि मैं रुक्म को बन्धनमुक्त कर दूँ, तो सम्भव है, कि भ्राता के मन मे कोई दूसरा विचार हो जावे । इस विचार के कारण उन्होंने उत्तर मे रुक्मिणी से कहा, कि—यद्यपि तुम्हारा कथन ठीक है, परन्तु रुक्म का अपराध अक्षम्य है, इसलिए उसे क्षमा नहीं किया जा सकता ।

रुक्मिणी—परन्तु आपने मुझसे कहा था, कि मैं तुम्हारा हृदय दुःखित नहीं करना चाहता, क्या यह बात पूरी न होगी ?

कृष्ण—निःसन्देह मैंने ऐसा कहा था, परन्तु मैं तुम्हारे हृदय को दुःखित भी नहीं कर रहा हूँ।

रुक्मिणी—अपने भाई को बन्दी देख कर, किस बहन का कठोर—हृदय दुःखित न होगा?

श्रीकृष्ण—यह ठीक है, परन्तु रुक्म को मैंने बन्दी नहीं बनाया है। जिसने बन्दी बनाया है, वही उसे बन्धनमुक्त भी कर सकता है।

कृष्ण के उत्तर से रुक्मिणी, उनका आशय समझ गई। वह, आशापूर्ण नेत्रों से बल्देवजी की ओर देखकर आँसू बहाने लगी। रुक्मिणी की करुण दशा ने, बल्देवजी के हृदय को आर्द्र कर दिया। वे, कृष्णजी से कहने लगे—भैया, रुक्म को उसके अपराधों का पर्याप्त दण्ड मिल चुका है। अब, रुक्मिणी के हृदय को दुःख न होने देना चाहिए और रुक्म को बन्धनमुक्त कर देना चाहिए। 'आपकी जो आज्ञा' कह कर श्रीकृष्ण ने, रुक्म के बन्धन खोल दिये और उसे उठा कर छाती से लगाते हुए कहा, कि—तुम वीर हो। मैं तुम्हारी वीरता पर, और तुम ऐसा वीर साला पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। अब हमारा और तुम्हारा सम्बन्ध हुआ है, अतः अबतक की सब बातें भूल कर, प्रेम-व्यवहार रखने में ही आनन्द है।

बल्देवजी ने भी रुक्म को छाती से लगा कर, उसकी

प्रशंसा की । वे भी कहने लगे, कि तुम ऐसे वीर की बहन मेरी अनुजवधू बनी, यह बड़े ही आनन्द की बात है। अब तुम जाओ और अपने पिता की सेवा करके, उन्हें सुख पहुँचाओ ।

अपने भाई को बन्धनमुक्त देख कर, रुक्मिणी बहुत प्रसन्न हुई । रुक्म भी, श्रीकृष्ण और बल्देवजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके कहने लगा, कि—मुझे, पिता की आज्ञा न मानने, आपसे निष्कारण वैर रखने और बहन रुक्मिणी के साथ अन्याय करने का जो प्रतिफल मिला है, वह उचित ही है । यदि मुझे यह दण्ड न मिलता तो मेरा क्रोध तथा अभिमान नष्ट न होता । अब आप कृपा करके कुण्डिनपुर पधारिये । मैं, विधिवत आपके साथ अपनी बहन का विवाह करके फिर आपको विदा करूँगा ।

रुक्म की प्रार्थना सुन कर, श्रीकृष्ण बल्देव प्रसन्न हुए । रुक्म की प्रार्थना के उत्तर मे श्रीकृष्णजी उससे कहने लगे कि हमे तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करने मे दूसरी कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु तुम्हारी बहन के साथ मेरा विवाह हो चुका । पाणिग्रहण ही विवाह है और मैं रुक्मिणी का पाणिग्रहण कर चुका हूँ । अब तो केवल पारस्परिक प्रतिज्ञा करनी शेष है, जो कहीं भी की जा सकती है । इसके सिवा,

मे वैवाहिक—आडम्बर का विरोधी हूं । मैं नहीं चाहता, कि विवाह मे वाह्याडम्बर तो किया जावे, और विवाह सम्बन्धी जिन बातों पर लक्ष्य देने की आवश्यकता है, उनकी अवहेलना की जावे । मैं यदि कुण्डिनपुर लौट कर गया और तुमने धूमधाम से विवाह किया, तो यह दूसरे लोगों के सामने विवाह मे धूम करने का आदर्श रखना होगा । ऐसा करने से, गरीबों के हृदय मे—आडम्बर न कर सकने के कारण—दुःख होगा और इस प्रकार लोगों मे विषमता फैलेगी । साथ ही, दहेज की घातक प्रथा को भी प्रोत्साहन मिलेगा । लोग मेरा उदाहरण देकर कहेंगे, कि धूमसे विवाह कराने तथा दहेज पाने के प्रलोभन से श्रीकृष्ण भी तो लौट आये थे । इसलिए इस समय मेरा कुण्डिनपुर चलना ठीक नहीं है । मैं, आपके व्यवहार से बहुत संतुष्ट हूँ । आप जाइये, इस सम्बन्ध के होने से एक बार नहीं, किन्तु अनेक बार कुण्डिनपुर आना होगा ।

रुक्म—यद्यपि आपका कथन ठीक है, परन्तु यदि आप द्वारका पहुँच कर, वहाँ रुक्मिणी के साथ विवाह सम्बन्धी प्रतिज्ञाएँ करें करावेंगे, तो इसमे तो मेरा भयंकर अपमान होगा ! मुझ पर यदि आपकी कृपा है, तो आप मुझे इस अपमान से बचाइये ।

श्रीकृष्ण—दूसरे का अपमान करके अपना सम्मान

बढाने की मै कदापि इच्छा नहीं रखता । आप, विश्वास रखिये ।

कृष्ण के उत्तर से, रुक्म को सन्तोष हुआ । वह, कुण्डिनपुर लौट आया और रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण बल्देव, सीधे गिरनार पर्वत पर गये । वहाँ, बलभद्रजी, जल, अग्नि, वनस्पति आदि की साक्षी मे रुक्मिणी और कृष्ण से विवाह सम्बन्धी प्रतिज्ञाएँ कराने लगे । बल्देवजी ने रुक्मिणी से कहा—राजकुमारी, तुम श्रीकृष्ण की पत्नी बनने को तो तयार हो, लेकिन इनसे किन किन बातो का विश्वास चाहती हो, यह स्पष्ट कहो और श्रीकृष्ण से प्रतिज्ञा करा लो । इसी प्रकार श्रीकृष्ण को भी उचित है, कि वे तुमसे जो कुछ चाहते हो, वह स्पष्ट कह कर तुमसे प्रतिज्ञा कराले ।

बल्देवजी की बात सुन कर, रुक्मिणी श्रीकृष्ण जी से कहने लगी—हे कान्त, यदि आप मेरे साथ ज्ञान, दर्शन, तप, सत्य और दान करो, भक्ति पूर्वक मुनियो और गुरुजनो की अन्नादि द्वारा पूजा करो, उनका सत्कार करो, उसमे मुझे साथ रखो, तो मै आपकी धर्मपत्नी बनती हूँ । हे कान्त, यदि आप कुटुम्ब की रक्षा, तथा पशुओ का पालन करो, आय, व्यय एवं धन धान्य के सम्बन्ध मे मेरी सम्मति लो, तो मै आपकी धर्मपत्नी बनती हूँ । हे कांत, यदि आप कुए, बावड़ी, तालाब, बनवाने

बाग लगवाने और पौशाला चलवाने ऐसे शुभ कार्यों मे मेरी अनु-
मति लो तो मैं आपकी वामाङ्गिनी बनती हूँ । हे कांत, यदि
आप किसी भी परस्त्री का—चाहे वह रम्भा के समान ही सुंदरी
क्यों न हो—कभी भी सेवन न करो, तो मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी
बनती हूँ ।

रुक्मिणी ने, श्रीकृष्ण के सामने ये सब बातें विस्तृत रूप से
कहीं । श्रीकृष्ण ने, रुक्मिणी की माँगो को सुनकर उससे
कहा—हे कान्ता, यदि तुम अपने मन को मेरे मन के अनुगत
रखो, सदा मेरी आज्ञा का पालन करो, तथा पतिव्रता एवं धर्म-
परायणा हो कर रहो, तो मुझे तुम्हारी ये सब बाते स्वीकार हैं ।

सूर्य, चन्द्र पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, वनस्पति, धर्म, आदि
और बल्देवजी को साक्षी करके रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण से कहा—
हे कान्त, मैं आपकी कही हुई सब बातो का मन वचन और
काय से पालन करूँगी । रुक्मिणी के इस प्रकार प्रतिज्ञा
करने पर, श्रीकृष्ण ने भी सूर्य चन्द्र आदि सब को और बल्देवजी
को साक्षी करके रुक्मिणी से कहा—हे कांता, मैं भी प्रतिज्ञा
करता हूँ, कि मन वचन काय से मैं उन सब बातो का पालन
करूँगा, जो तुमने मुझसे कही हैं और जिनका पालन करने
के विषय मे मुझसे विश्वास चाहा है ।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणी की परस्पर इस प्रकार प्रतिज्ञा हो

जाने पर, बलदेवजी ने दोनों से कहा, कि—तुम दोनों आदर्श पति-पत्नी के रूप में अपना गृहस्थ-जीवन बिताना और अन्त मे आत्मकल्याण के लिए गृहस्थाश्रम को भी त्याग कर आत्मा का उद्धार करो, यही मेरा आशीर्वाद है ।

रुक्मिणी, कृष्ण और बलदेवजी, द्वारका आये । द्वारका से कृष्ण और बलदेव अकेले ही गये थे, इस कारण द्वारकावासी लोगो को बड़ी चिन्ता हो रही थी । रुक्मिणी सहित दोनों भाई के पहुँचने से, द्वारका के लोगो को बड़ी प्रसन्नता हुई । रुक्मिणी की रक्षा करने के कारण, सब लोग श्रीकृष्ण की सराहना करने लगे और उन्हें धन्यवाद देने लगे ।

सासू ससुर आदि से मिल कर रुक्मिणी भी बहुत प्रसन्न हुई । वह अपने भाग्य की सराहना करने लगी । देवकी आदि भी, रुक्मिणी का सौन्दर्य और सद्व्यवहार देख कर बहुत प्रसन्न हुई । रुक्मिणी के नम्र व्यवहार ने, उनके हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया । उसने, प्रेम-व्यवहार द्वारा अपनी सौतो को भी प्रसन्न कर दिया और इस प्रकार श्रीकृष्ण की पटरानी होकर आनन्द से रहने लगी ।

रुक्मिणी का कन्या-जीवन जैसा दृढ़ता और सत्यनिष्ठा पूर्ण थी, उसका गृहिणी-जीवन भी वैसा ही रहा ! कृष्ण के सत्य-भामा आदि अनेक रानियाँ थी, फिर भी नम्रता और पतिभक्ति

के कारण रुक्मिणी-कृष्ण की हृदयवल्लभा बन गई तथा कृष्ण की समस्त रानियों में वह सबमें प्रमुख मानी जाने लगी। अन्तकृत दशांग सूत्र में भी, श्री कृष्ण की रानियों की गणना बताते हुए कहा है—

रुप्पिणी पामोक्खाणं सोलसण्ह देवी साहस्सीणं।

अर्थात—(कृष्ण के) रुक्मिणी आदि सोलह सहस्र रानियाँ थीं।

इस प्रकार शास्त्र में भी रुक्मिणी के पीछे दूसरी रानियों को बताया गया है, और रुक्मिणी का नाम सर्व प्रथम कहा गया है। यह उसके आदर्श गृहिणी-जीवन का ही परिणाम था। वह, तीन खण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण की प्रिय रानी थी, फिर भी उसमें विनय नम्रता और सरलता अधिक थी। वह सासू ससुर और पति आदि गुरुजनों की सेवा करती, अपनी सौतों से प्रेम करती और अपने से छोटों पर कृपा रखती। सबको वश में करने, सब के हृदय की स्वामिनी बनने का वह इसे उत्तम उपाय समझती थी। आधुनिक समय की अधिकांश स्त्रियाँ अपने पति आदि को वश में करने के लिए दूसरे दूसरे घृणित उपायों का अवलम्बन लेती हैं, लेकिन रुक्मिणी, सबको वश करने का महर्षियों द्वारा बताया गया एक यही उपाय जानती थी, कि—

जंपई पियवयणं किज्जइ विनो दीज्जई दानं ।
सव्व गुणं गहणं करणं मूल मन्त वसीकरणं ॥

अर्थात्—प्रिय वचन कहना, विनय करना, दान देना और गुणों को ग्रहण करना, ये सब दूसरे को वश में करने के प्रधान उपाय है।

रुक्मिणी ने इन्हीं उपायो को अपनाया था, जिससे उसका गृहिणी-जीवन भी आनन्दपूर्वक व्यतीत हुआ और उसके द्वारा दूसरो को भी आनन्द प्राप्त हुआ।

रुक्मिणी का मातृ-जीवन भी उच्च था। शास्त्र मे रुक्मिणी की संतान के सम्बन्ध मे केवल प्रद्युम्नकुमार का ही उल्लेख पाया जाता है, प्रद्युम्नकुमार के सिवा रुक्मिणी के कोई और संतान होने का वर्णन शास्त्र में नहीं है, वल्कि वह अधिक संतान की इच्छुक भी नहीं थी, लेकिन केवल एक ही पुत्र होने—अधिक सन्तान न होने—से रुक्मिणी के मातृ जीवन में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं मानी जा सकती। सिहनी अधिक बच्चो की माता नहो होती, परन्तु वह सिह को ही जन्म देती है। इसी मे उसकी शोभा भी है। नीतिकारों का भी कथन है कि—

वरमेकः गुणी पुत्रो निर्गुणैश्च शतैरपि ।
एकश्चन्द्रः तमोहन्ति न च तारा सहस्रशः ॥

अर्थात्—सौ मूर्ख पुत्रों के होने की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र का होना अच्छा है। क्योंकि एक ही चन्द्र सारे अन्धकार को नष्ट कर देता है, लेकिन हजारों तारे अन्धकार को नहीं मिटा सकते।

इसके अनुसार एक ही पुत्र की माता होने पर भी रुक्मिणी का मातृ जीवन आदर्श माना गया है। क्योंकि वह एक पुत्र प्रद्युम्न भी, समस्त यादवकुमार में अग्रणी था। शास्त्र में भी कृष्ण की साहबी का वर्णन करते हुए कहा है कि—

पज्जुण पामोक्खाण अध्दुट्टाण कुमार कोडीणं।

अर्थात्—प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ यादवकुमार थे।

प्रद्युम्न ऐसे वीर की माता, कृष्ण ऐसे महापुरुष की प्रिय-पत्नी और तीन खंड की महारानी होती हुई भी रुक्मिणी, भोग विलास में ही लिप्त नहीं रही। श्री गजसुकुमार मुनि की हत्या की घटना पर से श्रीकृष्ण के हृदय मे अनेक विचार उथल पुथल मचा रहे थे। उन्हीं दिनों मे बाईसवे तीर्थंकर भगवान् अरिष्ट-नेमि अनेक जीवो का कल्याण करते हुए द्वारका के सहस्त्राम्र बाग मे पधारे। श्रीकृष्ण, भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करने के लिए गये। भगवान् को वन्दन करके उनने भगवान् से द्वारका और द्वारका के निवासियों का भविष्य पूछा। भगवान से अनिष्ट भविष्य सुन कर श्री कृष्ण ने सारे नगर में यह घोषणा कराई कि जो भी व्यक्ति संयम लेना चाहता हो, वह संयम लेकर आत्म कल्याण कर सकता है। ऐसे व्यक्ति के कुटुम्बियों के भरण पोषण का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। और जिनको मेरी आज्ञा की आवश्यकता है, उनको आज्ञा भी देता हूं। श्री

कृष्ण की यह घोषणा सुन कर, रुक्मिणी को भी संसार से विरक्ति हो गई। वह भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में गई, और भगवान् की वाणी सुन कर, प्रार्थना की कि हे प्रभो, यद्यपि पति की घोषणा के अनुसार अब मुझे संयम लेने के विषय में पति से आज्ञा लेने की जरूरत नहीं है, फिर भी पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए मैं पति से आज्ञा लेकर संयम स्वीकार करूँगी। भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करके रुक्मिणी घर आई और श्री कृष्ण की आज्ञा प्राप्त करके पुन भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा में उपस्थित हो उसने संयम स्वीकार किया।

रुक्मिणी ने, जिस प्रकार कन्या पत्नी और मातृ-जीवन के कर्त्तव्यों का सुचारु रूप से पालन किया था, उसी प्रकार संयम का भी सुचारु रूप से पालन किया। अन्त मे तप द्वारा इस विनाशी शरीर को त्याग, सिद्ध पद प्राप्त कर संसार के जन्म मरण से मुक्त हो गई।